समकालीन हिंदी संस्मरण : परंपरा और प्रयोग
(2000-2015)

Samkaleen Hindi Sansmaran : Parampara aur Prayog
(2000-2015)

The Contemporary Hindi Memoirs : Tradition and Experiment
(2000-2015)

पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक
प्रो.ओमप्रकाश सिंह

शोधार्थी
कंचन लता यादव

ज.ने.वि.
JNU

भारतीय भाषा केंद्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110067

Dated: 16 /06 /2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled **"SAMKALEEN HINDI SANSMARAN : PARAMPARA AUR PRAYOG (2000-2015)"** **"THE CONTEMPORARY HINDI MEMOIRS : TRADITION AND EXPERIMENT (2000-2015)"** submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

Kanchan Lata yadav

KANCHAN LATA YADAV
Name of Students

Scanned with CamScanner

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 16 /06 /2022

Certificate

This is to certify that the Ms. KANCHAN LATA YADAV a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled **"SAMKALEEN HINDI SANSMARAN : PARAMPARA AUR PRAYOG (2000-2015)" "THE CONTEMPORARY HINDI MEMOIRS : TRADITION AND EXPERIMENT (2000-2015)"**

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Prof. Omprakash singh
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Dr. Omprakash Singh
प्रोफेसर/Professor
Centre for Indian Languages/SLL & CS
Jawaharlal Nehru University
New Delhi - 110067

Prof. Omprakash Singh
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

अध्यक्ष / Chairperson
भारतीय भाषा केन्द्र / CIL
भा. सा. एवं सं. अ. सं. / SLL & CS
ज. ने. वि. / J.N.U
नई दिल्ली / New Delhi-110067

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217;
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

Scanned with CamScanner

समर्पण

मेरे गुरु और शोध निर्देशक

प्रो.ओमप्रकाश सिंह को

सादर समर्पित... ,

जिनके सहयोग, मार्गदर्शन, दिशा-निर्देश से यह शोध कार्य संभव हो सका है।

अनुक्रम पृष्ठ सं.

भूमिका i-vi

पहला अध्याय 1-48

हिंदी संस्मरण लेखन : प्रारंभ और वर्तमान

(i) हिंदी संस्मरण की परिभाषा और स्वरूप

(ii) संस्मरण साहित्य और अन्य कथेतर विधाएं

(iii) संस्मरण साहित्य का वैशिष्ट्य

(iv) हिंदी संस्मरण की परम्परा और विकास

दूसरा अध्याय 49-80

समकालीन संस्मरण लेखन का वैविध्य

(i) प्रारम्भिक हिन्दी संस्मरण लेखन : वैविध्य के आयाम

(पद्म सिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरणों के विशेष संदर्भ में)

(ii) समकालीन हिन्दी संस्मरण लेखन : वैविध्य के आयाम

(काशीनाथ सिंह, कान्तिकुमार जैन, राजेन्द्र यादव, ममता लिया, रवींद्र कालिया, कृष्णा सोबती के संस्मरणों के विशेष संदर्भ में)

तीसरा अध्याय 81-120

समकालीन हिंदी संस्मरण : वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य

(i) घर-परिवार के व्यक्तियों पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र

(ii) मित्रों अथवा सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र

(iii) आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र

चौथा अध्याय **121-149**

समकालीन संस्मरण लेखन : सामाजिक परिप्रेक्ष्य

(i) व्यक्ति और समाज

(ii) परिस्थितियाँ और प्रश्न

(iii) स्त्री-पुरुष संबंध

पाँचवा अध्याय **150-184**

समकालीन संस्मरण लेखन के अन्य बहुधर्मी आयाम

(i) धार्मिक और सांस्कृतिक आयाम

(ii) स्थान केंद्रित संस्मरण : व्यक्ति, समाज, परिवेश और अन्य आयाम

(iii) आर्थिक आयाम

(iv) स्मृत व्यक्ति की रचनाओं के आधार पर व्यक्ति और समाज का मूल्यांकन

छठा अध्याय **185-214**

समकालीन हिन्दी संस्मरण साहित्य का शिल्पगत वैशिष्ट्य

(i) समकालीन हिन्दी संस्मरण की अंतर्वस्तु : शैलीगत वैशिष्ट्य

(ii) भाषागत वैशिष्ट्य

(iii) संस्मरण साहित्य में परिवेश की भूमिका

(iv) संस्मरण साहित्य की चुनौतियाँ

उपसंहार **215-220**

परिशिष्ट

साक्षात्कार: काशीनाथ सिंह **222-228**

ग्रन्थानुक्रमणिका **229-234**

भूमिका

दुष्यंत कुमार ने कहा है-

हम क्या बोलें इस आंधी में कई घरौंदे टूट गए।

इन असफल निर्मितियों के शव कल पहचाने जाएंगे।

कथेतर गद्य विधाओं का नवाचार और नवोन्मेष जिन उबड़-खाबड़ रास्तों से शुरू हुआ था, आज उसने अपने को विभिन्न रूपों में स्थापित कर लिया है। कथेतर विधाएं अपनी पूर्ववर्ती साहित्यिक विधाओं के पारम्परिक ढ़ांचे को तोड़ती हुई यात्रावृतांत, जीवनी, संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, डायरी आदि रूपों में उपस्थित हैं। इन विधाओं के लिए पुराने सांचे नाकाफी सिद्ध होते हैं। बीसवीं शताब्दी में यूरोप में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और औद्योगिक बदलाव हो रहे थे। इन बदलाव का प्रभाव वैश्विक स्तर पर दिखाई दे रहा था। इनका असर व्यष्टि-समष्टि के जीवन मूल्यों पर पड़ना स्वाभाविक है। मनुष्य पर इनका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उसके जीवन के बने-बनाये ढांचें टूटते-बिखरते हुए नजर आने लगें। ये बदलाव उसके आदर्शों, मानवीय और नैतिक मूल्यों को खोखला कर रहे थे। इन परिवर्तनों की अभिव्यक्ति के लिए पारम्परिक विधाएं नाकाफी सिद्ध हो रही थी। उपन्यास, महाकाव्य, कहानी, नाटक आदि विधाओं में व्यक्ति-समाज का वह चित्र नहीं उभर पा रहा था जिसकी उसे दरकार थीं। इन विधाओं के साथ साहित्यकारों ने मानव जीवन की अभिव्यक्ति के लिए अन्य माध्यमों को तलाशना शुरू किया जिसका परिणाम कथेतर गद्य विधाएं हैं। कथेतर गद्य विधाएं विधागत वैविध्य लिए हुए कभी जीवनी के रूप में व्यष्टि-समष्टि के परिवर्तनकामी रूपों का चित्रण कर रही थीं तो कभी आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि के रूप में। साहित्य का शास्त्रीय दायरा व्यष्टि और समष्टि के चित्रण में अपर्याप्त और असफल दिखाई दे रहा था। ये कथेतर विधाएं साहित्य के शास्त्रीय हदों को तोड़ती हुई नवाचार को अपनाती हैं। यह नवाचार कई स्तरों पर दिखाई देता है। इन विधाओं में व्यक्ति और समाज का दृश्य अलग-अलग रूपों में दिखाई देता है। कथेतर गद्य विधाओं के बदलते फ़ार्म ने अभिव्यक्ति का अलग-अलग माध्यम चुना। इन विधाओं ने कथ्य, भाषा, शैली आदि के आधार पर बदलाव किए। कथा के तत्व कथेतर गद्य विधाओं में परिलक्षित हो रहे थे। कथेतर गद्य विधाओं को लिखने वाले ज्यादातर साहित्यकार पारम्परिक साहित्यिक विधा के विभिन्न अनुशासनों से आये थे जिसका पुट इन नवीन विधाओं में दिखाई देता है। काशीनाथ सिंह, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती, कांतिकुमार जैन, मनोहर श्याम जोशी, ममता कालिया आदि की छवि मूलतः कथाकार, सम्पादक और

आलोचक की हैं। इन्होंने संस्मरण के कथ्य, भाषा, शैली को इसी फार्म में प्रस्तुत किया। इन कथेतर विधाओं में संस्मरण विधा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बनी। संस्मरण अपनी लोकप्रियता और रोचकता के कारण आज एक स्वतंत्र विधागत पहचान बनाये हुए है। संस्मरण में वस्तु और व्यक्ति या कहें आब्जेक्ट और सब्जेक्ट के जिस फॉर्म में उपस्थति है वह काफी सराहनीय है। यही कारण है कि काशीनाथ सिंह, कांतिकुमार जैन, राजेन्द्र यादव, रवीन्द्र कालिया, कृष्णा सोबती, ममता कालिया आदि के संस्मरणों ने संस्मरण विधा को एक नया मोड़ दिया। कथा साहित्य के काल्पनिक यथार्थ से लोग उब चुके थे। उनके जीवन की परिस्थितियाँ अपने जीवन के कटु यथार्थ को स्वीकारने के लिए सहज बन चुकी थीं। वे अपने जीवन के कोरे यथार्थ को कल्पना के पारदर्शी पर्दे से नहीं देखना चाहते थे बल्कि उनकी स्थिति उन्हें मानसिक रूप से अपने नंगे यथार्थ को देखने के लिए तैयार कर चुकी थी। वह अपने जीवन के कोरे यथार्थ की अभिव्यक्ति संस्मरण के सीधे-सपाट धरातल पर देखकर उसे हाथों-हाथ लेते हैं। संस्मरण में अभिव्यक्त मानव जीवन के यथार्थ पक्षों के साथ रोचक कथ्य के घोल ने इसे कथा साहित्य से ज्यादा लोकप्रिय बना दिया।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में इतिहास की बात करें तो स्मृतियाँ मानव अस्तित्व के साथ जुड़ी हैं। इन स्मृतियों को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करना, व्यक्ति ने बहुत बाद में सीखा। साहित्य व्यक्ति मन की अभिव्यक्ति का बहुत बड़ा माध्यम है, अंतर बस उस अभिव्यक्ति के स्वरूप को लेकर है। पहले जिन स्मृतियों को रेखांकित करने के लिए कथा साहित्य को माध्यम बनाया जाता था आज उसका स्थान कथेतर गद्य विधाओं ने ले लिया। कथा साहित्य में व्यक्ति-समष्टि के यथार्थ को जिस कल्पना के सहारे प्रस्तुत किया जाता था, वह बदलते समय की मांग में अपर्याप्त दिखाई देने लगा। उस जगह को भरने के लिए कथेतर गद्य विधाओं का सहारा लिया गया। आज साहित्य का स्वरूप दोनों रूपों में उपलब्ध है।

कथेतर गद्य विधाओं में संस्मरण साहित्य के स्वरूप की बात करें तो इसका स्वरूप भारतेंदु युग से परिलक्षित होने लगता है। इसके बाद यह अपना मार्ग तलाशते हुए विकास पथ पर अग्रसर हुआ। यह नया मार्ग एक नवीन विधा और लेखक के लिए तमाम चुनौतियों से भरा था। उन चुनौतियों को स्वीकार करते हुए आज संस्मरण ने सिर्फ अपना स्वरूप ही नहीं बनाया है बल्कि एक स्वतंत्र विधा के रूप में खुद को स्थापित भी किया है। समकालीन हिन्दी संस्मरण में जो सकारात्मकता देखने को मिल रही है, उसका कारण यह है कि संस्मरण अपनी पुरानी रूढ़ियों-मान्यताओं की जकड़न को तोड़ता हुआ, अपनी परंपराओं में आधुनिकता को ढूढता हुआ, नित-नवीनता को अपनाता गया। शुरुआती दौर के संस्मरणों में देखा गया कि संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति को श्रद्धेय बनाकर, उसका एकपक्षीय मूल्यांकन करता था। ऐसा वह समाज पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए करता था। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इस दायरे को तोड़ता हुआ, व्यक्ति के व्यक्तित्व के सकारात्मक और

नकारात्मक दोनों पक्षों को उठाता है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का सही रूप उभरकर आता है।

हिन्दी में संस्मरण साहित्य ने उच्चादर्श और यथार्थपरक अभिव्यक्ति के शिखर बिंदु को तब छुआ जब पूरी दुनिया आर्थिक नव-उदारवाद के बाद वैश्विक गांव के भूगोल में बदल रही थी। उत्तर-आधुनिक इतिहासकारों और विचारकों के केंद्र में हाशिये का समाज था। वह इतिहास को पारम्परिक दृष्टि से नहीं देख सकता था। वह इतिहास और समाज को विजेता की दृष्टि से देखने के बजाय, ऐसी दृष्टि से देखने का पक्षधर था जिससे हजारों वर्षों से पीड़ित व्यक्ति के दुःख-दर्द को समझा जा सके। वह शेर की दृष्टि से देखने की बजाय, खरगोश की दृष्टि का हिमायती था। जब खरगोश की दृष्टि से इतिहास लिखा जाएगा अर्थात जब पीड़ित, शोषित-वंचित व्यक्ति की दृष्टि से इतिहास लिखा जाएगा, तब विजेता का गुणगान करने के बजाए, उसकी नृशंसता और बर्बरता को केंद्र में रखा जाएगा। ऐसे में उसकी जय-जयकार नहीं होगी, बल्कि उसके क्रूरतापूर्ण कृत्यों की भर्त्सना होगी। साहित्य की नवीन गद्य विधाएँ कुछ इसी प्रकार का कार्य करती हैं। वे हमें ऐसे छोटे-छोटे सत्य-तथ्य से परिचित कराती हैं, जो अक्सर छूट जाते हैं। ये कथेतर गद्य विधाएँ टूटे हुए काँच की तरह हैं जो मुकम्मल छवि दिखाने की बजाय विभिन्न प्रकार की जीवन छवियाँ प्रस्तुत करती हैं। संस्मरण भी ऐसी एक प्रमुख विधा है। इस संदर्भ में कान्तिकुमार जैन लिखते हैं- "दर्पण जब जमीन पर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है तब वह समग्र छवि का बखान नहीं कर पाता। वह दृश्य को अनेक छोटे-छोटे प्रतिबिम्बों में बाँट देता है। ये प्रतिबिम्ब टुकड़े-टुकड़े होते हैं। संस्मरण जीवन के इन्ही टुकडे-टुकड़े हुए दृश्यों को अंकित करने का उपक्रम करते हैं।" (जो कहूँगा सच कहूँगा, कान्तिकुमार जैन, पृष्ठ 07)

इस शोध प्रबंध का पहला अध्याय 'हिन्दी संस्मरण लेखन : प्रारंभ और वर्तमान' है। इस अध्याय को चार उप-अध्याय में विभाजित किया गया है- (1) हिंदी संस्मरण की परिभाषा और स्वरूप (2) संस्मरण साहित्य और अन्य कथेतर विधाएं (3) संस्मरण साहित्य का वैशिष्ट्य (4) हिंदी संस्मरण की परम्परा और विकास। हिन्दी संस्मरण साहित्य में स्मृतियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ये स्मृतियाँ अतीत को वर्तमान से जोड़ने का सेतु हैं। संस्मरणकार स्मृतियों की कथ्य, शैली, भाषा और परिवेश की बुनावट कर, एक ढांचा बनाता है, जिसे संस्मरण साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। संस्मरण साहित्य अंतर्वस्तु के आधार पर अन्य कथेतर गद्य विधाओं से भिन्नता लिए हुए अनेक कथात्मकता, तटस्थता, आत्मीयता आदि वैशिष्ट्य को समेटे हुए हैं। इनके साथ ही इस अध्याय में हिन्दी संस्मरण साहित्य की परंपरा और विकास पर विस्तार से चर्चा की गई है।

दूसरा अध्याय 'समकालीन हिन्दी संस्मरण में वैविध्य के बिन्दु' पर है। (1) प्रारम्भिक हिन्दी संस्मरण लेखन : वैविध्य के आयाम (2) समकालीन हिन्दी संस्मरण साहित्य लेखन : वैविध्य के आयाम। 'प्रारम्भिक हिन्दी संस्मरण लेखन : वैविध्य के आयाम' उपशीर्षकों में पद्म सिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरणों के विशेष संदर्भ में, वैविध्य के बिंदुओं को देखने की कोशिश की गई हैं। दूसरा उप-अध्याय 'समकालीन हिन्दी संस्मरण साहित्य लेखन : वैविध्य के आयाम' में काशीनाथ सिंह, कान्तिकुमार जैन, राजेन्द्र यादव, ममता कालिया, रवींद्र कालिया, कृष्णा सोबती के संस्मरणों के विशेष संदर्भ में, वैविध्य के बिंदुओं को रेखांकित किया गया है। इसमें समकालीन हिन्दी संस्मरणों की उन विशेषताओं को रेखांकित किया गया है जो संस्मरण को समृद्ध बनाते हैं। इस अध्याय में यह बताने की कोशिश की गयी है कि हिन्दी संस्मरण की परंपरा क्या रही है? प्रारम्भिक हिन्दी संस्मरण और समकालीन हिन्दी संस्मरण एक-दूसरे से किन अर्थों में भिन्न है? समकालीन हिन्दी संस्मरण में किस तरह के प्रयोग हुए हैं? समकालीन हिन्दी संस्मरण के कौन-कौन से बिन्दु हैं जो इसे प्रारम्भिक हिन्दी संस्मरण से अलग करते हैं। समकालीन हिन्दी संस्मरण की सकरात्मकता और समृद्धि का कारण क्या है?

तीसरा अध्याय 'समकालीन हिन्दी संस्मरण : वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य' हैं। इस अध्याय को तीन उपशीर्षकों में बांटकर देखने की कोशिश की गई है। इसमें पहला उप-अध्याय 'पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र' को लेकर है जिसमें यह बताया गया है कि घर-परिवार के व्यक्ति द्वारा लिखे गए संस्मरण में स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व किस रूप में हमारे सामने उभरकर आता है। क्या संस्मरणकार तटस्थ होकर निष्पक्षता से मूल्यांकन कर पाता है। दूसरा उप-अध्याय 'मित्रों अथवा सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र' है। इसमें सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरण में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व रेखांकन को लेकर कितनी आजादी होती हैं। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को कितनी स्पष्टता से किन-किन पक्षों को रेखांकित करता है। तीसरा उप-अध्याय 'आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र' है। इसके माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व का आयाम किस रूप में हमारे सामने उभरता हैं उसपर विस्तार से चर्चा की गई है।

चौथे अध्याय का शीर्षक है- 'समकालीन हिन्दी संस्मरण : सामाजिक परिप्रेक्ष्य'। इस अध्याय के तीन उप-अध्याय किये गए हैं। इस अध्याय का पहला उप-अध्याय 'व्यक्ति और समाज' है। व्यष्टि और समष्टि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। व्यष्टि में समष्टि का निहितार्थ और समष्टि में व्यक्ति का निहितार्थ, सिमटा हुआ है। संस्मरण साहित्य व्यक्ति केन्द्रीयता के साथ सामाजिक मूल्यों की सर्वांगणीयता बनाए हुए है। यह व्यक्ति समस्याओं के साथ-साथ समाज में विद्यमान विषमताओं, रूढ़ियों, जातिगत भेदभाव, स्त्री समस्याओं आदि को परिलक्षित करती हैं। इस अध्याय का दूसरा उप-अध्याय 'परिस्थियाँ और प्रश्न' है। संस्मरण साहित्य के

माध्यम से यह जानने की कोशिश की गई है कि तात्कालिक परिस्थितियाँ व्यक्ति और समाज को किस रूप में प्रभावित करती हैं। इसके तीसरे उप-अध्याय में 'स्त्री-पुरुष के संबंध' को लेकर बात की गई है। इसमें वैवाहिक जीवन, प्रेम संबंध और स्त्री जीवन की समस्याओं आदि का विश्लेषण किया गया है।

पाँचवा अध्याय 'समकालीन हिन्दी संस्मरण के अन्य बहुधर्मी आयाम' है। इसमें उन बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है जो समकालीन हिन्दी संस्मरण साहित्य को समृद्ध करते हैं। इसमें सिर्फ व्यक्ति और समाज की समस्याओं को नहीं, बल्कि उन पहलुओं को भी उभारने की कोशिश की गई है जो इन दोनों पर किसी न किसी रूप में प्रभाव डालते हैं। इस अध्याय को चार उप-अध्याय में विभाजित किया गया है- (1) सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्य (2) आर्थिक स्थिति (3) स्थान अथवा शहर केंद्रित संस्मरण : व्यक्ति, समाज, परिवेश और अन्य आयाम (4) स्मृत व्यक्ति की रचनाओं के आधार पर व्यक्ति और समाज का मूल्यांकन

छठा अध्याय 'समकालीन हिन्दी संस्मरण में शिल्पगत वैशिष्ट्य' है। इस अध्याय में संस्मरण के बदलते हुए कथ्य , शैली, भाषा और पर बात की गयी है। इस अध्याय को चार उप-अध्याय में बाँटा गया है- (1) समकालीन हिन्दी संस्मरण की अंतर्वस्तु : शैलीगत वैशिष्ट्य (2) भाषागत वैशिष्ट्य (3) संस्मरण साहित्य में परिवेश की भूमिका (4) संस्मरण साहित्य की चुनौतियाँ। 'समकालीन हिन्दी संस्मरण की अंतर्वस्तु : शैलीगत वैशिष्ट्य' में संस्मरण के कथ्य, शैली और शिल्प पर बात की गई है। 'भाषागत वैशिष्ट्य' में हास्य-व्यंग्य, गांभीर्य-विनोद का मिला-जुला रूप दिखाई देता है। संस्मरण में वस्तुपरकता और तथ्यात्मकता में आए हास्य-विनोद के प्रसंग उसे सरस और बोझिल होने से बचाते हैं। 'संस्मरण साहित्य में परिवेश की भूमिका' में ग्रामीण परिवेश, शहरी परिवेश, प्राकृतिक परिदृश्य आदि पर बात की गई है जो संस्मरण साहित्य को वैविध्यपूर्ण बनाते हैं। कथ्य के अनुसार, परिवेश और वातावरण का बदलते रहना, संस्मरण को ज्यादा रोचक बनाता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण साहित्य का फलक विस्तृत हुआ है। इस फलक में व्यष्टि और समष्टि के विविध आयाम दिखाई देते हैं। हिंदी साहित्य जो यथार्थ कल्पना के कलेवर में उभरता था, आज वही कथेतर गद्य विधाओं के माध्यम से सीधे-सीधे दिखाई दे रहा है। इनमें संस्मरण साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। संस्मरण साहित्य 'पर' और 'आत्म' के मिले-जुले रूप में रूपाकार होता है। 'पर' और 'आत्म' का जो रूप हमारे सामने उभरता है वह व्यष्टि और समष्टि के जीवन-जगत का कोरा यथार्थ है। इसमें व्यक्ति और समाज के विविध रंग दिखाई देते हैं।

आभार

मेरे गुरु और शोध निर्देशक प्रो.ओमप्रकाश सिंह की वजह से यह शोधकार्य सफल हो सका। एक गुरु के प्रति आभार व्यक्त करना, उसके योगदान को सीमित करना है। मेरे जीवन में मेरे गुरु का जो योगदान है उसकी कोई सीमा नहीं हैं। मेरे व्यक्तित्व को बनाने में मेरे माता-पिता के बाद मेरे गुरु जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आपने अपने निर्देशन द्वारा मेरी प्रत्येक त्रुटियों को उजागर कर शोध-प्रबंध को त्रुटिरहित ही नहीं बनाया, बल्कि सोचने-समझने की एक नयी दृष्टि विकसित की। गुरुदेव के प्रयास से मेरी भाषा और लेखनी में काफी सुधार आया, जिसके लिए मैं आजीवन ऋणी रहूँगी। आपकी छत्रछाया में अपने व्यक्तित्व का हमेशा विकास चाहती हूँ। आपका मार्गदर्शन हमेशा मिलता रहे, यही मेरी कामना है।

इस शोध-कार्य को पूरा करने में परिवार का बराबर सहयोग मिलता रहा। मैं आज उम्र के जिस पड़ाव में हूँ उसमें सामाजिक आलोचनाएं अपेक्षित हैं। मेरे परिवार ने तमाम सामाजिक आलोचनाओं का सामना करते हुए मुझे इससे दूर रखा। वे जीवन में आगे बढ़ने के लिए हमेशा मुझे प्रेरित करते रहे और आज भी उत्साह बढ़ाते रहते हैं। मम्मी-पापा और दोनों भाई मेरे जीवन में अनुकरणीय हैं, उनके अवदान को शब्दों में बाँधना असम्भव है।

मैं डॉ. आसिफ़ जहरी और रुबीना जहरी के प्रति आभार व्यक्त करना चाहती हूँ। इन्होंने मुझे दिल्ली जैसे महानगर में परिवार का प्यार दिया। एक अभिभावक की तरह मेरा मार्गदर्शन करते रहे। इन्होंने मुझे परिवार से दूर होने की कमी कभी महसूस नहीं होने दी। मेरी हर परिस्थिति में ये साथ खड़े रहें। इनका प्यार और आशीर्वाद इसी तरह बना रहे।

मैं प्रो काशीनाथ सिंह और प्रो.चौथीरम यादव के प्रति आभार व्यक्त करती हूं, जिन्होंने संस्मरण से जुड़ी तमाम धारणाओं को स्पष्ट किया, जो मेरे शोध कार्य में काफी मददगार साबित हुआ। काशीनाथ सिंह द्वारा दिए गए साक्षात्कार से संस्मरण की सैद्धान्तिकी को समझने में मदद मिली।

मैं अपने सभी सहपाठियों, दोस्तों, मित्रों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने हमेशा मेरा साथ दिया, जिनसे मुझे संबल मिलता रहा और शोधकार्य सरस बना रहा। इस संस्था से जुड़े उस हर व्यक्ति के प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की।

भारतीय भाषा केंद्र **कंचन लता यादव**

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

दिनांक – 17.06.2022

पहला अध्याय

हिंदी संस्मरण लेखन : प्रारंभ और वर्तमान

(i) हिंदी संस्मरण की परिभाषा और स्वरूप

(ii) संस्मरण साहित्य और अन्य कथेतर विधाएं

(iii) संस्मरण साहित्य का वैशिष्ट्य

(iv) हिंदी संस्मरण की परम्परा और विकास

हिंदी संस्मरण की परिभाषा और स्वरूप

हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग विभिन्न गद्य-विधाओं के विकास का युग है। हिंदी साहित्य की बहुधा आधुनिक कथात्मक तथा कथेतर गद्य विधाओं का विकास इस युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। संस्मरण एक ऐसी ही महत्त्वपूर्ण विधा है जिसका हिंदी साहित्य में उद्भव तो भारतेंदु युग में हुआ लेकिन उसका विकास अन्य कथेतर गद्य विधाओं की तरह कालान्तर में हुआ। प्रारंभ में संस्मरण का स्वरुप बहुत स्पष्ट नहीं था। इसे कभी आत्मकथा का हिस्सा मान लिया जाता था, कभी रेखाचित्र, तो कभी जीवनी का! कभी–कभी तो इसे कहानी के अंग के रूप में भी समाहित करने की कोशिश हुई। रेखाचित्र और संस्मरण की आपसी निकटता आज भी विद्वानों में भ्रम पैदा करती है। संस्मरण में अन्य विधाओं की आवाजाही उसके रूप निर्धारण में बाधा पैदा करती है। संस्मरण की विकास परम्परा तथा उसके अन्य पक्षों पर बात करने से पहले 'संस्मरण क्या है?' यह जान लेना जरूरी है। इसकी सैद्धांतिकी क्या है? इन तमाम प्रश्नों पर प्रकाश डालते हुए, यह अन्य कथेतर गद्य विधाओं (आत्मकथा, रेखाचित्र और रिपोर्ताज आदि) से अलग कैसे है, इसको भी समझना आवश्यक है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के साथ-साथ चेतनाशील प्राणी भी है। वह एक सामाजिक समूह में रहता है। उसके पास व्यष्टि-समष्टि के विभिन्न अनुभव संग्रहित रहते हैं। वह अपने जीवनानुभव को कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करता है उसकी इसी अभिव्यक्ति का स्वरूप उसे 'विधात्मक' पहचान दिलाती है। लेखक अपने जीवनानुभवों को शाब्दिक रूप में अभिव्यक्ति करता है जिसके लिए उसे एक विधागत ढ़ांचे की जरूरत पड़ती है उसका यह ढ़ांचा अभिव्यक्ति के स्वरुप, भाषा, शैली, कथ्य आदि से तय होता है। इन अनुभवों के कलात्मक रूप में प्रस्तुतीकरण का एक माध्यम 'संस्मरण' भी है। 'संस्मरण' जैसा की शब्द से ही स्पष्ट है 'स्मृति से' जुड़ा है। स्मृतियाँ हमारे अतीत की होती हैं। संस्मरण हमारे अतीत की स्मृति है। संस्मरण का मुख्य अर्थ 'सम्यक् स्मृति' से है। यह वह स्मृति है जो किसी के साथ बिताये गये सुख-दुःख के पलों, रागात्मक अनुभूतियों, सम्बन्धों की प्रगाढ़ता आदि से जुड़ी है। स्मृतियाँ हमारे दिमाग में रील की तरह चलती हैं। लेखक उसी रील/स्मृति/अतीत की यादों को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करता है। स्मृति का जुड़ाव अतीत और वर्तमान से होता है। यह कहना गलत न होगा कि संस्मरण मूलतः अतीत और वर्तमान के बीच का एक सेतु है। हम कह सकते हैं कि संस्मरण 'समय-सरिता के दो तटों के बीच संवाद का माध्यम है।' संस्मरण एक ऐसी विधा है जिसमें स्मृति पर आधारित किसी व्यक्ति का चित्रण होता है। स्मृत व्यक्ति से जुड़ी स्मृतियों की गठरी को संस्मरणकार रेखांकित करता है जिसमें स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के साथ-साथ उसके जीवन के तमाम पहलू उभरकर सामने आते हैं। डॉ. रामचंद्र

तिवारी संस्मरण को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- “संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है।”[1] रंजना अरगड़े संस्मरण के संदर्भ में कहती हैं- “संस्मरण स्मृतिपरक होते हैं- यह उनके होने की पहली शर्त है।”[2] विजय मोहन सिंह संस्मरण के संदर्भ में कहते हैं- “संस्मरण सामान्यत: उन विशिष्ट दिशाओं में मोड़ लेता है जो हमारे ऊपर ऐसा अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं, जिन्हें हम भूल नहीं पाते। खास तौर पर जब वे नहीं होते हैं तो उनकी स्मृतियाँ हमारा पीछा करती हैं और वही हमें उनकी ओर फिर से खींचने लगते हैं। अनेक संस्मरण ऐसे ही क्षणों में लिखे जाते हैं और यही संस्मरणों का सर्वोत्तम रूप होता है।”[3] संस्मरणकार अपने अतीत की स्मृतियों को याद करता है। वह उन स्मृतियों में शामिल भी रहता है इसलिए जाहिर सी बात है कि वह जब भी स्मृत व्यक्ति के जीवन प्रसंगों को रेखांकित करेगा, उसका भी व्यक्तित्व स्वाभाविक रूप से उभरकर आएगा। इसी संदर्भ में महादेवी वर्मा ‘अतीत के चलचित्र’ में लिखती हैं- “इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उनके बाहर तो अनंत अंधकार के अंश हैं। जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपांतरित हो जायेगा।...परन्तु मेरा निकटता-जनित आत्म-विज्ञापन उस राख से अधिक महत्त्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रहती है। जो इसके पार नहीं देख सकता, वह इन चित्रों के लिए ह्रदय तक नहीं पहुँच सकता।”[4]

संस्मरण एक ऐसी विधा है जो मूलतः किसी व्यक्ति की स्मृति पर आधारित या आश्रित होती है। संस्मरण में ‘पर’ के साथ ‘आत्म’ भी समाहित रहता है बावजूद इसके वह न तो आत्मकथा है, न जीवनी और न ही रेखाचित्र। संस्मरण कथात्मक होते हुए भी कथात्मक विधा नहीं है। यह एक ऐसी विधा है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत संबंधों पर आधारित है। संस्मरण स्मृत व्यक्ति के जीवन के तमाम पहलुओं को समेटे हुए है। रचनाकार अपने खट्टे-मीठे अनुभवों को ईमानदारी से साझा करता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को रूपाकार करता है। संस्मरण स्मृत व्यक्ति के जीवन के विविध पक्षों को गहराई से मूल्यांकन करने का अवसर भी प्रदान करता है। संस्मरणकार संस्मरण में अपने समय के उस इतिहास को लिखना चाहता है जो वस्तुनिष्ठ, वस्तुपरक न होकर स्वयं के अनुभव पर आधारित होता है। इसमें स्वयं की भावनात्मक भावाभिव्यक्ति के साथ संवेदना महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। संस्मरणकार इतिहासकार के समान विवरण प्रस्तुत नहीं करता बल्कि अपने आसपास पसरे चतुर्दिक जीवन का सर्जन करता है। किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना और स्थान को याद करते हुए

लेखक अपनी अनुभूतियों, संवेदनाओं और स्मृति के आधार पर आत्मीयतापूर्वक रचे गये साहित्य को संस्मरण की संज्ञा दी गयी है।

हिंदी संस्मरण और अन्य कथेतर विधाओं के विधागत रूप को लेकर अनेक भ्रांतियाँ हैं जिनसे इसके सही रूप को समझने में तमाम दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। हिंदी संस्मरण विधा के लिए अन्य विधाओं के घालमेल और आवाजाही की बात अक्सर उठती रहती है, जिसके आधार पर सहृदय-सुधी पाठक या आलोचक इसे कभी जीवनी का हिस्सा समझने का भ्रम पाल लेते हैं, तो कभी आत्मकथा, रेखाचित्र आदि का। आज भी हिंदी संस्मरण के साथ-साथ अन्य कथेतर गद्य विधाओं को गंभीरता से नहीं लिया जाता है।

हिंदी संस्मरण और अन्य कथेतर विधायें एक-दूसरे से अलग तथा किन अर्थों में भिन्न हैं। इन तमाम बातों को ध्यान में रखते हुए संस्मरण साहित्य के विधागत विलगाव को देखने के लिए उस पर विस्तार से चर्चा करने की जरूरत है।

संस्मरण साहित्य और अन्य कथेतर विधाएं

कथा-साहित्य को छोड़कर प्रारंभ में कथेतर गद्य विधाओं का विकास हिंदी गद्य की अन्य विधाओं के मिले-जुले रूप में भले हुआ हो, लेकिन कालान्तर में कथेतर गद्य विधाओं ने अपना अलग स्वतन्त्र विधागत स्वरूप ग्रहण किया। प्रारंभ में इनका विकास उपन्यास-कहानी जैसी कथात्मक गद्य विधाओं की तरह नहीं हुआ। यह कथा साहित्य की तरह लोकप्रियता हासिल नहीं की। समय के साथ इन विधाओं ने न सिर्फ अपना विकास किया बल्कि स्वतंत्र विधा के रूप में साहित्य में अपनी पहचान बनायी। संस्मरण भी इन्हीं नवीन गद्य विधाओं में से एक महत्त्वपूर्ण और बेहद समृद्ध विधा के रूप में अपनी पहचान बना चुका है।

संस्मरण और अन्य कथेतर गद्य विधाएं एक-दूसरे से अलग कैसे है? यह तभी स्पष्ट होगा जब हम इन गद्य विधाओं के कथ्य, स्वरूप और प्रकृति पर बात करेगें। संस्मरण को एक लचकदार विधा के रूप में जाना जाता है। इसके तत्त्व अन्य विधाओं में भी देखने को मिल जाते हैं। संस्मरण और अन्य कथेतर गद्य विधाओं (आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, डायरी आदि) के बाह्य स्वरूप को देखा जाय तो कहीं न कहीं वह एक-दूसरे से जुड़ीं हुईं नजर आती हैं। इसका सबसे बड़ा कारण हैं कि एक विधा का दूसरे विधा से निकलना। यह विधागत विलगाव अपने कुछ लक्षण, दूसरी विधाओं में छोड़ जाते हैं। कई बार तो ऐसा भी होता है कि एक विधा दूसरी विधा से निकलकर ही अपने स्वरूप का निर्माण करती है। अपने पूर्ववर्ती विधाओं से कुछ स्वरुप और लक्षणों को ग्रहण करके एक नई विधा का विकास होने लगता है। ऐसी स्थिति में निर्मित हुयी विधा को उसकी पूर्ववर्ती विधा से अलग करना मुश्किल होता है। उनके बीच का बाह्य अंतर तो स्पष्ट नहीं होता है लेकिन उनके आंतरिक स्वरुप में भिन्नता देखने को मिलती है। अत: कह सकते हैं कि यह विधाएं एक स्थान पर खड़े नजर आते हुए भी दूसरी जगह एक-दूसरे से अलग प्रतीत होती हैं। संस्मरण और रेखाचित्र में यह दुविधा आज भी बनी हुई है कि किस पैमाने के आधार पर संस्मरण और रेखाचित्र को अलग किया जाय? मसलन देखा जाय तो महादेवी वर्मा की रचना 'अतीत के चलचित्र', 'पथ के साथी', 'स्मृति की रेखाएं' को संस्मरण और रेखाचित्र के किस खाँचे में रखा जाय, यह भ्रम आज भी बना हुआ है। इसका कारण रूपगत और विषयगत समानता का होना है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ विधाओं में स्वरूपगत समानता होते हुए विषयगत असमानता देखने को मिलती है। कथेतर गद्य विधाओं में आत्मकथा और संस्मरण की बात करें तो दोनों विधाओं में यथार्थ और अतीत का चित्रण होता है। आत्मकथा में जहाँ स्वयं लेखक केंद्र में होता है दूसरे लोग परोक्ष में होते हैं वहीं संस्मरण में दूसरे व्यक्ति केंद्र में होते हैं लेखक परोक्ष रूप में आता है। ऐसे ही देखा जाय तो- रेखाचित्र, रिपोर्ताज, जीवनी, आत्मकथा और संस्मरण में एकरूपता का कारण 'स्मृति' है। इन विधाओं का आधार स्मृति है। स्मृति को

आधार बनाकर रचनाकार अतीत से वर्तमान का सफ़र तय करता हैं। यही कारण हैं कि इन विधाओं की विधागत बारीकियों और भिन्नताओं को समझाना आवश्यक है।

आत्मकथा और संस्मरण:

आत्मकथा का लेखक अपनी जीवन गाथा या जीवन कथा का वर्णन करता है। आत्मकथा के केंद्र में आत्मकथाकार खुद होता है। इसमें समाज, इतिहास की वही परिस्थितियां आ पाती हैं जिससे उसका साबका हुआ रहता है या वहीं चीज़ें आती हैं जो उसके जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित की होती हैं। लेखक द्वारा आत्मान्वेषण और आत्मालोचन, जिसे वह क्रमिक रूप से प्रस्तुत करता है, उसे आत्मकथा कहा जा सकता है। आत्मकथा और संस्मरण के बारीक़ अंतर को समझाते हुए विजय मोहन सिंह कहते हैं कि आत्मकथा और संस्मरण "दोनों अपने अतीत में की गयी अंतर्यात्राएं हैं। संस्मरण में लक्ष्य कोई व्यक्ति विशेष या स्थान विशेष होता है। आत्मकथा में भी अतीत में की गयी यात्राओं के विभिन्न पड़ावों पर अनेक व्यक्ति या स्थान आते रहते हैं। फर्क यह है कि संस्मरण उन पर केन्द्रित हो जाता है और आत्मकथा उन्हें छोड़ती हुयी अगले पड़ावों की ओर बढ़ जाती है।"[5]

आत्मकथा और संस्मरण के तमाम पक्ष समान दिखाई देते हैं। दोनों में तटस्थता आवश्यक होती है। तटस्थता में ढील रचना को कमजोर और अविश्वसनीयता की ओर ले जाती है। आत्मकथा स्वानुभूति पर आधारित होती है। इसमें लेखक अपने भोगे हुए या जिये हुए अनुभव को अंकित करता है। पूरी आत्मकथा में लेखक के जीवन का भोगा हुआ यथार्थ मुख्य होता है बाकी उससे जुड़े लोग और अन्य आसपास की चीज़े गौड़ होती है। देखा जाय तो आत्मकथा का लेखक अपने निजी अनुभव को अर्थात स्वयं को अभिव्यक्त करता है जबकि संस्मरणकार का दृष्टिकोण इससे भिन्न होता है। संस्मरण में लेखक का अनुभव होता है लेकिन स्वानुभूति के स्तर का नहीं बल्कि इससे थोड़ा भिन्न। इसमें 'स्व' से ज्यादा 'पर' महत्त्वपूर्ण होता है। संस्मरण में लेखक दूसरे के माध्यम से स्वयं को अंकित करता है। इसमें 'पर' मुख्य होता है और 'स्व' गौड़ होता है। 'पर' और 'आत्म' का मिला जुला रूप संस्मरण होता है। संस्मरण का 'आत्म' शब्द ही आत्मकथा के नजदीक ले जाता है। एक स्तर ऐसा आता है कि दोनों विधायें एक-दूसरे से भिन्न हो जाती हैं। कहा जा सकता है कि "आत्मकथा में निजी जीवन के दस्तावेजीकरण की कोशिश होती है तो संस्मरण में दस्तावेज की शुष्कता के बजाए भावना अधिक सक्रिय हो उठती है इसलिए अतीत के मुलाकाती, परिजन, घटनाएँ अधिक आत्मीयता से प्रस्तुत हो पाती हैं। संस्मरण को आत्मकथा का फ्लैश कहा जा सकता है।"[6]

आत्मकथा एकालाप होती है जो लेखक के इर्द-गिर्द घूमती रहती है जबकि संस्मरण में दो या दो से अधिक लोगों का रूपांकन किया जा सकता है। आत्मकथा जीवन के अतीत का

क्रमबद्ध या क्रमिक रूप प्रस्तुत करती है जो इतिहास का बोध कराती है। कहा जा सकता है कि आत्मकथा ऐतिहासिक दस्तावेज का रूप है जो भविष्य के लिए ग्राह्य और महत्त्वपूर्ण हैं। जबकि संस्मरण किसी व्यक्ति के जीवनातीत के किसी एक पहलू या अंश को उठाता है।

जीवनी और संस्मरण:

जीवनी को अंग्रेजी में 'बायोग्राफी'(biography) कहते हैं। जीवनी का आशय है कि 'किसी व्यक्ति विशेष के जीवन का वृत्तान्त'। जीवनी और संस्मरण अपनी तमाम साम्यताओं के बावजूद अलग विधागत पहचान रखती हैं। जीवनी संस्मरणात्मक हो सकती है और संस्मरण जीवनीपरक भी होते हैं। शिवरानी देवी द्वारा लिखित जीवनी 'प्रेमचंद घर में' की शैली संस्मरणात्मक है लेकिन स्वरुप और विषयवस्तु की दृष्टि से देखें तो जीवनीपरकता विशेष्य है। संस्मरण और जीवनी की केन्द्रीयता पर बात करें तो जीवनी जितनी वस्तुनिष्ठ होती है उतनी आत्मनिष्ठ नहीं। जीवनी में यह जरूरी नहीं होता है कि जिसकी जीवनी लिखी जा रही है उससे आत्मीय सम्बन्ध या निकटता हो। बिना आत्मीय सम्बन्ध के, उस व्यक्ति से जुड़ें तमाम स्रोतों के आधार पर जीवनी लिखी जा सकती है जबकि संस्मरण में ऐसा संभव नहीं है। संस्मरण को बिना व्यक्तिगत सम्बन्ध के लिखना संभव नहीं है। जीवनी लिखते समय जीवनीकार लेखन में कहीं मौजूद नहीं रहता है, सिर्फ लेखन में उसका नजरिया होता है। जीवनी लेखक उस व्यक्ति विशेष के जीवन के कुछ पक्षों को उभारता चलता है जिसकी जीवनी लिखी जा रही हो जबकि संस्मरण में संस्मरणीय व्यक्ति के साथ-साथ स्वयं लेखक भी उपस्थित रहता है। संस्मरण में लेखक और स्मृत व्यक्ति के आंतरिक सम्बन्ध दिखाई देते हैं। जीवनी लिखते समय लेखक स्वयं को नहीं वर्णित करता है वह दूसरे को ही व्यक्त करता है जबकि संस्मरण में लेखक संस्मरणकार के साथ-साथ स्वयं को भी व्यक्त करता है। उसकी उपस्थिति बनी रहती है। "संस्मरण में लेखक स्वयं उपस्थित होता है, जबकि जीवनीकार को अपने समय और साथ ही सुदूर अतीत से सामग्री ग्रहण कर उसे सजाने और व्यवस्था देने के लिए सर्वथा तटस्थ रहना पड़ता है।"[7] संस्मरण में संस्मरणकार के प्रति गहरा अनुभव होता है। लेखक जिसका संस्मरण लिख रहा होता है उसके जीवन की गहराई से जुड़ा होता है उसके साथ उसका अन्तरंग सम्बन्ध काफी गहरा होता है जबकि जीवनी में अनुभवजन्य गहराई अपेक्षाकृत कम होती है। हम कह सकते हैं, "संस्मरण आत्मपरक होता है और जीवनी वस्तुपरक होती है। हाँ, संस्मरण भी तथ्यात्मक तो होता ही है, वस्तुपरक भी होता है, जबकि विशेषत: वह लेखक द्वारा दूसरों के सम्बन्ध में लिखा या कहा जाता है, लेकिन उसका सत्य स्वयं लेखक द्वारा अनुभूत होता है, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति में आत्मीयता भी आ जाती है जो जीवन में सहज ही संभव नहीं है"[8] जीवनी में व्यक्ति के जीवन का क्रमवार वर्णन होता है, उसमें उसके जीवन का ज्यादातर हिस्सा उभारा जाता है। यहाँ जीवन के पहलुओं

को दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। कहा जाता है कि "जीवनी इतिहास का विषय है और विषय-वर्णन की यथातथ्यता की दृष्टि से वह ऐतिहासिक वर्णन विधि पर ही निर्भर है, लेकिन संस्मरण इतिहास की सामग्री होकर भी इतिहास तो नहीं ही है, इसलिए इस बिंदु पर जीवन की संस्मरण से समीपता इस बात में है कि जीवनी जाति या समुदायगत न होकर हमेशा व्यक्ति की होती है।"[9]

रेखाचित्र और संस्मरण:

रेखाचित्र अंग्रेजी के 'स्केच'(sketch) शब्द का पर्याय है। जैसे स्केच या रेखा के माध्यम से किसी व्यक्ति, वस्तु आदि का अंकन किया जाता है वैसे ही रेखाचित्र में कम से कम शब्दों से किसी व्यक्ति, वस्तु और घटना का चित्रण होता है। रेखाचित्र के संदर्भ में रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है, "रेखाचित्र में भी किसी व्यक्ति, वस्तु या सन्दर्भ का अंकन किया जाता है। यह अंकन पूर्णत: तटस्थ भाव से निर्लिप्त रहकर किया जाता है। रेखाचित्र में रेखाएं बोलती हैं। जिस प्रकार कुछ थोड़ी सी रेखाओं का प्रयोग करके रेखाचित्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु की मूलभूत विशेषता उभार देता है, उसी प्रकार कुछ थोड़े से शब्दों का प्रयोग करके साहित्यकार किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी मूलभूत विशेषता के साथ सजीव कर देता है।"[10] रेखाचित्र और संस्मरण को एक मानने की भ्रामकता अक्सर बनी रहती है क्योंकि दोनों का आधार 'स्मृति' है। दोनों में अतीत का शब्दांकन हैं। ऐसे में दोनों विधाएं अनेक जगहों पर एक-दूसरे की साम्यता को जाहिर करती हैं। यह साम्यता पाठकों को भ्रमित करती है इसी से यह तय कर पाना मुश्किल है कि किसे संस्मरण के खांचे में रखा जाय और किसे रेखाचित्र। संस्मरण और रेखाचित्र के विधागत अलगाव का द्वंद्व आज भी बना हुआ है। बनारसीदास चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'संस्मरण' में इसकी जटिलताओं पर बात करते हुए कहते हैं, "संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित इन तीनों का एक-दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है इसका निर्णय करना कठिन है। इन तीनों को स्मरण शक्ति से काम लेना होता है और स्मरण शक्ति एक ऐसी चीज़ है जो प्राय: धोखा दे जाती है।"[11] संस्मरण और रेखाचित्र की एकरूपता ऐसी होती है कि ऐसे में कभी-कभी रेखाचित्र संस्मरणात्मक हो सकता है और संस्मरण रेखाचित्रात्मक। संस्मरण और रेखाचित्र के यथार्थ और विश्वसनीयता पर बात करें तो रेखाचित्र में पात्र काल्पनिक हो सकते हैं लेकिन उसका कथ्य यथार्थ पर टिका होता है। रेखाचित्र में पात्र की नहीं बल्कि विषय और कथ्य की यथार्थता ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है। लेखक कुछ हद तक कल्पना का सहारा ले सकता है लेकिन संस्मरण में यह छूट नहीं है। संस्मरण के पात्र लेखक की कल्पनालोक के नहीं बल्कि लेखक के यथार्थ जीवन से जुड़े होते हैं। संस्मरण में जितनी भूमिका विषय और कथ्य के यथार्थता की होती है उतनी

विश्वसनीयता और पात्र की। पात्रों के स्तर पर देखा जाय तो संस्मरण ज्यादा यथार्थ और विश्वसनीय होता है जबकि रेखाचित्र में यथार्थता संस्मरण से कम नहीं होती है लेकिन विश्वसनीयता अपेक्षाकृत कम होती है। संस्मरण और रेखाचित्र में पात्र या व्यक्तित्व या व्यक्ति यथार्थ की बात करें तो संस्मरण ऐसे व्यक्तियों के लिखें जाते हैं जो लेखक को व्यक्तिगत रूप से प्रभावित किया हो या उनपर जिनका व्यक्तित्व चर्चित और प्रभावी रहा हो तथा जिनका लेखक के साथ कभी न कभी किसी रूप में साबका रहा हो या लेखक से घनिष्ठ आत्मीयता हो। रेखाचित्र में व्यक्ति विशेष या व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण नहीं होता है बल्कि व्यक्ति के माध्यम से उभारा गया यथार्थ महत्त्वपूर्ण होता है जिसे रचनाकार दिखाना चाहता हो। रेखाचित्र में पात्र यथार्थ भी हो सकते हैं और काल्पनिक भी। लेखक चाहे तो इस बात का स्पष्टीकरण दे सकता है कि रेखाचित्र के पात्र यथार्थ हैं या काल्पनिक। रेखाचित्र और संस्मरण की भिन्नता का आधार इतने कमजोर हैं कि इन आधारों पर विधागत अलगाव में अस्पष्टता बनी रहती है। यही कारण हैं कि इस आधार पर रेखाचित्र और संस्मरण को अलग कर पाना मुश्किल है। रेखाचित्र के संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि इसके वाक्य सजीव और छोटे-छोटे होते हैं। इसमें वाक्य संरचना और वाक्य विन्यास की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। कम से कम शब्दों में सजीव, वास्तविक, यथार्थ, भावाभिव्यक्ति और प्रभावशाली चित्रांकन होता है जबकि संस्मरण में ऐसी कोई शर्त नहीं होती है। संस्मरण में वाक्य विन्यास विवरणात्मक, समीक्षात्मक आदि भी हो सकते हैं। “दूसरे का स्मरण किया जाए तो उसे संस्मरण-चित्र कहना अधिक सही लगता रहेगा। लेकिन वह रेखाचित्र से भिन्न ही रहेगा क्योंकि रेखाचित्र प्रायः स्टिल-लाईफ पेंटिंग जैसे होते हैं।”[12]

रिपोर्ताज और संस्मरण:

'रिपोर्ताज' का सम्बन्ध 'रिपोर्ट'(report) से माना जाता है। 'रिपोर्ट' शब्द फ्रांसीसी है। हिंदी में यह 'समाचार पत्र' के रूप में है। रिपोर्ताज का पत्रकारिता से गहरा सम्बन्ध है क्योंकि रिपोर्ताज की शुरुआत ही हिंदी पत्रकारिता से हुई। हलाँकि, पत्रकारिता में घटनाओं को ज्यों का त्यों दिखाया जाता है जबकि रिपोर्ताज कोरी घटना नहीं होता है। रिपोर्ताज में घटनाओं को साहित्यिक रूप प्रदान किया जाता है जिसमें संवेदना और कलात्मकता होती है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 'रिपोर्ताज' को विधा के रूप में पहचान मिली। युद्ध की विभीषिका को रिपोर्ताज ने एक नये शैली और जीवन्तता के साथ प्रस्तुत किया। 'रिपोर्ट' का इतना जीवंत रूप और सजीव चित्रण ने उस समय के लोगों को ऊर्जा और मानवीय संवेदना को आयाम दिया। योद्धाओं का साहस और पराक्रम ने लोगों को प्रेरित किया। रिपोर्ताज घटनाओं का जीवंत रूप तो है लेकिन वस्तुनिष्ठ रूप में। यह संस्मरण की तरह आत्मनिष्ठ नहीं होता है। संस्मरण में आत्मीय सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण होता है। लेखक उन्हीं पर संस्मरण लिखता है जिसके वह नजदीक होता है, जिनसे घनिष्ठता होती है। लेखक स्मृत व्यक्ति के विभिन्न पक्षों को गहराई से जानता है। रिपोर्ताज क्षण विशेष या समय विशेष को आधार बनाकर लिखा जाता है। इसमें व्यक्ति नहीं घटना महत्त्वपूर्ण होती है। यह दृश्यांकन का साहित्यिक रूप है। रचनाकार जो कुछ देखता है और उस देखने में जो कुछ अनुभव करता है उसको अपनी दृष्टि के आधार पर एक कलात्मक स्वरुप प्रदान करता है।

रिपोर्ताज में कभी-कभी ऐसा भी होता है कि घटनाओं को सुनकर या किसी प्रस्तुति द्वारा भी रिपोर्ताज लिखा जाता है। "कभी जब कानों सुनी घटना पर रिपोर्ताज लिखा जाता है तब यह भी जरूरी होता है कि लेखक को घटना के इतिहास और परिवेश का प्रत्यक्ष अनुभव हो जिसके बल पर वह स्मृत रूपविधान के सहारे घटना को शब्दचित्र के रूप में सजीव कर दे। अत: उसकी भाषा सजीव, मर्मस्पर्शी एवं संवेदना जागृत करने वाली होती है। एक समर्थ रचनाकार के रिपोर्ताज की भाषा घटना के अतीत को अनावृत करती, वर्तमान का साक्षात्कार कराती है और भविष्य की ओर संकेत करते हुए अनेक भंगिमाएं धारण करती है तथा रचना की प्राणशक्ति बनकर पूरे अनुभव को सजीव एवं प्रत्यक्ष कर देती है।"[13] संस्मरण अतीत की घटनाओं को वर्तमान रूप में प्रस्तुत किया जाता है। स्मृति के आधार पर लेखक कभी भी संस्मरण लिख सकता है जबकि रिपोर्ताज में घटना का दृश्यांकन कर उसी समय प्रस्तुत किया जाता है। डॉ.कामेश्वर शरण सहाय कहते हैं- "संस्मरण में अतीत की गंध होती है, उसमें विगत प्रसंगों और उन्हीं क्षणों की अनुभूतियों का वर्णन होता है, जिन्हें पहले से भोगा जा चुका हो, जबकि रिपोर्ताज में वर्तमान का बोध होता है, जिसमें घटनाओं तथा तथ्यों के प्रस्तुत होने अथवा सद्य: साक्षात्कार करने का भाव व्यक्त होता है।"[14] भले ही

रिपोर्ताज का सम्बन्ध वर्तमान से होता है, लेकिन इसका “वर्तमान भूत और भविष्य से कटा हुआ नहीं है”[15]

यात्रावृत्तांत और संस्मरण:

एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की क्रिया को यात्रा कहते हैं। यह यात्रा स्थान विशेष के संदर्भ में है लेकिन इस यात्रा से इतर जीवन को यात्रा के रूप में देखा गया है। यात्रा अनेक कारणों से की जाती है। यह यात्रा कभी जीविका के लिए, तो कभी ज्ञानार्जन तथा प्रकृति रमणीयता के सुखद अनुभूतियों के लिए की जाती है। यात्रा के पीछे यात्री का अनेक उद्देश्य होता है। वह उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भ्रमण करता है। यात्रा वृत्तान्त में व्यक्ति यात्रा के दौरान अपने जीवन के अनुभवों को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करता है, जो उसके जीवन की अतीत या वर्तमान की स्मृतियों से जुड़ा हुआ होता है। संस्मरण और यात्रा वृत्तान्त के मध्य अनेक साम्यता के बावजूद तमाम भिन्नताएं हैं। अतीत का अनुभव, स्मृतियों का चित्रांकन, वैयक्तियता, तादात्म्यता, आत्मीयता, रोचकता आदि तात्त्विक विशेषताएं, दोनों विधाओं में देखने को मिलती है लेकिन ये तत्त्व जब अपना स्वरूप निर्धारित करते हैं तो दोनों में स्वरूपगत भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। यही कारण है कि दोनों विधाएं अलग-अलग घटना, स्थान, स्थिति और उद्देश्य के सन्दर्भ में प्रस्तुत की जाती हैं। तात्त्विक समानता होने के बावजूद दोनों के भावात्मक रूप बदले हुए दिखाई देते हैं।

यात्रा वृत्तान्त स्थान-विशेष के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है। यात्रा वृत्तान्त में स्थान की विशिष्टता महत्त्वपूर्ण होती है। लेखक अपने पसंदीदा स्थान पर भ्रमण करता है इस भ्रमण के दौरान उसका तमाम वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और प्राकृतिक स्थितियों से साबका होता है। जिसके माध्यम से अपने अनुभवजन्य यात्राओं को वह स्मृतियों में सजोता है। इस यात्रा में उसका विभिन्न व्यक्तियों से मिलना, सामाजिक भिन्नताओं को देखना, सांस्कृतिक विविधताओं से रू-ब-रू होना, राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों को समझना, प्राकृतिक सुन्दरता और रमणीयता की जीवन्तता को वह अपने यात्रावृत्तांत में रेखांकित करता है। स्थानीय विविधता यात्रावृत्तांत को समृद्ध करती है। संस्मरण में प्राथमिकता व्यक्ति-विशेष की होती है। इसमें स्थान के हवाले से व्यक्ति नहीं बल्कि व्यक्ति के हवाले से स्थान आता है। इसमें विषयगत विविधता व्यक्ति के माध्यम से आती है।

संस्मरण और यात्रा वृत्तान्त दोनों में आत्मीयता जरूरी है लेकिन जहाँ संस्मरण में यह आत्मीयता व्यक्तिगत सम्बन्ध के प्रति होती है, वहीं यात्रा वृत्तांत में स्थान विशेष के प्रति आत्मीयता होती है। लेखक को उन सभी चीज़ों से तादात्म स्थापित करना होगा जो यात्रा के दौरान देखी, मिलती या घटित होती है। उन दृश्यों को इस प्रकार वर्णित करना होगा कि

मालुम हो कि लेखक उससे प्रभावित हुआ है। तभी लेखन में स्वाभाविकता और आत्मीयता आएगी वरना यात्रा वृत्तान्त पर्यटन गाईड बनकर रह जायेगा।

वैयक्तिकता के सन्दर्भ में बात करें तो यह प्रत्येक विधा में किसी न किसी रूप में देखने को मिलती है। जितना यह यात्रावृत्तांत के लिए लिए जरूरी है उतना ही संस्मरण के लिए भी। लेकिन दोनों के सन्दर्भ अलग-अलग हैं। यात्रा वृत्तांत में यह यात्रा के दौरान मिले व्यक्तियों (जिनसे पहले कोई सम्बन्ध न रहा हो, जो बिल्कुल अजनबी होते हैं) के प्रति वैयक्तिकता होती है, उन्हें अपने प्रभावी व्यक्तित्व के आधार पर प्रभावित करना होता है। जबकि संस्मरण में यह वैक्तिकता अपने किसी जानने वाले के प्रति होती है जिससे पहले से हमारा आत्मीय सम्बन्ध होता है। इस आत्मीय सम्बन्ध में हमारी भावना छिपी होती है। जिनके साथ हमारी तमाम यादें किसी न किसी रूप में जुड़ी होती हैं।

रोचकता के संदर्भ में बातें करें तो यात्रावृत्त और संस्मरण में अलग-अलग रूपों में रोचकता का प्रयोग किया जाता है। संस्मरण में रोचकता लाने के लिए भाषा-शैली के साथ-साथ उसके जीवन से जुड़े कुछ रोचक प्रसंग को उद्घाटित किया जाता है, जो बिल्कुल यथार्थ होता है जबकि यात्रावृत्त में रोचकता लाने के लिए किसी स्थान से जुड़ी लोक-कथा, दंत-कथा आदि प्रसंगों का उपयोग करते हैं। जिसमें यथार्थ की गुंजाईश कम होती है। इसके साथ ही यात्रा लेखक की दृष्टि तथ्यों की ओर होती है। यह तथ्य भौगोलिक और ऐतिहासिक अधिक होते हैं। इसका लेखन इतिहास-भूगोल की लेखन शैली में न होकर कथा के सरल, सहज भाषा शैली का प्रयोग किया जाता है जिससे पाठक बोर नहीं होता और यात्रावृत्त की रोचकता बनी रहती है।

डायरी और संस्मरण:

डायरी शब्द अंग्रेजी से हिंदी में आया है। हिंदी में इसके दैनिकी, दैनन्दिनी जैसे कई पर्याय मौजूद हैं। डायरी में व्यक्ति के जीवन की दैनन्दिन घटनाओं का ब्यौरा दिया जाता है। डॉ.माजदा असद का मानना है "डायरी से रोज लिखे जाने वाले तथ्यों, घटनाओं और कार्यों का पता चलता है। जब कोई व्यक्ति दिन, तिथि, सन् के आधार पर अपने जीवन में घटित घटनाओं, अपने द्वारा देखी गई अनेक परिस्थितियों-धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक आदि का चित्रण करता है तो वह रचना डायरी की संज्ञा पाती है।"[16] दैनिक जीवन के ब्यौरों को साहित्यिक तथा विधागत रूप देने के संदर्भ में हृदयेश का मानना है "डायरी का लेखन उसी रोज देखी गई चीजों या प्राप्तगत अनुभवों व सोचों-विचारों का वहाँ दर्ज मोटा-मोटा ब्यौरा होता है यानी बहुत-कुछ कच्ची टीपें। जब डायरी को प्रकाश में लाना होता है तब उसमें फ़ालतू को बाहर करने के साथ-साथ उसमें जरूरी नए को सम्मिलित किया जाता है, उस देखे गये, अनुभव किये गए या उद्‌भूत सोचों-विचारों की सही-सही

तस्वीर प्रस्तुत करने के वास्ते या स्थान विशेष के इतिहास, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को अधिक से अधिक वास्तविकता के निकट लाने के लिए। डायरी लिखते समय उस छूट गए का उपयोग करने में स्मृति ही सहायक बंटी है। इस स्मृति में छूट गए उन रगोरेशों की भी हिस्सेदारी रहती है जिनकी उपयोगिता उस प्रस्तुति की जीवन्तता के लिए अपरिहार्य होती है। साहित्य सृजन के विभिन्न माध्यमों में यदि एक माध्यम संस्मरण है तो डायरी है उसकी एक शैली अर्थात् शिल्पगत एक प्रबंधन।”[17] डायरी और संस्मरण दोनों कथेतर गद्य विधाएं हैं। दोनों में व्यक्ति है, जीवन है, लेकिन इन विधाओं में कई स्तर पर भिन्नता देखने को मिलती है। डायरी में प्रयुक्त दैनंदिन शब्द, डायरी के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। इसमें प्रत्येक दिन की घटनाओं को तिथि, सन् के आधार पर लिखा जाता है। डायरी में व्यक्ति के व्यक्तित्व के साथ-साथ दैनिक जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि घटनाएँ दर्ज होती हैं। डायरी में घटनाएँ क्रमवार आती है जबकि संस्मरण में इस तरह की कोई बाध्यता नहीं होती है। इसे जीवन के किसी भी हिस्से को आधार बनाकर लिखा जाता है। डायरी का दैनंदिन शब्द ही, डायरी और संस्मरण को एक-दूसरे से अलग करता है। संस्मरण दैनिक जीवन का नहीं लिखा जाता है इसका आधार आत्मीय व्यक्ति के जीवन की घटनाओं की ‘स्मृति’ होती है। यह स्मृति अपने से जुड़े व्यक्ति की होती है। कभी-कभी स्मृति धोखा भी दे देती है जिससे तमाम चीज़े छूट भी जाती हैं जबकि डायरी में इसकी संभावना नहीं के बराबर होती है। डायरी व्यक्ति के ‘अपने’ जीवन की दैनिकी होती है अर्थात व्यक्ति अपने प्रत्येक दिन को दर्ज करते हुए चलता है। इसमें व्यक्ति के ‘स्व’ की प्रधानता होती है। ‘स्व’ के माध्यम से ‘पर’ आता है अर्थात लेखक डायरी अपने लिए और अपने जीवन से जुड़ी तमाम घटनाओं के बारे में लिखता है। इसमें दूसरें व्यक्ति की उपस्थिति प्रत्यक्ष रूप से नहीं बल्कि किसी घटना या अनुभूति के माध्यम से देखने को मिलती है। संस्मरण में ‘पर’ प्रधान होता है। ‘पर’ के साथ ‘स्व’ स्वत: दर्ज होता है।

डायरी किसी व्यक्ति की निजता से जुड़ी होती है। डायरी लेखक अपनी निजता का विवेचन भावनाओं और अभिव्यक्तियों द्वारा करता है। डायरी में लेखक के निजी जीवन के कार्यों, विचारों और भावों की अभिव्यक्ति होती है। जिसके कारण यह अन्य विधाओं से ज्यादा विश्वसनीय और प्रामाणिक होती है। डायरी में “कलात्मकता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। यहाँ तो लेखक की भावनाएं निर्झर की तरह अपना रास्ता बना लेती हैं। शिल्प के प्रति लेखक जागरूक है तो स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है।”[18]

कहानी और संस्मरण:

कथा और संस्मरण कई अर्थों में एक दूसरे से भिन्न होने के बाद भी कई समानताएँ लिए हुए हैं। कहानी और संस्मरण की कथात्मकता की बात करें तो दोनों विधाएँ कथात्मक

होती है। हृदयेश ने कथा साहित्य को संस्मरण से जोड़कर देखा है। दोनों विधाओं की कथात्मकता के सन्दर्भ में उनका मानना है "संस्मरण भी कथा-विधा का सहचर या सहबंधु है, क्योंकि यह संस्मृत व्यक्ति के अन्दर और बाहर के जगत की गाथा ही कहता है, उसमें आए तमाम प्रसंगों, प्रकरणों और संदर्भों की प्रारम्भ से अंत तक सुसंबद्धता साधे हुए।"[19] कथा-तत्त्व दोनों में भरपूर मात्रा में विद्यमान रहते हैं लेकिन कहानी के कथा तत्त्व में यथार्थ पर कल्पना का कलेवर चढ़ा होता है वहीं संस्मरण में सिर्फ वास्तविकता का। यह अंतर इन दोनों विधाओं को एक स्तर पर समानता के धरातल पर ले जाता है तो वहीँ दूसरे स्तर पर बिल्कुल भिन्न दिखाई देता है। महादेवी वर्मा 'अतीत के चलचित्र' की भूमिका में लिखती हैं- "जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है, उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की सृष्टि क्यों करती!"[20]

रोचकता संस्मरण और कहानी दोनों का समानधर्मा गुण है। दोनों विधाओं में कथा को जानने की उत्सुकता बनी रहती है। किसी विषय के प्रति उत्सुकता ही उसकी रोचकता को प्रमाणित करती है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि जिस प्रकार कहानी का महत्त्वपूर्ण अंग कथातत्त्व है उसी प्रकार संस्मरण का भी। कहानी का पात्र काल्पनिक हो सकता है। कहानी के लिए जरूरी नहीं है कि लेखक का उसके पात्रों से सीधा आत्मीय सम्बन्ध हो या सीधा अपने जीवन से जुड़ें व्यक्ति को उठाकर खड़ा कर दिया जाए। संस्मरण में पात्रों की काल्पनिकता को लेकर कोई छूट नहीं है। संस्मरण हमेशा लेखक से जुड़े आत्मीय व्यक्ति पर लिखा जाता है। उसमें काल्पनिक पात्र की कोई जगह नहीं होती है। दूसरा अन्तर कहानी को काल्पनिक पात्रों की तरह ही कथावस्तु भी काल्पनिक हो सकती है जबकि संस्मरण की कथावस्तु वास्तविकता और सत्यता की मांग करती है। कहा जा सकता है कि "मिथ्या अथवा काल्पनिक कथावस्तु पर आधारित कहानी का यथार्थ उद्देश्य की दृष्टि से सत्य के आग्रह से युक्त होता है और उसी के अनुपात पर कहानी की सफलता निर्भर करती है; किन्तु संस्मरण में केवल साहित्यिकता के प्रयोजन से अभिव्यक्ति की भंगिमा में कल्पना का रंग जितना ज्यादा गाढ़ा होता है या उससे मिलनेवाला आनन्द जिस सीमा तक काल्पनिक लोक में पहुंचाने में सफल होता है, संस्मरण में समाविष्ट भावुकता का उद्देश्य उतना ही अधिक सिद्ध होता है। संस्मरण में कल्पना का समावेश पाठक या श्रोता के लिए संवेदनशीलता तथा विषय-पक्ष में अभिव्यंजना-सौन्दर्य के निमित्त ही उपादेय होता है।"[21] संस्मरण में अतिरंजना के लिए कोई जगह नहीं होती है। यह किसी भी साधारण व्यक्ति पर लिखा जा सकता है, जबकि कहानी इससे अछूती नहीं है वह किसी साधारण बात को कभी-कभी ज्यादा कलात्मक रूप देने में अतिरंजना का रूप ग्रहण कर लेती है। "संस्मरण में भोक्ता मन पर विषय की छाप पड़ना अनिवार्य है, जिसे व्यवस्थित और सहज रूप में व्यक्त कर देने से

संस्मरण तैयार हो जाता है”[22] संस्मरण सिर्फ यथार्थ की मांग करता है। उसकी बुनावट यथार्थ की धरातल पर होती है लेकिन कहानी में ऐसा संभव नहीं है। कहानी का विषय व्यक्ति या समष्टि का यथार्थ हो सकता है लेकिन उसका परिवेश, चरित्र आदि कल्पनाश्रित होते हैं। कहा जा सकता है- “संस्मरण में लेखक अपने ‘देखे-भाले, परखे-झेले सत्य’ को हू-ब-हू प्रस्तुत करना चाहता है, जिसका वर्णन, हो सकता है कुछ पंक्तियों में ही पूरा हो जाए, लेकिन कहानी में तो उसके स्थूल रूप और वर्णन के अतिरिक्त सारी परिस्थिति की परिकल्पना, चरित्र का तदनुकूल कल्पनाश्रित गठन कि वह सजीव हो जाए और वास्तविक लगे, मनोनुकूल परिवेश की सृष्टि आदि इतनी सारी बातों का समावेश अपेक्षित है, जिसके बिना कहानी का सत्य उजागर नहीं होता।”[23]

उपन्यास और संस्मरण

कहानी का विकसित रूप उपन्यास है। कहानी के कथातत्त्व और प्रकृति उपन्यास का में मिलना स्वाभविक है। उपन्यास का फलक कहानी से विस्तृत होता है। उपन्यास की कुछ समानता-असमानता संस्मरण में देखने को मिलती है। समानता के सन्दर्भ में देखें तो उपन्यास की तरह संस्मरण भी कथात्मक हो सकता है लेकिन उपन्यास की कथात्मकता काल्पनिकता की धरातल पर बुनी जाती है जबकि संस्मरण यथार्थ की। बहुधा उपन्यास काल्पनिकता के ढ़ाचे पर लिखें जाते हैं। उपन्यास में काल्पनिकता किसी न किसी रूप में विद्यमान होती है जबकि संस्मरण काल्पनिक साहित्य नहीं है। इसकी कथात्मकता कल्पना से परे यथार्थ के ढांचे का अनुपालन करती है। उपन्यास में एक साथ कई व्यक्ति या समाज की घटनाएँ चल रही होती हैं जबकि संस्मरण एक व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित होता है, उसके आसपास के लोग प्रसंग बस आ जाते हैं। संस्मरण में आख्यान नहीं होता है उसमें तथ्यों को प्रमुखता होती है जबकि उपन्यास आख्यान होता है। हम कह सकते हैं- “संस्मरण लेखकों द्वारा कथात्मक ढांचे का उपयोग, पठनीयता, साहित्यिकता और लोकप्रियता हासिल करने के उद्देश्य से किया जाता है। कथात्मक ढांचा उसे आकर्षक बना देता है। इसलिए संस्मरण में वातावरण चित्रण, चरित्रांकन, नाटकीयता, संवाद का उपयोग तो अनिवार्य रूप से होता ही है, कुछ संस्मरणों में चरमोत्कर्ष का भी उपयोग मिलता है। फिर भी कथा आलोचना के औजारों से संस्मरणों की समीक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि ये औजार कहानी/उपन्यास के लिए विकसित किए गए हैं। कहानी और उपन्यास आख्यान के परिशोधित, कल्पनामिश्रित और कलात्मक रूप हैं। संस्मरण तथ्य हैं, आख्यान नहीं।”[24]

उपन्यास संस्मरणात्मक हो सकता है। काशीनाथ सिंह का ‘काशी का अस्सी’ संस्मरणात्मक उपन्यास है, जो बनारस(काशी) के विशेष सन्दर्भ में लिखा गया है। अज्ञेय की

'शेखर : एक जीवनी' और हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में संस्मरण-मूलकता के रूप स्पष्ट होते हैं। कहा जा सकता है- "उपन्यास पूरा का पूरा संस्मरणात्मक हो सकता है। समकालीन व्यक्ति, समसामयिक संदर्भ अथवा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यासों में विशेषतया वातावरण के सृजन में संस्मरणान्कुर के लिए पर्याप्त संभावनाएं सुरक्षित होती हैं"[25]

निबंध और संस्मरण

अन्य कथेतर विधाओं की तरह निबन्ध का भी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी साहित्य में निबंध संस्मरण से बहुत पहले ही पुष्पित और पल्लवित हो चुका था, जाहिर सी बात है कि उसका विषयगत वैविध्य और विस्तार संस्मरण से ज्यादा होगा। संस्मरण और निबन्ध के संदर्भ में कहा जा सकता है कि निबंध में 'विचारों की निर्बन्धता' होती है। यह अबाध रूप से वैविध्यपूर्ण गद्य रचना है जिसमें साहित्य के लिए तमाम सम्भावनाएँ हैं। निबन्ध में व्यापकता, विविधता और शैलीगत उन्मुक्तता है जिससे निबंध की क्षमता अन्य विधाओं से सर्वोपरि है। संस्मरण में निबन्ध के तरह अबाध नहीं होता है इसमें निबंध की तरह विषय की व्यापकता नहीं है इसमें वही आता है जो लेखक के इर्द-गिर्द या अनुभवजन्य होता है। दोनों विधाओं में स्वयं को अभिव्यक्त किया जा सकता हो इस स्तर पर दोनों में समानता दिखाई देती है। निबन्ध में विषय के अनुरूप लेखक स्वयं के आत्मानुभव को दर्ज करता है। संस्मरण में आत्मीयतापूर्ण अभिव्यक्ति को प्रधान माना जाता है। इसमें व्यक्ति की अनुभूति को आधार बनाकर ही लेखक स्वयं को अंकित करता है। निबंध हर सीमा से परे होता है। निबन्ध में किसी भी विषय पर स्वच्छन्द रूप से विचार व्यक्त किया जा सकता है, इसमें सीमित दायरे की कोई गुंजाइश नहीं होती है। विचारों की उन्मुक्तता संस्मरण को निबन्ध से अलग करती है। संस्मरण का एक दायरा होता है। अपने दायरे में रहकर संस्मरण का स्वरूप निबन्ध से अलग बनता है। "संस्मरण तत्त्व जितना ही व्याप्तिपूर्ण है, विधा के रूप में इसकी विषय-सीमा उतनी ही संकुचित है-संस्मरण में वास्तविक प्रसंग-भर उसका वर्ण्य हो सकते हैं। किन्तु निबन्ध में इस प्रकार का प्रतिबन्ध है ही नहीं।"[26]

वैयक्तिकता संस्मरण की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। संस्मरणकार व्यक्ति विशेष को आधार बनाकर लिखता है। अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना को शब्दांकित करता है जो उसकी स्मृति में बसी हो। उस स्मृति में किसी व्यक्ति विशेष का अमिट चरित्र होता है जो संस्मरणकार को हंट करता रहता है। रचनाकार उसे संस्मरण का रूप देता है। व्यक्ति विशेष के चरित्र की विशिष्टताओं तथा गुण-अवगुण का सम्यक मूल्याङ्कन करता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन के कुछ हिस्से को जो उसके साथ बिताया गया हो, उसे ईमानदारी से

उद्धृत करता है। संस्मरणकार व्यक्ति विशेष का चरित्र उद्घाटित तो करता है लेकिन उसके माध्यम से स्वयं भी उद्धृत होता है। केन्द्रीयता व्यक्ति के व्यक्तित्व की होती है। स्मृत व्यक्ति का स्वभाव, रहन-सहन, प्रकृति आदि की शिनाख्त करते हुए, उसे उसी रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

संस्मरण साहित्य का वैशिष्ट्य

कथात्मकता संस्मरण का वैशिष्ट्य है। इस विधा में कथात्मकता हो होती है लेकिन कथा के तत्त्व नहीं होते हैं, इसमें सिर्फ कथात्मक शैली का सहारा लिया जाता है। कथेतर विधा और कथात्मक विधा में तात्त्विक भिन्नता होती है। संस्मरण गल्प का सहारा न लेकर जीवन का कोरा यथार्थ होता है जो अपने मूल रूप में चित्रित होता है। कथात्मक विधाओं (कहानी, उपन्यास, नाटक आदि) की तरह संस्मरण कल्पनाश्रित नहीं होता है। यह जीवन का भोगा या जिया हुआ यथार्थ होता है जिसे बदला नहीं जा सकता है। इसके परिवेश, वातावरण, पात्र आदि कथा की तरह काल्पनिक नहीं होते हैं बल्कि जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होते हैं। इन्हें उसी अनुभव के आधार पर प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है। संस्मरण के कथ्य को कथात्मक शैली में लिखा जाता है।

संस्मरण वर्णात्मक लेखन प्रक्रिया है। इसमें किसी व्यक्ति के जीवन को आरम्भ से अंत तक लिखा जा सकता है। उसके जीवन के ज्यादा से ज्यादा हिस्से को समेटा जा सकता है। एक संस्मरणकार के लिए स्मृत व्यक्ति के जीवन से जुड़ी अनेक घटनाएँ हो सकती हैं, उस व्यक्ति से जुड़े लोग और प्रसंग विविध हो सकते हैं। संस्मरणकार उन तमाम घटनाओं और विविध प्रसंगों में कुछ विशेष प्रसंगों को अपनी विषयवस्तु में शामिल करता है। संस्मरण अन्य कथात्मक विधाओं की तरह किसी 'थीम' को आधार बनाकर नहीं लिखा जाता है। रचनाकार उस 'थीम' के इर्द-गिर्द ही नहीं घूमता है। संस्मरण में संस्मरणकार के अनुभव के फलक पर आधारित होता है। वह उस अनुभव को कितना विस्तार देना चाहता है। स्मृत व्यक्ति के जीवन के विवरण को कितना शामिल करना चाहता है, यह संस्मरणकार पर निर्भर करता है।

आत्मीयता संस्मरण का मूल तत्त्व है। संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के बीच आत्मीय सम्बन्ध संस्मरण को सजीव बनाता है। आत्मीयता व्यक्ति चरित्र को समझने में सहायक होती है जिससे व्यक्ति का चरित्र स्पष्ट उभरकर आता है। इसमें दोनों के आपसी सम्बन्धों को जानने में आसानी होती है। संस्मरणकार आत्मीय सम्बन्ध में रहते हुए स्मृत व्यक्ति के जीवन के तमाम अनभिज्ञ पहलुओं से पाठक को रू-ब-रू कराता है।

संस्मरण एक लचकदार विधा है। इसकी परिधि में घुसपैठ लगाना आसन है। यह अन्य विधाओं के कठोर नियम का अनुपालन नहीं करती है। संस्मरण में अन्य कथेतर विधाओं की आवा-जाही लगी रहती है। यही कारण है कि संस्मरण को कभी रेखाचित्र, आत्मकथा आदि मानने का भ्रम अक्सर बना रहता है। महादेवी वर्मा की रचनाओं 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं' में आज भी संस्मरण और रेखाचित्र के बीच का भ्रम कायम है। काशीनाथ

सिंह का संस्मरणात्मक उपन्यास 'काशी का अस्सी' है जिसमें उन्होंने बनारस में रहते हुए अपने अनुभवों को आधार बनाया है।

तटस्थता संस्मरण के लिए महत्त्वपूर्ण है। संस्मरणकार तटस्थ रहकर इस विधा के साथ ज्यादा न्याय कर सकेगा। बिना तटस्थ हुए संस्मरण को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। आत्मीयता में अक्सर भावनाएं हावी होती हैं। उन भावनाओं की प्रबलता से बचते हुए स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को ज्यादा सही मूल्याङ्कन किया जा सकता है। आज के समय में संस्मरणों में तटस्थता का ज्यादा परिष्कृत रूप दिखाई देता है। काशीनाथ सिंह का संस्मरण 'घर का जोगी जोगड़ा' एक भाई(काशीनाथ सिंह) द्वारा दूसरे भाई (नामवर सिंह) पर लिखा गया है। मुझे नहीं लगता कि तटस्थता को लेकर इससे बेहतरीन उदाहरण कोई होगा।

हिंदी संस्मरण की परम्परा और विकास

हिंदी साहित्य की तमाम विधाओं की तरह संस्मरण के विकास, परम्परा और अस्तित्व को उसके प्राचीनता में ढूंढने की कोशिश की गयी। प्राचीन साहित्य रूपों में इसके प्रमाण को खँगालने की कोशिश की गयी। आलोचकों और शोधकर्त्ताओं ने अपनी-अपनी दलील देते हुए संस्मरण साहित्य के उद्भव और विकास को उसके प्राचीनता में ले जाकर खड़ा कर दिया। कुछ लोगों का मानना है कि संस्मरण साहित्य का स्वरूप बौद्ध भिक्षुओं की थेर-थेरी गाथाओं में देखने को मिलता है तो किसी ने नाथपंथियों और जैन कवियों में इसकी प्रवृत्ति देखी। इसके अलावा चंदबरदाई द्वारा 'पृथ्वीराज रासों' में अपने संस्मरण लिखने की बात कही गयी है, वहीं अमीर खुसरों द्वारा औलिया पीर की मृत्यु पर प्रसिद्ध उक्ति-

'गोरी सोवे सेज पै, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रेन भई चहुँ देस।।

इन पक्तियों के माध्यम से शोकाकुल हृयद की अभिव्यक्ति के रूप में संस्मरण के अक्स को देखने की कवायद की गयी है। गोकुलनाथ के 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' के अनेक स्थल रूपों को संस्मरण से जोड़कर देखने की कोशिश करते हैं। संस्मरण के उद्भव और विकास की परम्परा को लेकर आज भी मतभेद बना हुआ है। उसके इतिहास को लेकर तमाम तर्कों, स्रोतों और साक्ष्यों को प्रस्तुत किया जाता है। संस्मरण को मानव 'स्मृति' से जोड़कर देखा जाता है। इस आधार पर संस्मरण के विकास की बात करें तो, 'स्मृतियाँ' सृष्टि पर मानव उद्भव से है, संस्मरण 'स्मृतियों' का रूप है। लिखने-पढ़ने का संसाधन न होने के कारण संस्मरण स्मृतियों के रूप में एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक बने रहते थे, तो क्या संस्मरण की परम्परा को मानव के विकास के साथ ही जोड़ा जा सकता है? दूसरी बात गद्य का विकास भारतेंदु युग से माना जाता है। संस्मरण एक गद्य विधा है तो संस्मरण को प्राचीन साहित्य में ढूढ़ना कितना सही और निर्णायक है? अगर इस तर्क को संस्मरण के उद्भव का आधार बनाया जाएँ तो तमाम गद्य विधाओं पर सवालिया निशान लगाया जा सकता है क्योंकि संस्मरण अन्य गद्य विधाओं से भी बहुत बाद की विधा है।

हिंदी साहित्य में गद्य विधाओं का उद्भव और विकास भारतेंदु युग से माना जाता है। द्विवेदी युग को उसके पुष्पित और पल्लवित होने का समय स्वीकार किया जाता है। गद्य के विकास में भारतेंदु और उनके समकालीन प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस दौर में तमाम गद्य विधाएं जन्म ले रहीं थीं और विकसित हो रहीं थीं। इस दौर में लेखकों के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं का विशेष योगदान था। गद्य-साहित्य का चौतरफा विकास हो रहा था। भारतेंदु युग में तमाम गद्य-विधाओं के साथ ही संस्मरण का स्वरूप बनता हुआ परिलक्षित होता है। भारतेंदु ने 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' शीर्षक से कविवचनसुधा में एक संस्मरणात्मक लेख लिखा था।

शीर्षक के अनुसार 'आपबीती' में उन्होंने स्वयं के जीवन को उद्घाटित किया है। इसमें उन्होंने "अपनी अवस्था-विशेष का विशिष्ट समय-संदर्भ में विवरण या कि शारीरिक और मानसिक स्थिति को प्रभावित तथा व्यक्त करनेवाले पूरे परिवेश का समय-सापेक्ष चित्रण किया है।"[27] 'जगबीती' में "लेखक के लौकिक सम्बन्धों, सम्पर्क में आये पात्रों तथा जागतिक दृष्टिकोण का प्रतिफलन है, जिसमें संस्मरण का स्वरूप वस्तुगत या व्यक्तिचरितात्मक हो गया है।"[28] द्विवेदी युग में संस्मरण का विकास पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। द्विवेदी युग में पहले संस्मरण के रूप में 1907ई० में बालमुकुन्द गुप्त द्वारा 'प्रतापनारायण मिश्र' पर संस्मरण लिखा गया। इसके बाद 'हरिऔध जी का एक पुस्तकाकार संस्मरण प्रकाशित हुआ जिसमें पन्द्रह संस्मरण संकलित हैं। 1928ई० में रामदास गौड़ ने रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' और श्रीधर पाठक पर संस्मरण लिखे। श्रीधर पाठक पर लिखे गये संस्मरण में उनके जीवन से जुड़े कुछ प्रसंग के साथ-साथ के उनके प्रकृति प्रेमी होने की बात कही गयी है। रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' और श्रीधर पाठक के साहित्यिक अवदानों की चर्चा की गयी थी। प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्रिका में प्रकाशित 'प्रतापचरित्र' जीवनीपरक संस्मरण का रूप लिए हुए है। उस समय की पत्र-पत्रिकाएं मसलन 'सरस्वती', 'चाँद', 'हंस', 'इंदु', 'विशाल भारत' आदि का संस्मरण लेखन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। 'हंस' का विशेषांक 'प्रेमचन्द-स्मृति अंक' आदि संस्मरण के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। 'हंस' के अप्रैल 1933ई० में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के 70वें वर्ष में प्रवेश करने के उपलक्ष्य में 'अभिनन्दन अंक' से एक विशेषांक प्रकाशित किया गया था। इस विशेषांक में लेखकों ने द्विवेदी जी के साथ अपने विभिन्न अनुभवों को साझा किया था। इसी वर्ष सन् 1933ई० में ही काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्मान में एक आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रकाशित 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' में उनके व्यक्तित्व, कृतित्व और साहित्यिक अवदानों को लेकर उनसे जुड़े लोगों ने अपने-अपने अनुभवों को रेखांकित किया है। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित और उनकी साहित्यिक साधना के कायल उनसे जुड़े लोग ही नहीं बल्कि उनकी कृतियों के माध्यम से उनको समझने वाले भी हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा के उत्थान में महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान सराहनीय है।

भारतेंदु युग में स्फुट संस्मरण लेखन का जो प्रारंभ हुआ वही द्विवेदी युग ने उसे और समृद्ध किया। संस्मरण लेखन ने बीसवीं शताब्दी के तीसरे तथा चौथे दशक तक पर्याप्त गुणात्मक विकास किया। भारतेंदु युग और द्विवेदी युग में संस्मरण का जो स्वरुप बन रहा था उसे एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप पहचान दिलाने का प्रयास पद्म सिंह शर्मा का संस्मरण 'पद्म पराग' ने किया। पद्मसिंह शर्मा का नाम हिंदी के प्रारंभिक संस्मरणकारों में आदर के साथ लिया जाता है। उनकी कृति 'पद्म पराग' (1929ई०) को विद्वान हिंदी संस्मरण की प्रथम मुकम्मल कृति मानते हैं, इसी रचना से संस्मरण को स्वतंत्र साहित्यिक

विधा का प्रारम्भ स्वीकारते हैं। रामचंद्र तिवारी 'पद्म पराग' से ही एक 'सफल संस्मरण परम्परा का प्रारम्भ' मानते हैं। 'पद्म पराग' में 22 व्यक्तियों को स्मृति किया गया है। इसमें मुख्य रूप से भगवान् श्रीकृष्ण, दयानंद स्वामी, पंडित गणपति शर्मा, हृषीकेश भट्टाचार्य शास्त्री, स्वामी श्रीश्रद्धानन्द, सत्यनारायण कविरत्न, भीमसेन शर्मा, नवनीतलाल चतुर्वेदी, खलीफा मामू रशीद, दिव्य प्रेमी मंसूर, अमीर खुसरो, मौलाना आज़ाद आदि पर उन्होंने संस्मरण लिखा है। ये संस्मरण अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें कुछ संस्मरण रेखाचित्र के निकट दिखाई देते हैं तो कहीं-कहीं जीवनीपरकता और आत्मकथात्मकता की तरफ झुके हुए प्रतीत होते हैं। अत: इस आधार पर देखा जाय तो इस संस्मरण में कथात्मक शैली की विविधता देखने को मिलती है। इसमें उन्होंने 'संयुक्त प्रांतीय षष्ट हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, मुरादाबाद' और 'अखिल भारतीय अष्टादश हिंदी साहित्य सम्मलेन, मुजफ्फरपुर' के दो संभाषण को उद्धृत किया है। 'मुझे मेरे मित्रों से बचाओ' को देखकर उनके परिहासपूर्ण शैली का बोध होता है।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में संस्मरण ने जो गति पकड़ी उसके बाद वह अपने को और अधिक प्रतिष्ठित और परिष्कृत करता चला गया। इस दौरान तमाम बेहरतीन संमरण लिखें गये। जिसमें बनारसीदास चतुर्वेदी कृत 'हमारे आराध्य' और 'संस्मरण(1952ई०)', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह द्वारा 'सावनी समां' और 'सूरदास', महादेवी वर्मा कृत 'अतीत के चलचित्र(1941ई०), पथ के साथी(1956ई०) और 'स्मृति की रेखाएं(1947ई०)', शांतिप्रिय द्विवेदी कृत 'पथचिह्न', रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'माटी की मूरतें(1946ई०)', शिवपूजन सहाय कृत 'वे दिन वे लोग(1946ई०)', सेठ गोविन्ददास कृत 'स्मृति कण(1959ई०)', प्रकाशचन्द्र गुप्त कृत 'मिट्टी के पुतले' और 'पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच', विष्णु प्रभाकर लिखित 'जाने अनजाने(1962ई०)', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखित 'भूले हुए चेहरे', माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'समय के पांव(1962ई०)', जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'दस तस्वीरें(1963ई.)' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन रचनाकारों ने हिंदी संस्मरण लेखन को एक विधा के रूप में समृद्ध करने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा 'हमारे आराध्य' और 'संस्मरण' शीर्षक से संस्मरण की पुस्तक लिखी गयी। दोनों पुस्तकें संस्मरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। 'संस्मरण' में 21 लोगों पर संस्मरण लिखा गया है जिनमें श्रीधर पाठक, द्विजेन्द्र ठाकुर, रामानंद चट्टोपाध्याय, दीनबन्धु, प्रेमचंद, गणेशशंकर विद्यार्थी, द्विवेदी जी, रूद्रदत्त शर्मा, मीर साहब, किशोरीलाल गोस्वामी, कृष्णबलदेव वर्मा, तोतारामौ सनाढ्य, भवानीदयाल संन्यासी, पीर मुहम्मद मूनिस, नारायण दास खरे, आजाद की माता जी पर संस्मरण लिखें। बनारसीदास चतुर्वेदी इन संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक अवदानों की चर्चा करते हैं।

साहित्यकारों पर बात करते हुए उनके साहित्यकार व्यक्तित्व को उभारते हुए वे उनके साहित्यिक योगदान को रेखांकित करते हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी ने इन संस्मरणों में व्यक्तित्व के सकारात्मक पहलुओं को दिखाने की कोशिश की है। इनका मानना है कि प्रभावी व्यक्तित्व समाज के लिए प्रेरणादायक होते हैं। इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए इस संस्मरण को लिखा गया है। 'स्वर्गीय प्रेमचंद', 'स्वर्गीय वर्मा जी', 'स्वर्गीय पीर मुहम्मद मुनिस', 'स्वर्गीय साधक जी' पर उन्होंने श्रद्धांजलिपरक संस्मरण लिखा है। महावीरप्रसाद द्विवेदी को याद करते हुए जीवनीपरक संस्मरण लिखा है। इसी संस्मरण की पुस्तक में बनारसीदास जी ने 'मेरी तीर्थ यात्रा' शीर्षक से अपने यात्रा के दौरान साहित्यकारों से हुई मुलाकातों और उनके द्वारा सुनाये गये संस्मरण को शामिल किया है। उनके इस संस्मरण से यात्रा वृत्त का बोध होता है। इनके संस्मरणों के तीन आधार दिखाई देते हैं-1) साहित्यकारों पर लिखे गये संस्मरण (2) साधारण व्यक्तित्व पर लिखे गये संस्मरण (3) श्रद्धांजलिपरक संस्मरण

महादेवी वर्मा कृत 'अतीत के चलचित्र(1941ई०), स्मृति की रेखाएं(1947ई०), पथ के साथी(1956ई०)' महत्त्वपूर्ण संस्मरण हैं। 'स्मृति की रेखाएं' में उन्होंने उन साधारण व्यक्तियों पर संस्मरण लिखा है जो महान तो नहीं लेकिन उनके लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें उन्होंने भक्तिन, चीनी फेरीवाला, जंग बहादुर, मुन्नू, ठकुरी बाबा, बिबिया, गुगिया के जीवन और संघर्ष को रेखांकित किया है। महादेवी वर्मा ने इन संस्मरणों में व्यक्तित्व के साथ-साथ समाज की स्थिति को भी अभिव्यक्त किया है। इन पात्रों से महादेवी वर्मा का आत्मीय सम्बन्ध काफी गहरा था। उनके संस्मरणों की शैली इतनी धाराप्रवाह और प्रभावपूर्ण है कि रोचकता बनी रहती है। महादेवी वर्मा के रचनात्मक प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है- "साधारण व्यक्तियों और निर्जीव पदार्थों को रेखांकित करना अपेक्षाकृत कठिन है। यह कार्य अंत:करण की आर्द्रता और गहन शब्द-साधना के साथ ही वस्तु या व्यक्ति के उभरे हुए पहलू को सहसा दृष्टि में समेट लेने की क्षमता की भी अपेक्षा रखता है।"[29] 'अतीत के चलचित्र' में 11 संस्मरण हैं। इन संस्मरणों में रामा, भाभी, बिंदा, सबिया, बिट्टो, बालिका माँ, घीसा, अभागी स्त्री, आलोपी, बदलू, लछमा के आत्मीयपूर्ण सम्बन्ध को रेखांकित किया गया है। इन संस्मरणों में पात्रों की स्थिति के अभिव्यक्ति के साथ-साथ महादेवी वर्मा के जीवन का पर्याप्त हिस्सा दिखाई देता है। रामा को याद करते हुए उसके ममत्व और अपने बचपन की शरारतें तथा गलतियों से गिरते-उठते मनोभावों को बहुत सहजता से चित्रित करती है। महादेवी वर्मा अपने बचपन की स्मृति में गोते लगाते हुए रामा से जुड़े तमाम किस्से बताती हैं। रामा नौकर के साथ बचपन के आत्मीय लगाव की स्मृतियाँ और उसके द्वारा बचपन में 'राजा भईया' उपनाम देने की प्रसन्नता को याद करते हुए लिखती हैं- "हठ स्वप्न-सा लगता है, बचपन की कथा-कहानियां कल्पना-जैसी जान पड़ती हैं और खिलौनों के संसार का सौन्दर्य भ्रान्ति हो गया है, पर रामा आज भी सत्य है, सुन्दर है और

स्मरणीय हैं। मेरे अतीत में खड़े रामा की विशाल छाया वर्तमान के साथ बढ़ती ही जाती है- निर्वाक, निस्तंद्र, पर स्नेहतरल।"[30] महादेवी वर्मा का एक और संस्मरण 'पथ के साथी' है जिनमें सात संस्मरण संकलित हैं। इनमें हिंदी के गौरवशाली साहित्यकारों रवींद्रनाथ ठाकुर के अलावा मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, सियारामशरण गुप्त के संस्मरण शामिल हैं। ये संस्मरण साहित्यिक-सांस्कृतिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें महादेवी वर्मा लेखकों के व्यक्तित्व के साथ-साथ उनके साहित्यिक योगदान की शिनाख्त करना नहीं भूलती हैं। मैथिलीशरण गुप्त के कवि व्यक्तित्व और सामाजिक भावधारा की पक्षधरता के संदर्भ में वे कहती हैं- "अहं को समष्टि में मिला देना कवि की मुक्ति है, तो गुप्त जी मुक्त कवि हैं। वे विश्वास करते हैं-'अर्पित हो मेरा मनुज काय। बहुजन हिताय बहुजन हिताय।"[31]

शान्तिप्रिय द्विवेदी ने अपने 'पथचिह्न' में पारिवारिक स्मृति को रेखांकित किया है। वे 'पथचिह्न' के रूप में अपनी बहन को याद किये हैं। बहन का व्यक्तित्व औए जीवन संघर्ष शांतिप्रिय द्विवेदी पर अपनी छाप छोड़ता है। वे उन्हें अपना आदर्श ही नहीं मानते बल्कि अपने व्यक्तित्व के विकास का पूरा श्रेय देते हैं। बहन के प्रति स्नेह उनके रोम-रोम में भरा है। अपनी बहन के देहांत के बाद वे प्रत्येक शुक्रवार को काशी जाते थे। उनसे सम्बद्ध वे सभी स्थानों की पंचकोशी परिक्रमा करते थे। इस संस्मरण के माध्यम से शांतिप्रिय द्विवेदी के जीवन के तमाम संघर्ष परिलक्षित होते हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त कृत 'पुरानी स्मृति और नये स्केच' में उनके संस्मरण संगृहित है। इसमें 'ताई', 'गाँव की साँझ', 'अल्मोड़ा का बाज़ार', 'रानीखेत की रात', 'नया नगर' आदि संस्मरण संकलित हैं। इसमें उन्होंने अपने अतीत की तमाम स्मृतियों को शब्दांकित किया है जो उनके मानस पटल पर बार-बार कौधती थी।

उपेन्द्रनाथ अश्क की रचना 'मंटो: मेरा दुश्मन' 1956ई० में प्रकाशित हुई। यह संस्मरण अपने समय से बिल्कुल अलग ढंग का संस्मरण है। हिंदी संस्मरणों में चली आ रही श्रद्धांजलि की परम्परा को तोड़ते हुए यह संस्मरण नजर आता है। संस्मरण में अक्सर देखा गया है कि मृत्यु के बाद व्यक्ति महान और पूजनीय बन जाता है। अश्क ने मृत्यु के बाद भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को महानता की चादर में लपेटा नहीं बल्कि उसके जीवन के सही पक्ष को उद्घाटित किया है। यह संस्मरण की परम्परा का एक ऐसा संस्मरण है जो व्यक्ति का चित्रण करते हुए उसकी मृत्यु के बाद के अपने बुरे अनुभवों को साझा करता है। अश्क ने व्यक्ति की बुराईयों को बेवाकी से रखने की कोशिश की है। 'उन बुद्धिमानों के नाम जिन्होंने इस संस्मरण को मंटो के खिलाफ समझा' जैसे वाक्यों से वे इस संस्मरण की शुरुआत करते है। उक्त वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि यह संस्मरण किसी द्वेष वश नहीं लिखा गया है। वे आगे

कहते हैं- “मंटो मेरा दुश्मन था, यह बात मुझे स्वयं अपनी कलम से कभी न लिखनी पड़ती, यदि मित्रों ने इसका प्रचार न कर दिया होता और कृष्णचन्द्र ने मंटो के बारे में अपना लेख लिखते हुए, मंटो की जिन्दगी ही में लोगों की इस धारणा पर अपनी मुहर न लगा दी होती”[32] ‘मंटो : मेरा दुश्मन’ के संदर्भ में कृष्णचन्द्र लिखते हैं- “मंटो:मेरा दुश्मन- में अश्क ने सच्चाई और साफ़ बयानी को सामने रखा है। इस लेख में उन्होंने मंटो के व्यक्तित्व के दोनों पहलू दिखाए हैं और उनके चरित्र के- जीवन-दर्शन और कृतित्व के- स्वीकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं पर प्रकाश डाला है। कहीं-कहीं वे अपनी साफ़-बयानी में तीखा लहजा इख्तयार कर गये हैं। लेकिन अश्क का मंटो पर लिखना एक तीखे मिजाज वाले साहित्यकार का एक तीखे मिजाज वाले साहित्यकार पर लिखना है और इसलिए बेहद दिलचस्प है, जीवन कथात्मक है, व्यंग्य भरे चुटकलों से भरा है”[33]

शिवपूजन सहाय कृत ‘वे दिन वे लोग’ में व्रजनंदन सहाय ’व्रजवल्लभ’, पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, निराला, जयशंकर प्रसाद, पुरुषोत्तमदास टंडन, नलिन विलोचन शर्मा आदि के संस्मरण संकलित हैं। लेखक इन साहित्यकारों से प्रभावित है। अपने अतीत में झांकते हुए वह साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व का रेखांकन करता है। जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी को वे हास्यरसावातर के रूप में देखते हैं वहीं दूसरी ओर निराला की लेखनी और भाषा पर अधिकार को लेकर काफी प्रशंसा करते हैं। निराला पर वे ‘पूज्य निराला’, ‘आदर्श महापुरुष महाकवि’, ‘देवोपम पुरुष’, ‘दीनबन्धु’ शीर्षक से चार संस्मरण लिखते हैं जिससे निराला के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा और प्रभाव को परिलक्षित किया जा सकता है। रहीम की एक पंक्ति ‘जो रहीम दीनहिं लखै दीनबन्धु सम होय’ से निराला के स्थिति की तुलना करते हुए, उनके व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हैं। साहित्यकारों को याद करते हुए ‘मेरा जीवन’ और ‘एक निजी संस्मरण’ शीर्षक से उन्होंने आत्मकथात्मक संस्मरण भी लिखा है। इसके साथ ही ‘जयपुर-यात्रा के संस्मरण’ और ‘नागपुर यात्रा के संस्मरण’ भी इसी पुस्तक में शामिल हैं। ‘कलकत्ता प्रवास के संस्मरण’ के माध्यम से कलकत्ता प्रवास के दौरान साहित्यकार मंडलियों के साथ अपने अनुभव साझा करते हैं।

सेठ गोविन्ददास की रचना ‘स्मृति कण(1959ई०) में महात्मा गाँधी, डॉ.राजेन्द्र प्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाषचंद्र बोस, विनोबा, मुहम्मद जिन्ना, रवीन्द्र, प्रेमचन्द आदि प्रख्यात व्यक्तियों का रेखांकन किया गया है। इस संस्मरण में ज्यादातर राजनीतिक व्यक्तियों के व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश की गयी है। साहित्य सेवी के रूप में रवीन्द्र और प्रेमचन्द को याद किया गया है।

रामवृक्ष बेनीपुरी की संस्मरण पुस्तक ‘माटी की मूरतें’ है। इसमें उन्होंने हजारीबाग सेन्ट्रल जेल में रहते हुए अपने गाँव और ननिहाल के लोगों का चित्रण किया है। ग्रामीण

जीवन के पात्रों की जीवन्तता और उनकी आत्मीयता इनके जीवन में अलग स्थान रखती है। 'जंजीरे और दीवारें' रामवृक्ष बेनीपुरी का आत्मकथात्मक संस्मरण है। इसमें उन्होंने अपने जेल जीवन के अनुभव, भारतियों की स्थिति और ब्रिटिश उपनिवेश की यातना को रेखांकित किया है। प्रतीकात्मक रूप में भावों को अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं- "जंजीरें फौलाद की होती है, दीवारें पत्थर की ! जंजीरे खनकती है, बोलती है, स्वयं तुलकर लोगों को तोलती है- लोगों को, उनकी घात को। कितने भारी-भरकम इस तुला पर चढ़कर कितने हल्के-फुल्के साबित हुए! दीवारे गुमसुम। अभिशापों की तरह, काली। काली? हा-हा, रक्त पीकर भी काली। कठोर-अलघ्य। चीखते रहो, कहारते रहो। तुम्हारे लिए दिशाओं के द्वार बंद हो गए। गुलाम देश का बच्चा-बचपन से ही जंजीरों का अनुभव कर रहा था। जैसे, अंग-अंग कसे हो- कितना भी कसमस करो, आज़ादी से हिलडुल भी नहीं सकते!"[34]

माखनलाल चतुर्वेदी का 'समय के पांव' सन् 1962ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें बालगंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, जयशंकर प्रसाद, सुभद्राकुमारी चौहान, रवीन्द्र नाथ टैगोर, सुभाषचंद्र बोस, लक्ष्मण सिंह चौहान और काशी प्रसाद जायसवाल के संस्मरण हैं। इसमें लेखकों और महापुरूषों को स्मृत कर उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को देखने की कोशिश की गयी है। लेखक ने 'महात्मा गाँधी' को याद करते हुए उनके साथ के अनुभव को साझा किया है। उसने महात्मा गाँधी के साथ वर्धा से बम्बई की यात्रा स्मृति को बड़े आत्मीय रूप में प्रस्तुत किया है। सुभाषचंद्र बोस के व्यक्तित्व को वे महामानव के रूप में देखते हैं। यह उनके संस्मरण के शीर्षक से ही स्पष्ट होता है- 'सुभाष मानव : सुभाष महामानव' यह बहुत कुछ सुभाष के व्यक्तित्व का द्योतक है। प्रेमचंद को याद करते हुए 'प्रेमचन्द चले गये' शीर्षक से श्रद्धांजलिपरक संस्मरण लिखा गया है। लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व को वे बाढ़मयी गंगा की उपमा देते हैं जिसके तट पर खड़े होकर उसकी अथाह गहराई और विस्तार का पता लगाना मुश्किल है। सुभद्राकुमारी चौहान को याद करते हुए वे उनके साथ की अविस्मरणीय स्मृतियों को शब्दांकित करते हैं। माखनलाल चतुर्वेदी ने इस संस्मरण में स्मृति व्यक्तियों को व्यक्तित्व के धनी और महानता की प्रतिमूर्ति के रूप में देखने की कोशिश की गयी है।

बीसवीं शताब्दी के सातवें-आठवें दशक के दौरान और उसके थोड़े बाद के समय में अनेक महत्त्वपूर्ण संस्मरण लिखें गये हैं। इस दौर के संस्मरणों में साहित्यकारों ने अपने समकालीन रचनाकारों, श्रद्धेय व्यक्तियों और श्रद्धांजलिपरक जैसे तमाम संस्मरण लिखे हैं। इनमें अजित कुमार और ओंकारनाथ श्रीवास्तव कृत 'बच्चन निकट से(1968ई०)', काका साहेब कालेलकर कृत 'गाँधी संस्मरण और विचार(1968ई०)', रामधारी सिंह दिनकर कृत 'संस्मरण और श्रद्धांजलियां(1969ई०)', लक्ष्मी नारायण सुधांशु कृत 'व्यक्तित्व की झाकियाँ(1970ई०)', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कृत 'अंतिम अध्याय(1972ई०)', लक्ष्मी

शंकर व्यास कृत 'स्मृति की त्रिवेणिका(1974ई०)', अनीता राकेश कृत 'चंद सतरें और(1975ई०)', कमलेश्वर कृत 'मेरा हमदम मेरा दोस्त(1975ई०)', क्षेमचन्द्र सुमन कृत 'रेखाएं और संस्मरण(1975ई०)', रामनाथ सुमन कृत 'मैंने स्मृति के दीप जलाये(1976ई०)', परिपूर्णानन्द कृत 'बीती यादें(1976ई०)', कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत(भाग-1)(1977ई०)' विष्णुकांत शास्त्री कृत 'स्मरण को पाथेय बनने दो(1978ई०)', शंकर दयाल सिंह कृत 'कुछ ख्वाबों में कुछ ख्यालों में(1978ई०)', भगवतीचरण वर्मा कृत 'अतीत के गर्त से(1979ई०)', मैथिलीशरण गुप्त कृत 'श्रद्धांजलियां संस्मरण(1979ई०)', विष्णु प्रभाकर कृत 'यादों की तीर्थयात्रा(1981ई०)', राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने(1981ई०)', अमृतलाल नागर कृत 'जिनके साथ जिया(1981ई०)', प्रतिभा अग्रवाल कृत 'सृजन का सुख-दुःख(1981ई०)', भीमसेन त्यागी कृत 'आदमी से आदमी तक(1982ई०)', रामेश्वर शुक्ल अंचल कृत 'युगपुरुष(1983ई०)', पद्मा सचदेव कृत 'दीवानखाना(1984ई०)', सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' कृत 'स्मृति लेखा(1986ई०)' कमलकिशोर गोयनका कृत 'हजारीप्रसाद द्विवेदी:कुछ संस्मरण(1988ई०)', बिंदु अग्रवाल कृत 'भारतभूषण अग्रवाल : कुछ यादें कुछ बातें(1989ई०)' आदि उल्लेखनीय संस्मरण है।

अजीत कुमार और ओंकारनाथ श्रीवास्तव कृत 'बच्चन निकट से (1968ई०)' उल्लेखनीय संस्मरण है। यह संस्मरण बच्चन जी के जीवन की झाकियाँ प्रस्तुत करता है। इसमें अनेक लेखकों ने बच्चन जी से जुड़े संस्मरण लिखे हैं। इसमें उनके समकालीन साहित्यकारों के ही संस्मरण नहीं हैं बल्कि नये रचनाकारों ने भी उनके साथ अपने सम्बन्धों और उनके व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश की है। इसमें बच्चन जी के जीवन से जुड़े दो पीढ़ियों के अनुभव, संबंध और नजरियें को देखा जा सकता है। इस संस्मरण में एक उनके समकालीन और दूसरे उनके बाद के रचनाकारों की उभर रही नई पीढ़ी के लोग हैं। बच्चन जी के साथ लेखक ने अपनी मुलाकातों, बढ़ती निकटता और आत्मीय अनुभवों को साझा किया है। उनके व्यक्तित्व और साहित्यकार व्यक्तित्व से जुड़े सबके अनेक अनुभव हैं।

काका साहेब कालेलकर प्रसिद्ध गांधीवादी नेता और विचारक हैं। इनके द्वारा लिखित 'गाँधी संस्मरण और विचार'(1968ई०) में गांधीजी से जुड़े अपने निजी संस्मरणों और गाँधी के विचारों को संग्रहित किया गया है। इन्होंने गाँधी के साथ बिताएं अपने अनुभवों को साझा

किया हैं। इस संस्मरणों में उनके व्यक्ति चरित्र की तमाम परतों को खोलने की कोशिश की गयी हैं। लेखक ने समाज हित में गाँधी के विचारों को सारगर्भित रूप में समझाने की कोशिश की है।

रामधारी सिंह दिनकर कृत 'संस्मरण और श्रद्धांजलियां'(1969ई०) में साहित्यकारों, विद्वानों के साथ-साथ राजनेताओं के संस्मरण संकलित हैं। इसमें उन्होंने जहाँ 'राहुल सांकृत्यायन', 'सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'आचार्य रघुवीर', 'रामवृक्ष बेनीपुरी', 'मैथिलीशरण गुप्त', 'माखनलाल चतुर्वेदी', 'किशोरीदास वाजपेयी', 'महादेवी वर्मा', 'सुमित्रानंदन पन्त', 'बनारसीदास चतुर्वेदी', 'हरिवंशराय बच्चन', 'शिवपूजन सहाय', 'वंशीधर विद्यालंकार', 'लक्ष्मीनारायण सुधांशु' आदि साहित्यकारों पर लिखा वहीँ 'जवाहरलाल नेहरू', 'लोकमान्य तिलक', 'राममनोहर लोहिया', 'काका साहब कालेलकर', 'राधाकृष्णन', 'लालबहादुर शास्त्री', 'जाकिर हुसैन' आदि राजनेताओं और विचारकों को भी संस्मरण का विषय बनाया है। इनके संस्मरण से स्पष्ट होता है कि इनकी जितनी घनिष्ठता साहित्यकारों से थी उससे कम राजनेताओं से नहीं। इन्होंने दोनों के व्यक्तित्व को नजदीक से देखा-परखा है। निराला को याद करते हुए लेखक उनके जीवन के दो पहलुओं पर दृष्टि डालता है। पहले में निराला से सम्बन्धित संस्मरण लिखते हुए वे उनसे हुई मुलाकातों और अनुभवों का जिक्र करते हैं, वहीं दूसरी तरफ वे निराला के अंतिम समय में जीवन की विक्षिप्तता का मार्मिक चित्रण भी करते हैं। महादेवी वर्मा से संदर्भित संस्मरण में उनके निजी जीवन और व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं को उद्घाटित किया गया है। बनारसीदास चतुर्वेदी से कलकत्ता कवि-सम्मेलन की मुलाकात के साथ-साथ वे उनके साहित्यिक कर्म और संघर्ष का रेखांकन करते हैं। राजेंद्र प्रसाद पर दो संस्मरण लिखे गए हैं- पहले में उनके राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है तथा दूसरे में उनकी मृत्यु के बाद श्रद्धांजलि के रूप में उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं और मतों को स्पष्ट करने को कोशिश की गयी है। इन्होंने जहाँ साहित्यकारों के साहित्यिक व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उजागर किया है वहीं राजनायिकों पर लिखे गये संस्मरणों में उनके व्यक्तित्व के साथ-साथ राजनीतिक वैचारिकी की तरफ भी ध्यान केन्द्रित किया है। राजनीतिक रूप से सक्रिय रहने के कारण रामधारी सिंह दिनकर का तमाम राजनेताओं के साथ उठना-बैठना स्वाभाविक है अत: उनके साथ सम्बन्धों की अंतरंगता से स्मृत व्यक्ति के राजनीतिक चरित्र को समझने में सहूलियत मिलती है।

लक्ष्मीनारायण सुधांशु कृत 'व्यक्तित्व की झाँकियाँ'(1970ई०) में 'बालमुकुन्द गुप्त', 'शिवपूजन सहाय' और 'रामवृक्ष बेनीपुरी' आदि साहित्यकारों के साथ-साथ 'जवाहरलाल नेहरू', 'सरदार पटेल', 'जाकिर हुसैन' और 'राजेन्द्र बाबू' जैसे राजनेताओं के व्यक्तित्व को चित्रित किया गया है। अनीता राकेश द्वारा लिखित 'चन्द सतरें और(1975ई०)' संस्मरणात्मक आत्मकथ्य है। अनीता राकेश मोहन राकेश की पत्नी हैं। राकेश से पहले, राकेश

के साथ और राकेश के बाद के जीवन को उन्होंने इस रचना में बहुत संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। यह संस्मरण राकेश जी के व्यक्तित्व और साहित्यिक जीवन को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

कमलेश्वर द्वारा संपादित 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' (1975ई०) में कुल 12 रचनाकारों को याद किया गया है। 'मोहन राकेश', 'राजेंद्र यादव', 'कमलेश्वर', 'धर्मवीर भारती', 'मन्नू भंडारी', 'लक्ष्मीनारायण लाल', 'राजेंद्र सिंह बेदी', 'कृश्न चंदर', 'इस्मत चुगताई' और 'अमृता प्रीतम' के जीवन पर आधारित संस्मरणों को उनके ही लेखक-दोस्तों कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, लक्ष्मीनारायण लाल, इलाचंद्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, ख्वाजा अहमद अब्बास, कृश्न चंदर, बलवंत गार्गी ने उनके व्यक्तित्व को बहुत तटस्थता से रेखांकित किया है। यह पुस्तक अपने समय की उत्कृष्ट स्तंभ-श्रृंखला के अंतर्गत पैठ बना चुकी है जो रचनाकारों के जीवन के मार्मिक प्रसंगों का रेखांकन प्रस्तुत करती है।

रामनाथ सुमन कृत 'मैंने स्मृति के दीप जलाये(1976ई०)' में चौदह साहित्यकारों के संस्मरण हैं। इनमें रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, वृंदावनलाल वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, पुरुषोत्तमदास टंडन, हनुमान प्रसाद पोद्दार, सेठ गोविन्ददास, जनार्दनप्रसाद झा, विनोद शंकर व्यास, शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', गोपाल सिंह 'नेपाली', कृष्णदेव प्रसाद गौड़ और चतुरसेन शास्त्री के संस्मरण हैं। परिपूर्णानंद द्वारा लिखित संस्मरण पुस्तक 'बीती यादें(1976ई०)' स्वतन्त्रता संग्राम की सामाजिक आर्थिक झांकियाँ प्रस्तुत करती है। परिपूर्णानंद के इन संस्मरणों में साहित्यकारों के साथ-साथ राजनेताओं से जुड़े संस्मरण को प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद, टंडन जी, पराड़कर जी तथा लक्ष्मीनारायण गर्दे के संस्मरण हैं।

विष्णुकांत द्वारा लिखित 'स्मरण को पाथेय बनने दो(1978ई०)' में निराला, पन्त, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, अखंडानन्द सरस्वती, ललिता प्रसाद शुक्ल, बलदेव प्रसाद मिश्र, अमृतलाल नागर, मोहन राकेश और चन्द्रहासन के संस्मरण संकलित है। यह संस्मरण दो खंडो में प्रकाशित है। इसके दोनों खंड इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि इसमें साहित्यकारों के साथ-साथ आध्यात्मिक साधकों के संस्मरण संकलित हैं।

भगवतीचरण वर्मा कृत 'अतीत के गर्त से'(1979ई०) में कुल 15 पत्रकारों-साहित्यकारों के संस्मरण संगृहित हैं। इसमें 'गणेशशंकर विद्यार्थी', 'विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, 'बालकृष्णशर्मा 'नवीन', 'कृष्णकांत मालवीय', 'डॉ.मोतीचन्द्र' और 'सुभद्राकुमारी चौहान' के संस्मरण संकलित हैं। इन संस्मरणकारों के साथ, एक संस्मरण राजेन्द्र बाबू से सम्बंधित है। भगवतीचरण वर्ना ने इन संस्मरणकारों के व्यक्तित्व के साथ-साथ इनके सामाजिक मूल्यों को भी रेखांकित किया है।

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित 'श्रद्धांजलि-संस्मरण(1979ई०)' पुस्तक में भारतेंदु हरिश्चंद्र, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, नरेंद्र देव, जयशंकर प्रसाद, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अजमेरी और जायसवाल पर लिखे संस्मरण संकलित है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र का जीवन परिचय देते हुए लेखक ने उनके साहित्यिक योगदान की चर्चा की है। हिंदी भाषा के उत्थान में योगदान का श्रेय देते हुए वे उन्हें 'हिंदी के जन्मदाता' के रूप में देखते हैं। मैथिलीशरण गुप्त अपनी पुस्तक 'भारत-भारती' के प्रकाशन के बाद राजेंद्र प्रसाद से मिलते हैं। वे उस मुलाक़ात की आत्मीयता को अपने संस्मरण में चित्रित करते हैं। जवाहरलाल नेहरू को मैथिलीशरण गुप्त देश के प्रति समर्पित मानते हैं और उनकी लोकप्रियता को रेखांकित करते हुए उन्हें 'विश्वबंधु' के रूप में देखते हैं। नरेन्द्र देव के सरल-सहज व्यक्तित्व और 'विलक्षण भाषण शक्ति' की वे सराहना करते हैं। बनारस में जयशंकर प्रसाद से हुई मुलाक़ात के बाद उनके साथ बढ़ती नजदीकी और व्यक्तित्व की चर्चा करते हैं। अजमेरी और जायसवाल के बीच हुए बातचीत को बहुत नाटकीय और संवाद शैली में चित्रित किया गया है।

कुँवर सुरेश सिंह लिखित संस्मरण 'यादों के झरोखे(1980ई०)' है, जिसमें इन्होंने साहित्यकारों और राजनेताओं से जुड़े संस्मरणों को रेखांकित किया है। इनके संस्मरणों से स्पष्ट होता है कि इनकी दिलचस्पी साहित्य के साथ-साथ राजनीति में भी थी। इनके संस्मरणों में लालबहादुर शास्त्री, राजेन्द्र प्रसाद, कुंअर बृजेश सिंह तथा हरिऔध के प्रभावशाली संस्मरण हैं।

विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित संस्मरण 'यादों की तीर्थयात्रा' है जिसका प्रकाशन 1981ई० में हुआ था। इस संस्मरण संग्रह में 18 साहित्यकारों के संस्मरण हैं जिसमें सुदर्शन, शांतिप्रिय द्विवेदी, हरिशंकर शर्मा, इंद्र विद्यावाचस्पति, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' आदि के संस्मरण महत्त्वपूर्ण हैं।

राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने'(1980ई०) एक महत्त्वपूर्ण संस्मरण है। लेखक जिन्हें स्मरण कर रहा है उसमें कहीं न कहीं औरों के बहाने स्वयं को भी अभिव्यक्त कर रहा है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "मेरी चेतना और मानसिकता के हिस्से बनकर भी कुछ लोग बढ़े और उगे हैं, कुछ समकालीनता की नियति से बंधे हैं और कुछ को देशकाल की सरहदों से खींचकर मैंने अपने बोध का हिस्सा बनाया है। वे भी मेरे अपने 'होने' के साथ ही हैं। इन सबको 'देखना' मुझे 'आत्मसाक्षात्कार' का ही एक आयाम लगता है। हो सकता है, वे न होते तो आज मैं जो कुछ भी हूँ, वह न होता। इन दूसरों को व्यक्ति और अभिव्यक्ति दोनों की सम्पूर्णता में पाने के प्रयास में मैंने अपने ही किसी दबे-खुले अंश को पाया है।"[35] इन संस्मरणों के माध्यम से प्रेमचंद, चेखव, काफ़्का, अश्क, रांगेय राघव, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, अमरकांत, मन्नू भंडारी, ओमप्रकाश के व्यक्तित्व का संश्लेषण किया गया है इसके

अलावा मन्नू भंडारी द्वारा राजेंद्र यादव का व्यक्तित्व-विश्लेषण किया गया है। 'डार्करूम में बंद आदमी : राजेन्द्र यादव' एक आलेख है। यह आलेख राजेन्द्र यादव और उनकी पत्नी मन्नू भंडारी के आत्मीय सम्बन्ध को उजागर करता है। इस संस्मरण में चेखव का एक काल्पनिक इंटरव्यू भी लिया गया है।

प्रसिद्ध कथाकार अमृतलाल नागर द्वारा लिखा गया संस्मरण 'जिनके साथ जिया(1981ई०)' है। इस संस्मरण के शीर्षक से स्पष्ट है लेखक जिनके साथ जिया या जिनके साथ रहने से जीवन के तमाम तरीकों को सीखा, उन्हीं अनुभवों को संस्मरण के माध्यम से साकार बनाने का प्रयास किया है। लेखक के शब्दों में कहें तो "प्रतिवर्ष स्वनामधन्य साहित्यकारों की जन्मतिथियाँ अथवा पुन्यतिथियाँ आती है। यह लेख उसी निमित्त से समय-समय पर लिखे गये थे। स्मृतियाँ जब किसी एक विशेष धारा में श्रद्धा और प्रेमवश प्रवाहित होती हैं तो कुछ न कुछ ऐसी बातें सामने आ ही जाती हैं जो यो ध्यान में नहीं आती...जिनके साथ जिया हूँ, अथवा जिन महान पुरुषों के संग-साथ से मुझे जीने का ढंग मिला है उनके सम्बन्ध में अपने उद्गारो की एक जगह संजो देने का मोह भी इस पुस्तक के प्रकाशन का एक कारण है।"[36] इसमें जयशंकर प्रसाद, शरतचंद, सनेही, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रूपनारायण पाण्डेय, अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पन्त, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, बेढब बनारसी, पढ़ीस, रामविलास शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, सोहनलाल द्विवेदी और नरोत्तम नागर से जुड़े संस्मरण संकलित हैं। जयशंकर प्रसाद की कर्मठता और साहित्यकार व्यक्तित्व से नागर जी प्रभावित हैं। शरतचंद से कलकत्ता में हुई मुलाकात के पहले से वे उनकी लेखनी से प्रभावित हैं। उनके उपन्यासों को वह मनोरंजन के रूप में नहीं बल्कि अध्ययन के रूप में पढ़ते हैं। निराला के व्यक्तित्व-कृतित्व और जीवन संघर्ष को याद करते हुए वे उन्हें श्रद्धांजलि देते हैं।

प्रतिभा अग्रवाल कृत 'सृजन का सुख-दु:ख(1981ई०)' में उन्होंने अपने जीवन के रंगमंचीय अनुभवों को सजीव किया है। इस संस्मरण में उन्होंने अपने समकालीनों और रंगमचीय प्रतिभा से जुड़े व्यक्तित्व से रू-ब-रू कराने की कोशिश की है। इसमें उन्होंने श्यामानंद, सत्यदेव दुबे, बादल सरकार, मोहन राकेश, गिरीश कर्नाड, राजेन्द्र नाथ, मणिमधुकर, शिवकुमार जोशी, उत्तम राम नागर, नेमिचंद्र जैन, सुरेश अवस्थी, सत्यव्रत सिन्हा, भानुशंकर मेहता, विष्णुकांत शास्त्री आदि के व्यक्तित्व से परिचय कराया है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' छायावाद युग के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। इन्होंने 'युगपुरुष(1983ई०)' नाम से संस्मरण की रचना की। जैसा कि संस्मरण शीर्षक 'युगपुरुष' से स्पष्ट है कि अपने समय या काल के प्रेरणा पुरुषों के व्यक्तित्व को अंकित किया गया है। उनके व्यक्तित्व की महानता पर लेखक की दृष्टि है इसमें प्रेमचन्द, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', माखनलाल चतुर्वेदी, पुरुषोत्तमदास टंडन, बालकृष्ण शर्मा नवीन, भगवती प्रसाद वाजपेयी,

भुवनेश्वर, केशव पाठक, सियारामशरण गुप्त, हजारी प्रसाद द्विवेदी और ब्रजकिशोर चतुर्वेदी के संस्मरण को संकलित किया गया है। यह संस्मरण संग्रह साहित्यकारों के व्यक्तित्व को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

पद्मा सचदेव द्वारा लिखित संस्मरण 'दीवानखाना(1984ई०)' है। इसमें रामधारी सिंह दिनकर, अमृतलाल नागर, हरिवंशराय बच्चन, लता मंगेशकर, पं० रविशंकर, राजेन्द्र सिंह बेदी, उस्ताद अल्लारखा खां, इस्मत चुगताई, अमृता प्रीतम, सितारा देवी, श्री सराफ, पंडित शिवकुमार शर्मा, रेशमां, शेरे कश्मीर शेख अब्दुल्ला आदि संस्मरण संकलित हैं। यह संस्मरण इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि इसमें साहित्यकारों के साथ-साथ गायिकाओं के जीवन को भी उद्घाटित करने की कोशिश की गयी है। डॉ. रामचंद्र तिवारी इस संस्मरण के सन्दर्भ में लिखते हैं- "लेखिका ने चूँकि बहुत से बुजुर्गों के संबंध में लिखा है, इसलिए इस संस्मरण में साक्षात्कार के तत्त्व भी हैं। इसमें साहित्यकारों के अतिरिक्त पत्रकार, राजनेता और संगीतकारों को भी याद किया गया है। संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता पद्मा सचदेव की बिम्बधर्मी, कवित्त्वपूर्ण, नाटकीय स्थितियों से समृद्ध, लाक्षणिक गद्य शैली है।"[37] विष्णु प्रभाकर कृत 'यादों की तीर्थयात्रा' में जगदीशचन्द्र माथुर, जैनेन्द्र कुमार, सियारामशरण गुप्त, किशोरीदास वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हरिशंकर शर्मा, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रामवृक्ष बेनीपुरी, उदयशंकर भट्ट, कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढ़ब', बनारसीदास चतुर्वेदी, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, भवानीप्रसाद मिश्र, रामधारीसिंह दिनकर, इंद्र विद्यावाचस्पति को याद किया गया है। इनमें तमाम ऐसे रचनाकार हैं जिन पर कम संस्मरण लिखे गये हैं। उनके व्यक्तित्व को लेखक ने बहुत सहजता से उभारने की कोशिश की है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा लिखित संस्मरण 'स्मृति-लेखा(1986ई०)' है। हिंदी साहित्यकारों में अज्ञेय का नाम शीर्षस्थ है। इन्होंने 'स्मृति-लेखा' में सरोजनी नायडू, मैथिलीशरण गुप्त, रायकृष्ण दास, सुमित्रानंदन पन्त, प्रेमचंद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, फणीश्वरनाथ रेणु, रामधारी सिंह दिनकर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, होमवती देवी से जुड़े संस्मरण लिखे हैं।

कमलकिशोर गोयनका द्वारा संस्मरण की सम्पादित पुस्तक 'प्रेमचन्द:कुछ संस्मरण' हैं जो 1980ई० में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में अनेक लेखकों ने प्रेमचंद से जुड़े अनुभवों को साझा किया है। प्रेमचन्द को लेकर लेखकों के अलग-अलग अनुभव, उनके जीवन के तमाम अनजाने-अनछुए पहलुओं को जानने-समझने के लिए यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। कमलकिशोर गोयनका की संस्मरण की दूसरी पुस्तक 'हजारीप्रसाद द्विवेदी : कुछ संस्मरण(1988ई०)' हैं। इसमें गोयनका ने 36 लेखकों द्वारा लिखित हजारीप्रसाद द्विवेदी से जुड़े संस्मरण को

संकलित किया है। इस संस्मरण संग्रह में द्विवेदी जी के व्यक्तित्व को हर दृष्टि से देखने और समझने की कोशिश की गई है।

भारतभूषण अग्रवाल की पत्नी बिंदु अग्रवाल थी। इन्होंने भारतभूषण अग्रवाल की मृत्यु के बाद 'भारतभूषण अग्रवाल:कुछ यादें कुछ चर्चाएँ(1989ई०)' शीर्षक से संस्मरण लिखा। इसमें उन्होंने भारतभूषण अग्रवाल की जीवन के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित करने की कोशिश की है। उनके साथ अपने अनुभवों का उन्होंने सम्यक मूल्यांकन भी प्रस्तुत किया है।

कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत(1977ई०)' एक बेहतरीन संस्मरण है। इस संस्मरण के माध्यम से व्यक्ति के जीवन के विविध मूल्यों को हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है। इसमें लेखक, पत्रकार, बुद्धिजीवी के साथ-साथ 'राजकमल प्रकाशन' की प्रबंध निदेशिका शीला संधू, टैक्सी ड्राईवर और वेटर के जीवन का मूर्त रूप संस्मरण के माध्यम से दिखाया गया है। 'हम हशमत' पुस्तक के फ्लैफ़ पर लिखा गया है- "हम हशमत' बोलते शब्द-चित्रों की एक घूमती हुई रील है। एक विस्तृत जीवन-फलक जैसे घूमता है और सामने चित्र उभरते हैं-साफ़ और जीवंत चित्र, एक के बाद एक"[38]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का क्षितिज बहुत विस्तृत है। इसमें जीवन का वह हर रंग-रूप उभरकर सामने आया है जो आमतौर पर साहित्य में नहीं आ पाता है। समकालीन संस्मरण लेखन में पारंपरिकता का निर्वाह तो है, साथ ही इनमें कई परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। इसकी मुख्य वज़ह एक तो यह है कि आज के ज्यादातर संस्मरणकार साहित्य से भिन्न अनुशासनों से आये हैं, जिसका पुट इनके संस्मरण में सहजता से दृष्टिगोचर होता है। जैसे राजेन्द्र यादव की छवि हिंदी साहित्य में कथाकार, आलोचक और संपादक की है। काशीनाथ सिंह की छवि भी हिंदी दुनिया में मुख्यतः कथाकार की है। कृष्णा सोबती, कांतिकुमार जैन, रवींद्र कालिया, मनोहर श्याम जोशी की पहचान भी कथाकार की ही है। निर्मला जैन हिंदी की प्रतिष्ठित आलोचक हैं। काशीनाथ सिंह 'घर का जोगी जोगड़ा' में संस्मरण की ओर हुए अपने झुकाव को लेकर कहते हैं- "मुझे अपना पहला संस्मरण लिखना पड़ा उनकी 'षष्टिपूर्ति' पर ! 'पहल' के लिए! यानी 85-86 के करीब ! कहानियां लिखते-लिखते ऊब-सा रहा था। कहानी से जो चाहता था, वह नहीं हो रहा था मुझसे। और संस्मरण के लिए हिंदी में कोई माडल नहीं था, वह नहीं हो रहा था मुझसे। और संस्मरण के लिए हिंदी में कोई माडल नहीं था मेरे सामने! जो था वह रूखा, सूखा, बेजान, अनाकर्षण, मांस-मज्जा हीन, ऊष्मा रहित। हड्डियों के निर्जीव ढांचे की तरह। साथ ही संस्मरण की जगह साहित्य के समाज में उस दलित जैसी थी जिसके लिए 'पंगत' में कोई पत्तल नहीं।"[39]

संस्मरण लेखन की पारंपरिक ढांचें में व्यक्ति केन्द्रित, समाज केन्द्रित, सम्यक घटना का रोचक वर्णन तो मिलता है। समकालीन हिंदी संस्मरण में स्थान विशेष केन्द्रित संस्मरण भी प्रकाश में आये हैं। जैसे मनोहर श्याम जोशी का 'लखनऊ मेरा लखनऊ', निर्मला जैन का 'दिल्ली शहर–दर–शहर', काशीनाथ सिंह का 'काशी का अस्सी', विश्वनाथ त्रिपाठी का 'नंगातलाई का गाँव' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। समकालीन संस्मरण लेखन की जो केन्द्रीय महत्ता है, वह 'समीक्षात्मक भाव' है। इस दृष्टि से राजेंद्र यादव की संस्मरण कृति 'वे देवता नहीं हैं', काशीनाथ सिंह कृत 'याद हो कि न याद हो', रवींद्र कालिया कृत 'ग़ालिब छूटी शराब', कान्ति कुमार जैन कृत 'तुम्हारा परसाई' में आत्मीय संबंध तो हैं, साथ ही इनमें संस्मरणकार ने अपने मित्रों की समीक्षा और मूल्यांकन करने का भी भरसक प्रयास किया है। इनमें रचनाकरों की विभिन्न कृतियों की रचना प्रक्रिया से भी अवगत कराया गया है। इन कृतियों में ईर्ष्या या द्वेष का भाव नहीं है, जैसा कि आरोप लगाया जाता है। इन्होंने उन रचनाकार दोस्तों की खूबियों-खामियों को अधिकारपूर्वक चित्रित किया है।

1990ई० के बाद के संस्मरण अपने से पहले के संस्मरणों से ज्यादा प्रौढ़ दिखाई देते हैं। बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक के संस्मरण जिसमें विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित 'यादों की तीर्थयात्रा(1981ई०)', राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने(1981ई०)', अमृतलाल नागर कृत 'जिनके साथ जिया', अज्ञेय कृत 'स्मृति लेखा(1986ई०)', कमल किशोर गोयनका कृत 'हजारीप्रसाद द्विवेदी : कुछ संस्मरण' और कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत' आदि का कथ्य और स्वरुप धीरे-धीरे बदलने लगता है। इस बदलाव का एक नया मोड़ नौवें दशक के बाद के संस्मरणों में स्पष्ट हो जाता है। यहीं से कथ्य, स्वरूप, संरचना और भाषा शैली आदि में बदलाव दिखाई देता है। संस्मरण अपनी पुरानी केंचुल को छोड़ते हुए नवीनता को धारण करता है। संस्मरण अपने पारम्परिक संस्मरणों से अलग और बदले हुए रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। अपनी यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ संस्मरण एक रोचक विधा के रूप में पाठकों से लोकप्रियता बटोरते हुए दिखाई देता है। यह लोकप्रियता काशीनाथ सिंह के संस्मरणों से ज्यादा बढ़ती है। उनके संस्मरणों में विषय की नवीनता, कथ्य का स्वरूप और शैली की रोचकता ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया जो संस्मरण को एक नई दिशा ही नहीं देता बल्कि संस्मरण की तरफ लोगों का ध्यान भी केन्द्रित करता है। इसके बाद के संस्मरणकारों में कांतिकुमार जैन, रवीन्द्र कालिया, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, मनोहरश्याम जोशी आदि लेखकों के तमाम चर्चित संस्मरण प्रकाशित होते हैं- जिसमें विष्णु प्रभाकर कृत 'सृजन के सेतु(1990ई०)', अजित कुमार कृत 'निकट मन में(1992ई०)', अमृत राय कृत 'जिनकी याद हमेशा रहेगी(1992ई०)', विष्णुकान्त शास्त्री कृत 'सुधियाँ उस चन्दन के वन की(1992ई०)', प्रकाशवती पाल कृत 'लाहौर से लखनऊ तक(1994ई०)', दूधनाथ सिंह कृत 'लौट आ ओ धार(1995ई०)', रामदरश मिश्र कृत

‘स्मृतियों के छंद’(1995ई०), अपने-अपने रास्ते(2001ई०)’, रवीन्द्र कालिया कृत ‘सृजन के सहयात्री (1996ई०) और ग़ालिब छूटी शराब(2000ई०)’, कृष्णा सोबती कृत ‘हम हशमत(भाग-2)’, राजेन्द्र यादव कृत ‘वे देवता नहीं है(2000ई०)’, देवेन्द्र सत्यार्थी कृत ‘यादों के काफिले(2000ई०)’, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कृत ‘एक नाव के यात्री (2001ई०)’, नरेश मेहता कृत ‘प्रदक्षिणा अपने समय की(2001ई०)’, विद्यानिवास मिश्र कृत ‘चिड़िया रैन बसेरा(2000ई०)’, कान्ति कुमार जैन कृत ‘लौटकर आना नहीं होगा(2002ई०)’, कृष्ण बिहारी मिश्र कृत ‘नेह के नाते अनेक(2002ई०)’, रामकमल राय कृत ‘स्मृतियों का शुक्ल पक्ष(2002ई०)’, मनोहरश्याम जोशी कृत ‘लखनऊ मेरा लखनऊ(2002ई०)’, ‘रघुवीर सहाय:रचनाओं के बहाने एक संस्मरण(2003ई०)’, विवेकी राय कृत ‘आँगन में वंदनवार(2003ई०)’ और ‘मेरे सुहृदय श्रध्देय(2005ई०)’, विष्णुकांत शास्त्री कृत ‘पर साथ-साथ चल रही याद(2004ई०)’, डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी कृत ‘नंगा तलाई का गाँव(2004ई०)’, लक्ष्मीधर मालवीय कृत ‘लाई हयात आए(2004ई०)’, काशीनाथ सिंह कृत ‘आछे दिन पाछे गए(2004ई०)’, ‘घर का जोगी जोगड़ा(2006ई०)’, मधुरेश कृत ‘ये जो आइना है(2006ई०)’, रामदरश मिश्र कृत ‘एक दुनिया अपनी(2007ई०)’, अमरकांत कृत ‘कुछ यादें कुछ बातें(2008 ई०)’, कांतिकुमार जैन कृत ‘तुम्हारा परसाई(2004 ई०), जो कहूँगा सच कहूँगा(2006 ई०), अब तो बात फ़ैल गई(2007 ई०) और बैकुंठपुर में बचपन(2010 ई०)’, केशव चन्द्र वर्मा कृत ‘सुमिरन के बहाने(2005 ई०)’, ‘गंगा स्नान करने चलोगे(2012 ई०)’, मुद्राराक्षस कृत ‘कालातीत(2009ई०)’, ममता कालिया कृत ‘कितने शहरों में कितनी बार(2009 ई०)’ और ‘कल परसों बरसों(2011 ई०)’, चन्द्रकान्ता कृत ‘हासिये की इबारतें(2009 ई०)’, अजीत कुमार कृत ‘कविवर बच्चन के साथ(2009 ई०) ‘अँधेरे में जुगनू(2010 ई०)’, विष्णु प्रभाकर कृत ‘मेरे संस्मरण(2010 ई०)’, शेखर जोशी कृत ‘स्मृति में रहेंगे वे(2011 ई०)’, नरेंद्र कोहली कृत ‘स्मृतियों के गलियारे से(2012 ई०)’, मधुरेश कृत ‘आलोचक का आकाश(2012 ई०)’, बलराम कृत ‘माफ़ करना यार(2012 ई०)’, कृष्णा सोबती कृत ‘हम हशमत(भाग-तीन)(2012 ई०)’ आदि उल्लेखनीय संस्मरण लिखे गये हैं।

विष्णु प्रभाकर प्रसिद्ध कथाकार है लेकिन संस्मरण के क्षेत्र में इन्होंने कम ख्याति नहीं प्राप्त की। इनके द्वारा लिखित पुस्तक ‘सृजन के सेतु(1990 ई०)’ है जिसमें इन्होंनें कुल पन्द्रह लेखकों को याद किया है। इनमें श्री उमाशंकर जोशी, वियोगी हरि, अमृतलाल नागर, कन्हैयालाल मिश्र ‘प्रभाकर’, रामवृक्ष बेनीपुरी, अज्ञेय, रावी, सर्वेश्वरदयाल दयाल सक्सेना, सुदर्शन, सोमदत्त, शांतिप्रिय द्विवेदी, ऋषभ चरण जैन, वृन्दावन लाल वर्मा और रामनारायण उपाध्याय शामिल हैं। इन लेखकों के माध्यम से उनके जीवन के कुछ ऐसे पहलुओं से रू-ब-रू कराया गया है जिनसे लोग अनभिज्ञ हैं। विष्णु प्रभाकर की ‘मेरे संस्मरण’

एक अन्य कृति है। 'मेरे संस्मरण' में देवेन्द्र सत्यार्थी ने अमृतराय, शिवपूजन सहाय, प्रफुल्लचन्द्र ओझा, सियारामशरण गुप्त, जैनेन्द्र कुमार, केदारनाथ अग्रवाल, विजेंद्र स्नातक, विमल मिश्र, गुरुदयाल सिंह, लक्ष्मीचन्द्र जैन, रामदरश मिश्र, बालशौरि रेड्डी, पी.जी.वासुदेव, ताल्सतॉय और डॉ.मिल्तनेर को याद किया है।

अजित कुमार द्वारा लिखित संस्मरण पुस्तक 'निकट मन में(1992ई०)' है। इस पुस्तक में 15 साहित्यकारों को याद किया गया है। ये संस्मरण इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं कि इनमें हिंदी साहित्यकारों के अलावा अन्य भाषाओँ के साहित्यकारों को याद किया गया है। जैसे- मस्ति वेंकटेश आयंगर कन्नड़ भाषा के प्रख्यात साहित्यकार हैं। उन्हें 'कन्नड़ कहानी' के जनक के रूप में माना जाता है। अजित कुमार ने वेंकटेश आयंगर के व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करने की कोशिश की है। इसके अलावा इन्होंने रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, भारत भूषण अग्रवाल, लक्ष्मी नारायण लाल, देवीशंकर अवस्थी आदि साहित्यकारों को याद कियें हैं।

अमृतराय द्वारा लिखित पुस्तक 'जिनकी याद हमेशा रहेगी(1992ई०)' है। अमृतराय ने हिंदी साहित्यकारों के साथ-साथ अन्य भाषा-क्षेत्र के लेखकों, शायरों, चित्रकारों और फिल्म निर्माताओं को याद किया है। हिन्दी साहित्यकारों में उन्होंने प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', कृष्णचंदर, जैनेन्द्र कुमार, महादेवी वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, फादर कामिल बुल्के, सुमित्रानंदन पन्त, रांगेयराघव आदि पर संस्मरण लिखते हुए शायर सुहैल अजीमाबादी, चित्रकार मकबूल फ़िदा हुसैन, बंगला कवि सुभाष मुखोपाध्याय, बंगला साहित्यकार राधाकृष्ण उर्फ़ लाल बाबू और प्रसिद्ध फिल्म निर्माता सत्यजीत राय को याद किया है।

विष्णुकांत शास्त्री कृत 'सुधियाँ उस चंदन के वन की(1992ई०)' संस्मरण संग्रह है। इस पुस्तक का शीर्षक गिरजाकुमार माथुर की कविता से लिया गया है। इसमें उन्होंने 'स्वामी अखंडानंद सरस्वती, महादेवी वर्मा, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं.गांगेय नरोत्तम शास्त्री, प्रो.देवेन्द्रनाथ शर्मा, डॉ.नामवर सिंह और श्री उमाशंकर जोशी पर संस्मरण लिखें हैं। स्थान विशेष को आधार बनाकर गुजरात, अयोध्या आदि को याद किया गया है। व्यक्ति की वैयक्तिकता के साथ स्थान विशेष की विशिष्टता को बड़े जीवंत रूप में शब्दांकित किया गया है। इस संस्मरण के संदर्भ में रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं- "संस्मृत विशिष्टजनों को आपने उनके गुण, धर्म, शील, आचार के अनुकूल यथोचित श्रद्धा, सम्मान, कृतज्ञता और आदर के साथ याद किया है किन्तु आपके अंतर्मन को सबसे अधिक स्वामी अखंडानंद सरस्वती के तत्त्व-ज्ञान, महादेवी वर्मा के तपोमय जीवन की भास्वरता, श्री उमाशंकर जोशी की मानवीयता, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उन्मुक्त हास्य के भीतर कहीं छिपी हुई वेदना और अपने पिताश्री नरोत्तम शास्त्री की आंतरिक

भावुकता ने विगलित किया है। निश्चय ही आपके इस संस्मरणों में चन्दन की शीलता और सुगन्धि व्याप्त है।"[40]

श्रीमती प्रकाशवती पाल द्वारा लिखित यशपाल पर केन्द्रित संस्मरण 'लाहौर से लखनऊ तक(1994ई०)' है। श्रीमती प्रकाशवती पाल साहित्यकार यशपाल की पत्नी थी। इन्होंने यशपाल के जीवन-संघर्ष को संस्मरण के माध्यम से रेखांकित करने की कोशिश की है। अन्तरंग जीवन के यथार्थ को स्पष्ट करने का बेहतरीन जरिया संस्मरण है। एक पत्नी के रूप में उन्होंने यशपाल से जुड़ें अपने तमाम अनुभवों को साझा किया है। इस संस्मरण में यशपाल के जीवन के उन पक्षों को सामने लाने का प्रयास किया गया है। जिनसे उनके व्यक्तित्व को सम्पूर्णता से समझने में आसानी होती है।

गिरिराज किशोर कृत 'सप्तपर्णी' ऐसी पुस्तक है जिसमें कई विधा को एक साथ देखा जा सकता है। इस पुस्तक में संस्मरण के साथ-साथ डायरी और छोटी-छोटी व्यंग कथाएँ भी हैं। संस्मरण के रूप में गिरिराज किशोर, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, ज्ञानरंजन, सत्यव्रत सिन्हा, रमेश बक्षी, भवानीप्रसाद मिश्र, राधाकृष्ण और अज्ञेय को याद किया गया है। गिरिराज किशोर आई.आई.टी. कानपुर के कुलपति हुए जिन्हें कुछ समय बाद निलम्बित कर दिया गया। इस निलंबन के खिलाफ वे लम्बा संघर्ष किये और विजयी हुए। गिरिराज किशोर ऐसे व्यक्ति थे जो रचनात्मकता को महत्त्व देते थे। वे चाहते थे कि प्रौद्योगिकी के छात्र भी इसमें रूचि लें। उन्होंने रचनात्मक प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए परिसर में एक 'रचनात्मक लेखन केंद्र' की स्थापना की। गिरिराज किशोर जानते थे इस रचनात्मक केंद्र का संरक्षण तभी तक है जब तक वे परिसर में हूँ। उनके जाते ही इस केंद्र की स्थिति सप्तपर्णी की शाखाओं की तरह हो जाएगी जिसे बढ़ने ही नहीं दिया जायेगा।

'लौट आ ओ धार(1995ई०)' प्रसिद्ध लेखक दूधनाथ सिंह की आत्म संस्मरणात्मक पुस्तक है। इस पुस्तक के बारे में दूधनाथ कहते हैं- "इसको कुछ भी कह सकते हैं। यह डायरी है। संस्मरण है। आत्मवाची गद्य है। टिप्पणी है। आलोचना है। कथा-वृत्तान्त है। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों की दुखती धड़कन से छेड़छाड़ है और सबसे अधिक अनेक लोगों की धुंधली और चमकती छवियों से मेरा आत्म-संवाद है। यह एक रंगीन मोजैक है। विधाओं से एक तोड़फोड़ है। गद्य का आन्तरिक अवकाश है।"[41] इसमें लेखक ने अपने प्रारम्भिक अकादमिक जीवन संघर्ष, रचनाकार के रूप में चुनौतियाँ और शरीरिक परेशानियों को रेखांकित किया है। इसके साथ ही इस पुस्तक में अपने साहित्य सेवियों में सुमित्रानंदन पंत, धीरेन्द्र वर्मा, शमशेर बहादुर सिंह और ज्ञानरंजन जैसे साहित्यकारों के जीवन मूल्यों और साहित्यिक योगदान को परखने की कोशिश की गयी है। दूधनाथ सिंह ने इस किताब का शीर्षक शमशेर बहादुर सिंह की कविता 'लौट आ ओ धार' से लिया है। इस छोटी सी कविता में जीवन का गहरा मर्म छिपा हुआ है जिसके माध्यम से इस पुस्तक की

अंतर्वस्तु और अंतरंगता को समझा जा सकता है। 1959ई०में लिखी गयी कविता संघर्षमय जीवन को परिलक्षित करती है।

रामदरश मिश्र ने तीन संस्मरण लिखे हैं। यह संस्मरण हैं- 'स्मृतियों के छंद(1995ई०)', 'अपने-अपने रास्ते(2001ई०)' और 'एक दुनिया अपनी' । 'स्मृतियों के छंद(1995ई०)' में लेखक ने चौदह दिवंगत व्यक्तियों को याद किया है। ये वे लोग है जो किसी न किसी रूप में लेखक को प्रभावित किया है। इस संस्मरण में रामदरश मिश्र ने अपने गुरुओं, दोस्तों और साहित्यकार मित्रों को शामिल किया है। इसमें बिकाऊ पंडित, गणेशदत्त मिश्र मदनेश, रामगोपाल शुक्ल, विद्याधर द्विवेदी विज्ञ, ठाकुरप्रसाद सिंह, हजारीप्रसाद द्विवेदी, उमाशंकर जोशी, देवीशंकर अवस्थी, सावित्री सिन्हा, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेरबहादुर सिंह, प्रभाकर माचवे, जैनेन्द्र कुमार, गिरिजाकुमार माथुर को स्मरण किया गया है। इनमें कुछ नाम ऐसे है जो बड़े साहित्यकार, विचारक या राजनीतिज्ञ तो नहीं, लेकिन लेखक के व्यक्तिगत जीवन से गहरे से जुड़े हैं। बिकाऊ पंडित उनके प्राथमिक शिक्षक, पंडित गणेश दत्त मिश्र पड़ोसी गाँव के स्थानीय कवि, ढरसी स्कूल के आचार्य रामगोपाल शुक्ल और मित्र विद्याधर द्विवेदी हैं। इस संस्मरण में एक पहलू यह देखने को मिलता है कि लेखक ने साहित्य जगत में विख्यात व्यक्तियों को ही नहीं बल्कि उन्हें भी उतना ही महत्त्व दिया है जो भले की साहित्य जगत में प्रसिद्धि हासिल न किये हों लेकिन उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हों। इन सभी के सकारात्मक और प्रेरक पक्षों को उजागर किया गया है। 'अपने-अपने रास्ते' साहित्यिक मित्रों और पारिवारिक जीवन को आधार बना कर लिखा गया है। इसमें दो संस्मरण ऐसे हैं जिसमें एक 'माँ' और दूसरा पुत्र हेमंत पर लिखा गया है। माँ और बेटे पर संस्मरण लिखते समय स्वानुभूति का मर्म उभर आता है। इसके अलावा इन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, विष्णु प्रभाकर, धर्मवीर भारती, माहेश्वर रमेश बक्षी, भवानीप्रसाद मिश्र, देवेन्द्र सत्यार्थी, डॉ.नगेन्द्र, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के व्यक्तिव को खंगालने की कोशिश की है।

रवीन्द्र कालिया की संस्मरण पुस्तकें 'सृजन के सहयात्री(1996ई०)' और 'ग़ालिब छूटी शराब' हैं। 'सृजन के सहयात्री' में इन्होंने उपेन्द्रनाथ 'अश्क', ज्ञानरंजन, कमलेश्वर, मार्कंडेय, कुमार विकल, दूधनाथ सिंह, ममता कालिया, गंगाप्रसाद विमल, से०रा० यात्री, गिरिराज किशोर, मोहन राकेश, श्री लाल शुक्ल, अमरकांत को याद किया है। इसमें तेरह लेखकों के जीवनानुभवों को शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। रवीन्द्र कालिया की पत्नी ममता कालिया हैं। ममता कालिया पर लिखा संस्मरण उनके अन्तरंग जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है। मोहन राकेश उनके गुरु हैं। यहाँ अन्य साहित्य सेवियों से प्राप्त अनुभव को रोचक ढंग से रेखांकित किया गया है। इनका दूसरा संस्मरण 'ग़ालिब छूटी शराब' है जो आत्म संस्मरणात्मक है। यह संस्मरण तमाम आदर्शवादी नैतिक मूल्यों के ढांचे को तोड़ता

हुआ नजर आता है। महानता के जितने पैमाने बनाये गये हैं यह संस्मरण उन पैमानों को खंडित करता है। लेखक अपनी और अपनों के जीवन की वास्तविकता बड़े बेवाकी से कहता है। वह अपने बनते-बिगड़ते सम्बन्ध और मानव स्वभाव के गुण-दोष को बिना लाग-लपेट के ज्यों का त्यों रखते हुए आगे बढ़ता है।

'अभिन्न' विष्णु चन्द्र शर्मा का संस्मरण है जो उनके पिता कृष्णचन्द्र शर्मा और साहित्यकारों को आधार बना कर लिखा गया है। विष्णुचन्द्र शर्मा जीवनी लेखक और पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने 'अभिन्न' में शमशेरबहादुर सिंह, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन, नरेंद्र शर्मा, हरिशंकर परसाई, जितेन्द्र, राहुल सांकृत्यायन, ठाकुर प्रसाद सिंह, रमाकांत, जगत् शंखधर को याद किया है। विष्णुचन्द्र शर्मा के इस संस्मरण के बारे में रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि इस संस्मरण में "व्यक्तियों के व्यक्तित्व के अनुसार लेखक की भावनाएं बदलती गई हैं। कहीं वह करुणा से आर्द्र हो उठा है, तो कहीं आदर और सम्मान से विनम्र। प्राय: वह साहित्यकार मित्रों का सगा और अभिन्न दिखाई पड़ता है। पूरे लेखन में सजगता, निस्संगता और आत्मीयता का विरल संश्लेषण है।"[42]

कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत' के दूसरे भाग में उन्होंने अशोक वाजपेयी, नेमिचंद्र जैन, मंटो, सत्येन्द्र कुमार, स्वदेश दीपक, बलवंत सिंह, प्रयाग शुक्ल, कमलेश्वर, सच्चिदानंद हीरानंद 'अज्ञेय', नामवर सिंह, उपेन्द्रनाथ अश्क, कन्हैयालाल नन्दन, मंटो, श्रीकान्त वर्मा, स्वदेश दीपक, मंजूर एहतेशान, उमाशंकर जोशी, सौमित्र, राजेन्द्रसिंह बेदी, नासिरा शर्मा, सत्येन्द्र कुमार जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों पर दृष्टि डाली है। कृष्णा सोबती का यह संस्मरण इस दौर के संस्मरण से थोड़ा अलग पहचान बनाता है। उन्होंने जिन्हें याद किया है उनके व्यक्तित्व को बहुत नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। "देखा जाय तो संस्मरण का सामान्यत: जो अर्थ लिया जाता है, यह कृति उससे कुछ अलग है। इसमें कृष्णा जी ने संस्मृत रचनाकार के व्यक्तित्व संघटन-तत्त्वों को बड़ी बारीकी से देखा-परखा है और उसकी एक –एक पर्त को एक खास नाटकीय अंदाज में पाठको के सामने प्रस्तुत कर दिया है।...कृष्णा सोबती के अंदाजे बयां, जिसका जोड़ इस समय हिंदी में दूसरा नहीं है।"[43]

पद्मा सचदेव ने तीन संस्मरणों की रचना की है। ये संस्मरण हैं- 'दीवान खाना', 'मितवा घर' और 'अमराई'। 'अमराई' इनका तीसरा संस्मरण संग्रह है। इसमें लेखकों, नेताओं, नृत्यांगनाओं, संगीतकारों और राजनयिकों को स्मृत किया गया है। इनके संस्मरण में स्मृतियों के विविध रंग दिखाई देते हैं जिसमें उन्होंने बहुत कुछ समेटने की कोशिश की है। इन्होंने अपने संस्मरण का विषय उन्हें बनाया है जिनपर अन्य संस्मरण लेखकों का ध्यान नहीं गया या वह उस योग्य नहीं समझे गए। मसलन पूर्व प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री की पत्नी ललिता शास्त्री को इन्होंने याद किया है। संस्मरण लेखन में उपेक्षित महिला लेखिकाओं

को भी इन्होंने अपने संस्मरण में स्थान दिया है जैसे शिवानी और दिनेशनंदिनी डालमिया हैं। अपने संस्मरण में प्रभाकर माचवे, केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन, धर्मवीर भारती जैसे प्रसिद्ध लेखकों को याद करते हैं। इसके साथ ही लेखक ने कश्मीरी नेता बख्शी गुलाम मुहम्मद और फारुख अब्दुल्ला और राजनयिक लक्ष्मीमल सिंघवी के व्यक्तिव में झाँकने की कोशिश की है।

राजेंद्र यादव ने दो संस्मरण पुस्तकों की रचना की है। इनका पहला संस्मरण 'औरों के बहाने' और दूसरा 'वे देवता नहीं है(2000ई०)' है। 'वे देवता नहीं है' में रामविलास शर्मा, यशपाल, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मनमोहन ठाकौर, नजीर अकबराबादी, शानी, धर्मवीर भारती, भैरव प्रसाद गुप्त, मीरा महादेवन, शैलेश मटियानी, नरेशचन्द्र चतुर्वेदी, निर्मला जैन, लक्ष्मी चन्द्र जैन, भंवरमल सिंघी पर संस्मरण है। इसमें एक आलेख 'हकीर कहो, फकीर कहो' है जो राजेन्द्र यादव ने स्वयं को आधार बनाकर लिखा है। यह आलेख आत्म संस्मरणात्मक है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "अचानक ख्याल आया कि अगर क़ानूनी रूप से अग्रिम जमानत ली जा सकती है तो अग्रिम श्रद्धांजलि क्यों नहीं लिखी जा सकती? आज जिन्दा बने रहना भी तो अपराध ही है। मरने के बाद लोग दिवंगत के बारे में पता नहीं क्या-क्या लिखते और बोलते हैं, वह बेचारा न उस सबका प्रतिवाद कर सकता है, न उसमें कुछ घटा-बढ़ा सकता है। दरअसल मेरे ये संस्मरण उसी लाचार आदमी के प्रतिवाद हैं। माध्यम मैं हूँ, मगर गुहार उस असहाय की है जो बलात्कार के खिलाफ न्याय की मांग कर रहा है। सचमुच यह कितना बड़ा राक्षसी षड्यंत्र है कि हम धो-पोंछकर, काट-छिल कर हर किसी को एक ही सांचे में घोंट-पीस डालते हैं कि उसका सारी 'अद्वितीयता' समाप्त हो जाती है। सब एक-दूसरे के प्रतिरूप देवता बने काँच के बक्सों से हमें घूरते रहते हैं।"[44]

देवेन्द्र सत्यार्थी कृत संस्मरण 'यादों के काफिले(2000ई०)' है। इसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, पाब्लो नेरूदा, प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्र, सच्चितानंद हीरानंद 'अज्ञेय', वल्लतोल, होमवती मलिक, कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी, बनारसीदास चतुर्वेदी, भाई वीर सिंह, मुल्कराज आनंद, अमृता प्रीतम, बलराज साहनी, रामानंद चटोपाध्याय, अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, यामिनी राय, अमृता शेरगिल, काका कालेलकर, नंदलाल बसु, ठक्कर बापा, भगवतीचरण वर्मा आदि के संस्मरण और उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण है। देवेन्द्र सत्यार्थी के संस्मरण में जहाँ एक तरफ राजनेताओं और साहित्यकारों की चर्चा है, वहीं दूसरी तरफ अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, नंदलाल बसु और यामिनी राय जैसे चित्रकारों और शचीन देव बर्मन जैसे संगीतकार के जीवन की झाकियां हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। 'एक नीग्रो सैनिक से भेंट' में अमेरिका में रंगभेद की समस्याओं को इस प्रकार उठाया है जो बहुत प्रभावित करते हैं। 'ओ जोग के जल-प्रपात' में प्रकृति की सुन्दरता को उन्होंने जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया है। वही 'नावागई के हुजरे में' पठान लोगों के साथ उल्लास के एहसास को भी उन्होंने गहरे से उतारा है।

‘चिड़िया रैन बसेरा(2000ई०)’ विद्यानिवास मिश्र का उत्कृष्ट कोटि का संस्मरण है। इसमें उन्होंने जीवन में एक के बाद एक बाद को याद किया है। इसमें उन्होंने अपने गाँव, ननिहाल, इलाहाबाद, लखनऊ, रीवां, आगरा, बनारस, दिल्ली और गोरखपुर से जुड़े संस्मरणों को शामिल किया है। इस संस्मरण में विद्यानिवास मिश्र ने अपने जीवन को सम्पूर्णता से समेटने की कोशिश की है। बचपन का भोलापन, किशोरावस्था की उत्सुकता, जवानी का उल्लास, परिवार की जिम्मेदारी आदि का इन संस्मरणों में बोध कराया गया है। एक तरह से यह संस्मरण विद्यानिवास मिश्र के जीवन की यात्रा करा देता है। उनके जीवन के सुखद-दुखद अनुभवों के स्वाभाविक और यथार्थ रूप को यहाँ एक जिल्द में पिरोया गया है।

मनोहर श्याम जोशी ने दो संस्मरण लिखे हैं। पहला ‘लखनऊ मेरा लखनऊ (2002ई०)’ और दूसरा ‘रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण(2003ई०)’। लेखक ने पहले संस्मरण में लखनऊ शहर को आधार बनाया है। लखनऊ में रहते हुए अपने जीवन के विभिन्न पक्षों को उसने उजागर किया है। लखनऊ के साथ-साथ उन्होंने उन व्यक्तियों की भी चर्चा की है जो किसी न किसी रूप में उनके जीवन से जुड़े रहे। जिनसे यह प्रभावित हुए। ख़ास कर हिंदी साहित्य में रूचि और कथाकार बनने की प्रेरणा उन्हें अमृतलाल नागर ने मिली। इनके साथ यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, डॉ.देवराज, बलभद्र मिश्र, डॉ.एहतेशान हुसेन और सज्जाद जहीर का भी जिक्र किया गया है। मनोहर श्याम जोशी किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था के रंगीनियों को बहुत ही रोचकता से प्रस्तुत किये हैं। इनका दूसरा संस्मरण ‘रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण’ है। यह पुस्तक रघुवीर सहाय को केंद्र में रखकर लिखी गयी है। इसमें रचनाओं के माध्यम से रघुवीर सहाय के जीवन को समझाने की कोशिश की गयी है। लेखक इनकी रचनाओं का साक्षी रहा है। इसलिए रघुवीर सहाय की रचनाएं लेखक को ज्यादा प्रभावित करती हैं। इनका अंतरंग सम्बन्ध अच्छा था। मनोहर श्याम जोशी कहते हैं कि “मन में रघुवीर के इतने संस्मरण है कि मेरे लिए इस रचनावली का उलटना-पलटना भी रघुवीर सहाय की मार- तमाम यादों से होकर आर-बार गुजरना होगा। मैं इस रचनावली की समीक्षा नहीं कर सकता बस इसके बहाने उस रघुवीर को याद ही कर सकता हूँ जिससे मेरी लखनऊ में छात्र-जीवन के दौरान जान-पहचान हुई और जिससे दिल्ली में अपने आरम्भिक संघर्ष के दौरान मेरी गहरी दोस्ती हुई”[45]

‘नेह के नाते अनेक(2002ई०)’ कृष्णबिहारी मिश्र के संस्मरण हैं। इसमें आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, वाचस्पति पाठक, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन ‘अज्ञेय’, डॉ.प्रभाकर माचवे, ठाकुरप्रसाद सिंह, डॉ.धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह और कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह के संस्मरण हैं। स्मृत व्यक्ति को याद करते हुए कृष्ण बिहारी मिश्र सम्बन्धों की अंतरंगता, व्यक्तित्व और चारित्रिक

विशेषता के आधार पर शीर्षक देते हैं। ये शीर्षक ऐसे हैं जिनसे सम्बद्ध व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन का बहुत कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है। उन्होंने 'काशी के अन्तरंग रिश्ते को याद करते हुए', आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के जीवन को 'दुःख सबको मांजता है', आचार्य नंददुलारे वाजपेयी को 'बौद्धिक अभिजात्य की राजस मुद्रा', आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को 'लालित्य की अन्तरंग आभा', श्री वाचस्पति पाठक को 'सहृदयता की विरल रोशनी', श्री स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' को 'मौन का सर्जनशील सौन्दर्य', डॉ. प्रभाकर माचवे को 'अभिज्ञता का मुखर उल्लास', ठाकुरप्रसाद सिंह को 'सर्जक सद्भाव की सुधि', डॉ. धर्मवीर भारती को 'सव्यसाची' अंतत: हार गया', शिवप्रसाद सिंह को 'जो अस जरे सो कस नहीं महके', श्री कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह को 'आग्नेय धरातल की संवेदना' के रूप में देखा है। लेखक इन संस्मरणों को अतीत की स्मृति के रूप में ही नहीं देखता बल्कि 'म्लान पड़ रही जीवनप्रियता को रससिक्त कर पुनर्नवा' के रूप में मानता है।

डॉ.विवेकी राय ने दो संस्मरण ग्रन्थों की रचना की है। उनका पहला संस्मरण है- 'आँगन के वन्दनवार(2003ई०)' और दूसरा है- 'मेरे सुहृदय:मेरे श्रद्धेय(2005ई०)। आँगन में वन्दनवार में श्री कृष्ण राय 'हृदयेश', डॉ.भोलानाथ तिवारी, जगदीश ओझा 'सुन्दर', मुक्तेश्वर तिवारी, कथाकार 'निर्गुण', रामाधार त्रिपाठी 'जीवन', ठाकुर रामाधार सिंह, हास्य कवि दान बहादुर 'सूंड', भोलानाथ 'गहमरी', सरजू तिवारी, रामवृक्ष राय विधुर, कुलदीप नारायण 'झड़प', मुहम्मद इस्माइल अंसारी, विजय कुमार, श्रृगार दूबे, रामेश्वर प्रसाद सिंह, राधामोहन राय, गिरिराज शाह आदि के संस्मरण हैं। इस संस्मरण में अधिकतर ऐसे नाम है जिनका साहित्य जगत या राजनीति के जगत में अहम् स्थान नहीं है या बहुत बड़ा नाम नहीं है लेकिन लेखक के जीवन में इनका अहम् स्थान है।

कान्ति कुमार जैन ने संस्मरण लेखन में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है। इन्होंने कई संस्मरण लिखे हैं जिसमें- 'लौट कर आना नहीं होगा (2002ई०)', 'तुम्हारा परसाई (2004ई०)', 'बैकुंठपुर में बचपन(2010ई०)', 'जो कहुंगा सच कहूँगा(2006ई०)', 'महागुरू मुक्तिबोध जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर'। 'लौट कर आना नहीं होगा' में हरिवंशराय बच्चन, रामानुज लाल श्रीवास्तव, भवानीप्रसाद मिश्र, हरिशंकर परसाई, रजनीश, डॉ.रामप्रसाद त्रिपाठी, रमाशंकर शुक्ल रसाल, कृष्णचंदर, रामेश्वर शुक्ल अंचल', सुधा अमृतराय, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, सियारामशरण गुप्त, शानी, शरद जोशी, दुष्यंत कुमार और त्रिलोचन के संस्मरण हैं। इनके संस्मरणों के बारे में रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं, कान्ति कुमार के संस्मरण "पाठक के चित्त को अपनी सजग वक्र शैली के मोहक प्रभाव में बाध लेते हैं और फिर संस्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व की एक-एक पर्त को उसके मनोवैज्ञानिक रचाव की ओर संकेत करते हुए क्रम-क्रम से इस प्रकार से खोलते हैं कि अंत तक वह उसके सामने अपने सही रूप में आ जाता है। इसलिए श्री जैन के संस्मरणों के-व्यक्तित्व भेद से- अलग-अलग रंग हैं। सबको जोड़ने

वाली है उनकी निस्संग दृष्टि, जिसके समक्ष न कोई देवता है, न राक्षस।"[46] कान्ति कुमार जैन का अगला संस्मरण है 'तुम्हारा परसाई' जो 2004ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें परसाई जी के जीवन संघर्ष का जीवंत रूप उकेरा गया है। इस पुस्तक के अंत में परसाई जी के पत्रों को भी संकलित किया गया है। कान्ति कुमार जैन लिखते हैं- "हरिशंकर परसाई के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के शुभ पक्षों पर, अशुभ पक्षों पर, काले और सफ़ेद पक्षों पर वही लिखा है जो सत्य है और मेरा जाना हुआ है। यह साहित्य है या नहीं, पता नहीं। साहित्य के किस स्वीकृत विधा में इसकी गणना होगी- इसकी भी चिंता मैंने नहीं की है। इसमें जो कुछ लिखा है यदि वह सब सत्य है तो साहित्य की परिधि बढ़ानी पड़ेगी।"[47] कान्ति कुमार जैन कृत 'जो कहूँगा सच कहूँगा' का प्रकाशन 2006ई० में हुआ। इसमें नंददुलारे वाजपेयी, गजानन माधव मुक्तिबोध, राजनाथ पाण्डेय, जीवनलाल वर्मा 'विद्रोही', नामवर सिंह, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', श्यामाचरण दुबे पर संस्मरण हैं। 'बैकुंठपुर में बचपन' में स्मृतियों के माध्यम से जीवन के तमाम प्रसंगों को खंगालने की कोशिश की गयी है। इसके "केंद्र में व्यक्ति भर नहीं है। उसके बहाने समूचे समाज, परिवेश और संस्कारों को भी खंगाला गया है। इस प्रक्रिया में लेखक का नजरिया बेहद यथार्थवादी है। वह अपने साथ समाज के बभी अंतर्विरोधों पर अंगुली रखता है। वह मानता है कि सच्चा संस्मरणकार दुर्योधन नहीं, वेदव्यास होता है। इस अवधि में मिले पात्रों, संबंधियों, अंतरंगों को लेखक ने अपनी परिचित रसपूर्ण शैली में बेलाग अंदाज में प्रस्तुत किया है।"[48] 'महागुरू मुक्तिबोध जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर' में "मुक्तिबोध की अदम्य जिजीविषा, समकाल के प्रति उनकी जागरूकता, उनके प्राणलेवा संघर्ष, उनकी उद्दाम रचनाशीलता और असुरक्षा ग्रन्थि से मुक्ति के दुर्लभ प्रसंग भी इसमें अंकित हैं।"[49]

काशीनाथ सिंह कृत 'आछे दिन पाछे गए (2004ई०)', 'घर का जोगी जोगड़ा (2006ई०)' का संस्मरण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनके संस्मरण संस्मरणों की परम्परा को एक नई दिशा-दशा देते हैं। जब भी समकालीन संस्मरणों के कथ्य, स्वरूप, शैली में हो रहे बदलाव की बात की जाती है तो काशीनाथ सिंह के संस्मरणों की उत्कृष्टता को प्रथमांकित किया जाता है। काशीनाथ सिंह ने 'आछे दिन पाछे गए' में कई लोगों पर संस्मरण लिखें हैं, जिनके शीर्षक के आधार पर व्यक्ति विशेष का पता नहीं चलता है। यह शीर्षक- 'रहना नहीं देश बिराना', 'कलकत्ता में बांकेलाल', ',मुसाफिरखाना में चार दिन', 'कहानी की वर्णमाला और मैं', 'इक्कीसवीं सदी के देश का सफ़र', 'परिवेश स्मृति में', 'या तरुवर महँ एक पखेरू', 'तीसरे भाई की खोज में प्राणपियारे' हैं। 'रहना नहीं देश बिराना' आत्म-संस्मरणात्मक रूप में लिखा गया है। इसमें वे अपने जीवन से जुड़ी विभिन्न घटनाओं का जिक्र करते हैं उसके साथ बनारस की स्मृति को साझा करते हैं। 'कलकत्ता में बांके लाल' शीर्षक से

लेखक अपने अजीज दोस्त रामाधार के साथ बिताये तमाम सुखद पलों को याद करता है। रामाधार का महत्त्व जितना काशीनाथ सिंह के जीवन में था उससे कम उनके परिवार में नहीं। उनके लिए "रामाधार पर्व था मेरे घर का-माँ का भी, पत्नी का भी और बच्चे-बच्चियों का भी। हर सदस्य उसके आने का बेसब्री से इंतजार करता"[50] 'मुसाफिरखाना में चार दिन' में लेखन ने शोधार्थी महेश्वर शरण उपाध्याय और रमेश के साथ की बढ़ती घनिष्ठता का जिक्र किया है। इसके साथ दोनों की राजनितिक सक्रियता और उसके प्रति समर्पण की चर्चा करते हुए काशीनाथ सिंह उस दौरान अपनी राजनीतिक वैचारिकी को स्पष्ट करते हैं। 'कहानी की वर्णमाला और मैं' में अपने और अपने समकालीन कहानीकारों की चर्चा की गयी है। 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह के जीवन के तमाम पहलुओं को उकेरा गया है। इस संस्मरण में काशीनाथ सिंह ने नामवर सिंह के जीवन के एक तिहाई हिस्से को समेटा है। अपने बचपन के नामवर से लेकर आलोचक नामवर सिंह के जीवन के उतार-चढ़ाव, संघर्ष आदि को बड़ी तटस्थता से प्रस्तुत किया है। इन्होंने नामवर सिंह के तमाम अदृश्य पक्षों को प्रकाश में लाने की कोशिश की है जिससे उन्हें और बेहतर ढ़ंग से जानने-समझने में आसानी होती है।

अमरकांत की रचना 'कुछ यादें कुछ बातें' सन् 2005 ई० में प्रकाशित हुयी थी। इसमें रामविलास शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, प्रकाशचन्द्र गुप्त, फिराक, अमृत राय, रांगेय राघव, नामवर सिंह, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, डॉ.जगदीश गुप्त पर संस्मरण हैं। इसके साथ लेखक ने 'कहानी : स्वरूप और चुनौती', 'राजनैतिक परिवर्तन : साहित्य की चुनौतियाँ' तथा 'कफ़न: कैसा है हमारा समाज' जैसे विचारात्मक लेख लिखे गए हैं। प्रगतिशील आन्दोलन और नई कहानी आन्दोलन से जुड़े लेख भी यहाँ संकलित हैं। इसमें दो साक्षात्कार 'विशिष्ट में सामान्य की खोज ही रचना है' और 'लेखक की असली शक्ति जनता है' भी संकलित हैं। इसमें "प्रगतिशील आन्दोलन तथा नई कहानी आन्दोलन की वे घटनाएँ, बहसें और विवाद भी हैं, जिनसे कभी साहित्य जगत हिल गया था। अमरकान्त ने इन आन्दोलनों की विशेषताओं और उपलब्धियों के साथ, उनके अंतर्विरोधों तथा दुर्बलताओं का तर्क-सम्मत विश्लेषण प्रस्तुत किया है और परिवर्तित समय में कहानी तथा प्रगतिशील लेखन की नई भूमिका को भी रेखांकित किया है।"[51] इनका दूसरा संस्मरण 'दोस्ती' है जो 2008ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने पहला संस्मरण 'लेखक की दोस्ती' शीर्षक से लिखा है, जिसमें मार्कण्डेय, कमलेश्वर, भैरवप्रसाद गुप्त आदि के विशेष सन्दर्भ में नई कहानी आन्दोलन की चर्चा की गई है। इसके अलावा महादेवी वर्मा, नागार्जुन, रेणु, रवीन्द्र कालिया, उमा भारती, कमलेश्वर को याद किया गया है। 'मास्को में पहला दिन' और 'सोबियत संघ की यात्रा' शीर्षक से दो यात्रा संस्मरण भी यहाँ संकलित हैं।

ममता कालिया के संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार(2009ई०)' और 'कल परसों बरसों(2011ई०)' संकलन में संकलित हैं। 'कितने शहरों में कितनी बार' आत्मकथात्मक संस्मरण है जिसमें लेखिका ने अपने जीवन के अधिकतर हिस्से को साझा किया है। लेखिका बचपन से लेकर संस्मरण लिखने तक के अनुभवों को उसी रूप में रेखांकित करने की कोशिश की करती हैं। शहर-दर-शहर होती जिन्दगी, अनुभव और यादों की गठरी को ताउम्र समेटती हुयी, वे इंदौर, दिल्ली, मुम्बई, इलाहाबाद, कलकत्ता के तमाम अनुभव और स्मृतियों को इस संस्मरण में शब्दांकित करती हैं। लेखिका का दूसरा संस्मरण 'कल परसों बरसों' 2011ई० में प्रकाशित हुआ। यह संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' का संक्षिप्त रूप दिखाई देता है। 'कितने शहरों में कितनी बार' में लेखिका का 'आत्म' महत्त्वपूर्ण दिखाई देता है लेकिन 'कल परसों बरसों' में 'पर' केन्द्रीय हो जाता है। 'पर' की ओट में 'आत्म' उभरता है। 'कल परसों बरसों' में लेखिका ने जैनेद्र कुमार, अश्क, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, कौशल्या अश्क, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, श्रीलाल शुक्ल, कुर्रतुल-एन-हैदर, शैलेश मटियानी, शिवानी, अमरकांत, मार्कण्डेय, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, कन्हैयालाल नंदन, ज्ञानरंजन, सतीश जमाली, रवीन्द्र कालिया, गुलजार, चित्रामुद्गल, विष्णुकांत शास्त्री, सत्यप्रकाश मिश्र, वाजदा खान को याद किया है और इनके साथ अपने छोड़े-बड़े अनुभवों को साझा किया है।

कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत भाग-तीन (2012ई०)' उनके संस्मरणों की कड़ी में एक बेहतरीन संस्मरण है। इसमें उन्होंने 'सत्येन', 'जयदेव', 'निर्मल वर्मा', 'अशोक वाजपेयी', 'विभूतिनारायण राय', 'देवेन्द्र इस्सर', 'निर्मला जैन', 'गिरधर राठी', 'शम्भुनाथ', 'रवीन्द्र कालिया', 'आलोक मेहता', 'विष्णु खरे' को याद किया है। इस संस्मरण में लेखिका की बेवाकी और विश्लेषण बहुत स्पष्ट है। लेखिका ने अपने अनुभवों को उसी रूप में साझा किया है जैसा की वास्तविक जीवन में महसूस किया, जो उनके संस्मरण को विश्वसनीय बनाता है। इन्होंने सत्येन को याद करते हुए उनके घर बितायी एक शाम का जिक्र करती हैं जिसमें मंजूर एहतेशाम की भी शिरकत हैं। इस संस्मरण में लेखिका ने उस शाम के यादगार पलों को बहुत ही रोचक और संवाद के रूप में प्रस्तुत किया है। सत्येन के घर लेखिका का ठहरना और सिर्फ उस एक दिन की स्मृति यह परिलक्षित करती है कि दोनों के अन्तरंग संबंध पारिवारिक थे। जयदेव को याद करते हुए उनके साथ बिताएं शिमला की वादियों और चाय की चुस्कियों के माध्यम से लेखिका अपनी साहित्यिक अभिरूचि का परिचय देती हैं। एक चाय प्रेमी साहित्यकार के साथ चाय की चुस्कियों से साथ गाढ़ी होती दोस्ती की प्रगाढ़ता को वे रेखांकित करती हैं। निर्मल वर्मा और अशोक वाजपेयी के साथ अपने सहज और आत्मीय सम्बन्ध की चर्चा करती हैं तो वहीं रवीन्द्र कालिया के साथ वे अपने सम्बन्धों की खटास को भी बड़े बेवाक अंदाज में स्पष्ट करती हैं। विभूतिनारायण राय से वैचारिक असहमति रखते

हुए वे उनके द्वारा महिलाओं पर की गयी टिप्पणी का पुरजोर विरोध करती हैं। निर्मला जैन की आत्मकथात्मक पुस्तक 'शहर-दर-शहर' का विशलेषण करती हुयी वे उसके माध्यम से उनके व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश करती हैं।

काशीनाथ सिंह का 'याद हो कि न याद हो(2016ई०)' एक बेहतरीन और बहुचर्चित संस्मरण है। इसमें उन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह, त्रिलोचन, रविन्द्र कालिया आदि के व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हुए बनारस शहर के अस्सी चौराहें का सजीव चित्रण किया है। इसमें बनारस शहर के अस्सी चौराहे का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि अस्सी चौराहा, चौराहा न होकर कोई एक व्यक्तित्व के रूप में हमारे सामने उभरता है। काशीनाथ सिंह ने लेखकों और अस्सी चौराहे के माध्यम से अपने जीवन के जुड़े अनेक रोचक प्रसंगों का वर्णन किया है।

संस्मरण और उसकी विकास परम्परा को देखा जाय तो यह अपने को विधा के रूप में स्थापित ही नहीं करता बल्कि अपने स्वरूप को स्पष्ट करते हुए हिंदी साहित्य में एक अलग पहचान भी बनाता है। हिंदी गद्य विधाओं के विकास के साथ इसका बीज भारतेंदु काल में दिखाई देता है और थोड़े बेहतर रूप में द्विवेदी युग में भी परिलक्षित होता है लेकिन इसे विधागत पहचान पद्म सिंह शर्मा के संस्मरण 'पद्म पराग' से मिलती है। तत्पश्चात महादेवी वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि विस्तार पा करके यहाँ कथ्य स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित होता है। इसे विधागत पहचान दिलाने में समकालीन साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ सूची:-

1. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 415।
2. कथेतर, माधव हाड़ा, पृष्ठ 99।
3. आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण, विजय मोहन सिंह, पृष्ठ 699।
4. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 9-10।
5. आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का विकास और विश्लेषण, विजयमोहन सिंह, पृष्ठ 699।
6. गद्य की पहचान, अरुण प्रकाश, पृष्ठ 152।
7. हिंदी संस्मरण साहित्य, डॉ.कामेश्वर शरण, पृष्ठ 34।
8. हिंदी संस्मरण साहित्य, डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 34।
9. हिंदी संस्मरण साहित्य, डॉ.कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 33।
10. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी, पृष्ठ 416।
11. संस्मरण, बनारसीदास चतुर्वेदी, पृष्ठ 4।
12. गद्य की पहचान, अरुण प्रकाश, पृष्ठ 152।
13. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, अमरकांत, पृष्ठ 303।
14. हिंदी का संस्मरण साहित्य, कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 47।
15. पारिभाषिक शब्दावली, डॉ.रघुवीर, पृष्ठ 303।
16. गद्य की नई विधाएं, डॉ.माजदा असद, पृष्ठ 21।
17. स्मृतियों के साक्ष्य, हृदयेश, पृष्ठ viii।
18. गद्य की नई विधाएं, डॉ.माज़दा असद, पृष्ठ 22।
19. स्मृतियों के साक्ष्य, हृदयेश, पृष्ठ vii।
20. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 10।
21. हिंदी का संस्मरण साहित्य, कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 21।
22. हिंदी का संस्मरण साहित्य, कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 22।
23. हिंदी का संस्मरण साहित्य, कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 25।
24. गद्य की पहचान, अरुण प्रकाश, पृष्ठ 159।
25. हिंदी का संस्मरण साहित्य, कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 26-27।
26. हिंदी का संस्मरण साहित्य, कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 38।
27. हिंदी का संस्मरण साहित्य, कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 70।
28. हिंदी का संस्मरण साहित्य, कामेश्वर शरण सहाय, पृष्ठ 70।
29. हिंदी का गद्य-साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 417।
30. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 23।
31. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 35।
32. मंटो : मेरा दुश्मन, अश्क, पृष्ठ 10।
33. मंटो : मेरा दुश्मन, अश्क, पृष्ठ 13 ।
34. जंजीरें और दीवारें, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृष्ठ 55।
35. औरों के बहाने, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 8।

36. जिनके साथ जिया, अमृतलाल नागर, आमुख ।
37. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ.रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 420 ।
38. हम हशमत, कृष्णा सोबती, फ्लैफ़ ।
39. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 10 ।
40. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 429 ।
41. लौट आओ धार, दूधनाथ सिंह, भूमिका ।
42. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 425 ।
43. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 425 ।
44. वे देवता नहीं है, राजेंद्र यादव, पृष्ठ 7 ।
45. रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 6 ।
46. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी, पृष्ठ 428 ।
47. तुम्हारा परसाई, कांतिकुमार जैन, पृष्ठ 5 ।
48. बैकुंठपुर में बचपन, कान्तिकुमार जैन, फ्लैफ़ ।
49. महागुरू मुक्तिबोध : जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर, कांतिकुमार जैन, फ्लैफ़ ।
50. आछे दिन पाछे गये, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 34 ।
51. कुछ यादें कुछ बातें, अमरकांत, फ्लैफ़ ।

दूसरा अध्याय

समकालीन संस्मरण लेखन का वैविध्य

(i) प्रारम्भिक हिंदी संस्मरण लेखन : वैविध्य के आयाम

(पद्म सिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरणों के विशेष संदर्भ में)

(ii) समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन : वैविध्य के आयाम

(काशीनाथ सिंह, कान्तिकुमार जैन, राजेन्द्र यादव, ममता कालिया, रवींद्र कालिया, कृष्णा सोबती के संस्मरणों के विशेष संदर्भ में)

समकालीन संस्मरण लेखन का वैविध्य

गद्य की तमाम विधाओं की तरह संस्मरण विधा का भी विकास आधुनिक-युग में हुआ। आधुनिकता के आगमन ने साहित्य के पारंपरिक रूप को तोड़ा है। मध्यकाल में साहित्य का तात्पर्य कविता से हुआ करता था, उसमें भी संस्कृत साहित्य के पारंपरिक स्वरुप का ही आधिक्य था। मुक्तक रचनाएँ मुक्तकों में ही हो पाती थीं लेकिन आधुनिक युग में बदलते परिवेश ने जैसे–जैसे मनुष्य को प्रभावित किया, वैसे-वैसे साहित्य का स्वरूप भी बदलता गया। मनुष्य जीवन में आने वाले ये बदलाव वैश्विक थे। इसलिए साहित्य के स्वरुप में जो बदलाव परिलक्षित हुआ वह भी वैश्विक था। भारतेंदु-युग इस परिवर्तन का सबसे बड़ा समय है। हिंदी साहित्य में एक तरफ जहाँ कथात्मक गद्य विधाओं– उपन्यास, कहानी, नाटक, आदि का विकास हो रहा था, वही दूसरी तरफ पत्रकारिता और नए जीवन शैली से जन्मी कथेतर गद्य विधाओं का भी विकास हो रहा था। ये कथेतर गद्य विधाएं-रिपोर्ताज, संस्मरण, डायरी, यात्रा-वृत्तान्त, निबंध के रूप में सामने आ रही थीं। कालान्तर में इन कथेतर विधाओं ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया और साहित्य में अपना प्रमुख स्थान बनाया।

साहित्य में जब भी किसी नयी विधा का विकास होता है तब वह पूर्व प्रचलित विधाओं से किसी-न-किसी रूप में भिन्न होती है। पहले से प्रचलित विधाएँ जब नाकाफ़ी होती हैं तब नयी विधा का विकास होता है। प्रत्येक विधा अपने विकास के साथ विविधताओं को समेटते हुए आगे बढ़ती है। उसकी विविधता उसे समृद्ध करती हुई विकासपथ पर अग्रसर करती है। हिंदी साहित्य में सिर्फ संस्मरण विधा ही नहीं बल्कि कथा साहित्य और कथेतर सभी विधाएं अपनी विकास यात्रा में नये कथ्य, स्वरूप, शैली, भाषा आदि के नित-नये प्रयोगों के साथ आगे बढ़ती रहती है। वह अपने प्रारंभिक और पारम्परिक रूपों के साथ कुछ पुराने मूल्यों को छोड़ती हुई, नये मूल्यों, प्रयोगों, मान्यताओं आदि को समेटती हुई आगे बढ़ती हैं। हिंदी संस्मरण भी इसी को अपनाता हुआ आज भी विकासशील है। वर्तमान युग के संस्मरणकारों ने संस्मरण लेखन में पारंपरिक रूप को तो स्वीकार किया है लेकिन उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन भी करते चले हैं। वह संस्मरण लेखन की परंपरा का न तो पूरी तरह स्वीकार है और न ही उसका नकार किया है। संस्मरण साहित्य प्रारम्भिक संस्मरणों से कुछ लेते हुए और कुछ छोड़ते हुए तथा कुछ जोड़ते हुए चलता है। हिंदी संस्मरण अपने प्रारम्भिक रूप में जैसा था उसका उत्तरकालीन स्वरुप बदलता है। वह कई नये प्रयोग करता है। इसका यही प्रयोग संस्मरण को वैविध्यपूर्ण बनाता है जो विधा की दृष्टि से सकारात्मक है। यही कारण है कि हिंदी संस्मरण की विकासशीलता आज भी बरकरार है।

इस अध्याय में हिंदी संस्मरण लेखन के लगभग सौ वर्ष के इतिहास में प्रमुख संस्मरणकारों के संस्मरणों की विशेषताओं को उद्घाटित किया जायेगा। यहाँ उसके स्वरुप

और स्वभाव में आये गुणात्मक परिवर्तन को समझने का प्रयास किया गया है। आरम्भिक हिंदी संस्मरण लेखन में मुख्यतः पद्म सिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर आदि के संस्मरणों के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि संस्मरण अपने आरम्भिक रूप में कैसे लिखा जा रहा था, उसके केंद्र में कौन लोग थे, उसकी भाषा-शैली कैसी थी, लिखे जाने का उद्देश्य क्या था, उसके समक्ष किस प्रकार की चुनौतियाँ थी। आरम्भिक हिंदी संस्मरण के इन बिन्दुओं के आधार पर समकालीन हिंदी संस्मरण की विशेषताओं, विविधताओं और चुनौतियों को दर्शाया गया है।

इस अध्याय में एक उप-अध्याय 'समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन : वैविध्य के बिंदु' भी है। इसके अंतर्गत समकालीन हिंदी संस्मरण की एक रूप-रेखा प्रस्तुत की गयी है। यह विभाजन सिर्फ संस्मरण की विकास परम्परा में उसकी विविधताओं को समझने के लिए किया गया है। किसी भी साहित्य या समाज में कोई बदलाव अचानक नहीं होता, बल्कि उस बदलाव के साथ उसकी पीछे की पृष्ठभूमि बहुत मायने रखती है; इसलिए विधा को विभाजित कर उसे छोटे दायरे में प्रस्तुत करना समीचीन नहीं लगता है।

आरम्भिक हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरण विधा की शुरुआत पर बात की गयी है। इसमें यह बताने की कोशिश की गयी है कि प्रारम्भिक हिंदी संस्मरण लेखन का स्वरुप कैसा था! उसके विषय और कथ्य कैसे थे ! इन प्रश्नों को समझने के लिए पद्मसिंह शर्मा की पुस्तक 'पद्म पराग' को आधार बनाया गया है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में यह देखने की कोशिश की गयी है कि यह अपनी विकासशीलता के साथ पूर्ववर्ती संस्मरणों से कितना अलग प्रयोग करता है। इसका विषयगत वैविध्य क्या है? समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन की विविधता को समझने के लिए काशीनाथ सिंह, कृष्णा सोबती, रवीन्द्र कालिया, राजेन्द्र यादव, ममता कालिया, मनोहर श्याम जोशी आदि के संस्मरणों को आधार बनाया गया है। इन्हीं संस्मरणों के माध्यम से समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में हो रहे वैविध्यपूर्ण प्रयोग को समझने की कोशिश की गयी है।

प्रारंभिक हिंदी संस्मरण लेखन: वैविध्य के आयाम

संस्मरण साहित्य का विकास आधुनिक-युग में हुआ। आलोचकों ने पद्म सिंह शर्मा के संस्मरण 'पद्म पराग' से इसका आरम्भ माना है, 'पद्म पराग' का प्रकाशन सन् 1929 ई० में हुआ था। यह संस्मरण साहित्य के इतिहास की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही- आरंभिक संस्मरण साहित्य को समझने, उसकी विशेषताओं को उद्घाटित करने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इस संग्रह से संस्मरण के शिल्प पक्ष और उसके उद्देश्य को समझने की एक दृष्टि मिलती है। यह पुस्तक साथ ही गद्य की अन्य विधाओं से उसके साम्य और वैषम्य को भी रेखांकित करने में सहायक है! पद्म सिंह शर्मा का 'पद्म पराग' संस्मरण लेखन की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु है। यही कारण है कि 'पद्म पराग' को हिंदी का प्रथम संस्मरण ग्रन्थ माना जाता है। हालाँकि पद्म सिंह शर्मा से पहले भारतेंदु युग में भी कुछ संस्मरण से मिलती–जुलती रचनाएं लिखी गयीं लेकिन उनमें अन्य गद्य विधाओं के तत्त्वों की प्रधानता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कुछ आप बीती कुछ जगबीती' में अपने जीवनानुभवों के साथ-ही-साथ कुछ सामाजिक समस्याओं का वर्णन किया है। भारतेंदु मंडल के बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने भी कुछ संस्मरणनुमा आलेख लिखे हैं, जिसमें संस्मरण के कुछ तत्त्व देखे जा सकते हैं लेकिन संस्मरण का व्यवस्थित रूप पहले पहल 'पद्म पराग' में दिखाई देता है, इसी रचना से संस्मरण को एक विधा की पहचान मिलनी शुरू होती है।

'पद्म पराग' हिंदी संस्मरण साहित्य का प्रारंभिक ग्रन्थ है इसलिए संस्मरण की कुछ विशेषताओं को इसके माध्यम से यहाँ उद्घाटित किया जाना अपेक्षित है। पद्म सिंह शर्मा जिस समय में थे वह समय राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से बहुत उथल-पुथल भरा था। एक तरफ़ स्वतंत्रता संग्राम अपने उत्कर्ष पर था तो दूसरी तरफ़ समाज में बहुत से परिवर्तन हो रहे थे। सामाजिक-धार्मिक बंधन, रूढ़ियाँ, कुप्रथाएँ टूट रही थीं। एक उच्च आदर्शमूलक देश और समाज की निर्मिति स्वाधीनता सेनानियों और समाज सुधारकों का लक्ष्य था।

हिंदी भाषा और साहित्य की दृष्टि से भी यह समय अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान हिंदी (हिन्दुस्तानी) व्यापक स्तर पर संपर्क भाषा बन गयी थी। हिंदी के राष्ट्रभाषा स्वरुप का निर्माण इसी दौरान हुआ। महात्मा गाँधी समेत अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी को अपनाया और उसके प्रचार-प्रसार में भूमिका निभाई। यही वह समय था जब गद्य के लिए खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग हो रहा था और पद्य में ब्रज या क्षेत्रीय बोलियों का। द्विवेदी युग और छायावादी साहित्यकारों ने खड़ी बोली हिंदी के आधुनिक स्वरूप का निर्माण किया और गद्य-पद्य की भाषा को एकरूपता देने का प्रयास किया।

'पद्म पराग' ऐसे समय में लिखा जा रहा था जब हिंदी साहित्य में निबंध और कथासाहित्य लेखन का बोलबाला था। कथेतर गद्य विधाएँ, यात्रा-संस्मरण, डायरी, रिपोर्ताज, संस्मरण इत्यादि- हाशिये पर थीं। ऐसे साहित्यिक परिवेश में एक नयी परम्परा का आरम्भ करना, कहीं न कहीं लेखक के मन में डर तो पैदा करता ही है कि अगर प्रयोग सफ़ल नहीं हुआ तो साहित्यालोचकों द्वारा जो मलामत होगी, उसे स्वीकार कर पाना सहज न होगा। यह भय पद्म सिंह शर्मा के मन में भी था। पद्म सिंह शर्मा ने 'पद्म पराग' में स्वामी दयानंद सरस्वती, पंडित गणपति शर्मा, श्री हृषिकेश भट्टाचार्य शास्त्री, स्वामी श्रद्धानंद जी, पंडित भीमसेन शर्मा, पंडित श्री सत्यनारायण कविरत्न, कविरत्न पंडित श्री नवनीतलाल चतुर्वेदी, खलीफ़ा मामू-रशीद, दिव्य प्रेमी मंसूर, अमीर ख़ुसरो, सरमद शहीद, मौलाना आज़ाद, और महाकवि अक़बर इत्यादि को याद किया है।

'पद्म पराग' में तीन प्रकार के संस्मरण देखने को मिलते हैं। पहले प्रकार के संस्मरण उन व्यक्तियों पर हैं जिनसे लेखक की घनिष्ठता रही है, मिलना-जुलना रहा है, पत्राचार आदि रहा है। इन लोगों के साथ उनके सम्बन्ध लंबे समय तक रहे हैं और उनके जीवन से करीब का राबता रहा है। दूसरे प्रकार के संस्मरण ऐसे लोगों पर लिखे गए हैं, जिनसे उनकी यदा-कदा मुलाक़ात हो जाती रही है। मुलाक़ात हुई या न हुई हो लेकिन अन्य स्रोत से प्राप्त जानकारी के आधार पर भी संस्मरण लिखे गए हैं। हालाँकि ऐसे संस्मरण बहुत कम हैं। यह एक प्रकार से नया प्रयोग भी कहा जा सकता है। 'पद्म पराग' में देखा जाय तो इस तरह के लिखे गये संस्मरणों की संख्या बहुत कम है। लेखक द्वारा लिखे गये अन्य संस्मरणों की उत्कृष्टता को देखते हुए तथा संस्मरण के उभरते स्वरूप को ध्यान में रखते हुए, ऐसे संस्मरणों को अपवाद रूप में माना जा सकता है।

तीसरे प्रकार के ऐसे संस्मरण हैं, जो उन व्यक्तियों पर लिखे गए हैं, जिनसे संस्मरणकार किसी न किसी रूप में प्रभावित रहा है। चाहे वे राजनेता हों, सामाजिक कार्यकर्त्ता, समाज सुधारक या प्रसिद्ध साहित्यकार। ऐसे व्यक्तियों के सामाजिक कार्यों, उच्च आदर्शों और साहित्य से संस्मरणकार किसी न किसी रूप में प्रभावित रहा हो और इसी कारण उनका अनुयायी बन गया हो। लेखक ने इस तरह के स्मृत व्यक्तियों के जीवन दर्शन को आत्मसात करने की कोशिश की है। दयानंद सरस्वती पर लिखा गया संस्मरण ऐसा ही संस्मरण है। दयानन्द सरस्वती से पद्म सिंह शर्मा की मुलाकात तो नहीं थी, लेकिन उनके अनुयायी होने के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व और विचार की आत्मीयता संस्मरणकार की स्मृति में कौंधती रहती थी। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की उत्कृष्टता का कारण उसका विचार होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दयानंद सरस्वती का व्यक्तित्व प्रभावी था। समाज में अपनी जगह बनाने के लिए विचार मायने रखता है। विचार ही अच्छे और प्रभावशाली व्यक्तित्व का निर्माण करता है। यहाँ लेखक स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारों से काफी

प्रभावित है। विचारों का प्रभाव और व्यक्तित्त्व की आत्मीयता लेखक को स्मृत व्यक्ति से भावात्मक रूप से जोड़ती है।

पद्म सिंह शर्मा ने अपने संस्मरणों में जो प्रयोग किया है वह समकालीन हिंदी संस्मरण में भी देखने को मिलता हैं। 'पद्म पराग' में अमीर ख़ुसरो और दयानंद सरस्वती पर लिखे संस्मरण ऐसे ही हैं। इन व्यक्तियों से उनकी मुलाक़ात नहीं थी लेकिन उनके साहित्य के माध्यम से उनके व्यक्तित्त्व और आदर्शों को संस्मरणकार ने बखूबी उकेरा है। उनकी सामाजिक चिंताओं तथा सामाजिक सुधारों पर संस्मरणकार ने विस्तार से प्रकाश डाला है। समकालीन संस्मरणों में राजेन्द्र यादव ने 'चेख़व एक इन्टरव्यू' इसी पद्धति पर लिखा है। राजेन्द्र यादव की चेख़व से मुलाकात नहीं हुई लेकिन उनके साहित्य के माध्यम से अपने प्रश्नों और जिज्ञासाओं के उत्तर को उन्होंने ढूँढने की कोशिश की है।

पद्म सिंह शर्मा के संस्मरणों में लेखक और प्रकाशक के बीच आने वाली कुछ कठिनाइयों की भी चर्चा है, जिससे लेखक को जूझना पड़ता था। वह हिंदी जगत् में प्रकाशकों की मनमानी को लेकर काफी क्षुब्ध है। पारसनाथ सिंह के निर्देशन में 'पद्म पराग' का प्रकाशन हुआ। पारसनाथ सिंह के ईमानदार और सहयोगी भाव से पद्म सिंह शर्मा प्रसन्न थे तो वहीं अन्य प्रकाशकों के साथ अपने कटु अनुभव से खिन्न भी हैं। पद्म सिंह शर्मा संपादकों और प्रकाशकों की व्यवसायी बुद्धि और प्रकाशकीय गरिमा की क्षय से क्षुब्ध भी हैं। उन्होंने 'पद्म पराग' की भूमिका में प्रकाशकों की मनमानी और उभर रही व्यवसायी प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। हिंदी साहित्य में यह समस्या बहुत विकट होती जा रही थी। इससे न केवल उत्कृष्ट हिंदी साहित्य की, बल्कि अच्छे साहित्यकारों की पुस्तकें छपने और उनके मूल्यांकन में दिक्क़त आ रही थी। जो साहित्यकार अच्छा लिख रहें थे लेकिन उनकी पहुंच या आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, उनकी उत्कृष्ट रचनाओं को प्रकाशकों द्वारा वह स्थान नहीं मिल पाता था, जो मिलना चहिए। इसका सामना पद्म सिंह शर्मा को भी करना पड़ा था। उन्होंने अपनी आपबीती को 'पद्म पराग' की भूमिका में लिखा है- "प्रेसों के अलझेडे का जो अनुभव अबतक मुझे हुआ था और चतुर व्यवसायी पुस्तक-प्रकाशकों का जो व्यवहार देखा सुना था, उससे इस नए बखेड़े में पड़ने की हिम्मत न होती थी।"[1]

पद्म सिंह शर्मा के अधिकतर संस्मरण श्रद्धांजलिपरक हैं। अपने श्रद्धेय को याद करते हुए उनके व्यक्तित्व से जुड़े अनेक प्रसंगों का वे उद्घाटन करते हैं। पद्म सिंह शर्मा के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व, दोनों पर आर्य समाज का प्रभाव है। दयानंद सरस्वती को याद करते हुए पद्म सिंह शर्मा आर्यसमाज की महत्ता को बताते हैं। पद्म सिंह शर्मा के संस्मरण को पढ़कर लगता है कि उनका झुकाव आर्यसमाज की तरफ है, इसी कारण वे अपने संस्मरण में अन्य आर्य समाजियों का जिक्र बड़ी श्रद्धा से करते हैं।

पद्म सिंह शर्मा की भाषा उनके संस्मरण लेखन की विषयवस्तु के बिल्कुल अनुकूल है। जैसा व्यक्तित्त्व वैसी भाषा। वे जब महर्षि दयानंद सरस्वती पर लिखते हैं, या ऐसे किसी व्यक्ति पर, जिसकी पहचान प्राचीन भारतीय साहित्य ज्ञान परम्परा से जुड़ी हुई है, तो संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग करते हैं। वहीं, जब वे अमीर ख़ुसरो पर लिख रहे होते हैं तो उर्दू समेंत अरबी – फ़ारसी के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं। पद्म सिंह शर्मा की भाषा अपने समय की विकसित खड़ी बोली हिंदी है।

बनारसीदास चतुर्वेदी

पद्म सिंह शर्मा के पश्चात् आरंभिक हिंदी संस्मरणकारों में बनारसीदास चतुर्वेदी का स्थान उल्लेखनीय है। भारतेंदु-युग और द्विवेदी-युग में, जिस प्रकार के संस्मरण साहित्य की रचना हुई, उस को आधार बनाकर बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिंदी में संस्मरण लेखन की परम्परा को और अधिक मज़बूत आधार प्रदान किया। इसी का प्रतिफल है उनकी कृति 'संस्मरण'(1952ई.)। हिंदी संस्मरण लेखन में यह रचना एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव मानी जाती है। यह कृति अपने भीतर न सिर्फ़ हिंदी के महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को समेंटे हुए है, बल्कि तत्कालीन साहित्यकारों, संपादकों, स्वतंत्रता सेनानियों को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था, उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी इन लोगों ने कैसे अपने साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक दायित्व का निर्वहन किया, इससे भी हमारा परिचय कराती है। स्वतंत्रता आन्दोलन, हिंदी के प्रचार-प्रसार और उसके स्वरूप निर्धारण में हिंदी के साहित्यकारों–पत्रकारों और कुछ नेताओं की महती भूमिका को भी अपने संस्मरणों के माध्यम से बनारसीदास चतुर्वेदी ने दर्शाने का सफल प्रयास किया है। उनके संस्मरणों में केवल हिंदी के साहित्यकार नहीं हैं बल्कि स्वतंत्रता सेनानी, राजनेता और समाज सुधारक भी हैं। उनके संघर्षों को बनारसीदास चतुर्वेदी बहुत संवेदनशीलता के साथ स्मरण किया है। पद्म सिंह शर्मा की भांति बनारसीदास चतुर्वेदी ने स्मृत व्यक्तियों के सकारात्मक व्यक्तित्त्व को ही अपने संस्मरणों में उकेरा है। ताकि समाज में सद्प्रेरणा का प्रचार-प्रसार हो। बनारसीदास चतुर्वेदी के संस्मरण साहित्य में विविधता है। यह विविधता विषयवस्तु की ही नहीं बल्कि व्यक्तित्व की भी है। एक तरफ जहाँ उन्होंने हिंदी साहित्य के साहित्यकरों जैसे- श्रीधर पाठक, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद आदि पर लिखा, तो वही दूसरी तरफ राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं जैसे- पीर मुहम्मद मुनिस, शील जी, आज़ाद की माता जी को याद किया है !

बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'संस्मरण' में संस्मरण तो लिखा ही है, इसके साथ ही संस्मरण साहित्य के सैद्धांतिक पक्ष पर भी विचार प्रकट किया है। यानी, उन्होंने

हिंदी में संस्मरण साहित्य की सैद्धांतिकी निर्मित करने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि संस्मरण लेखन के लिए स्मृत व्यक्ति से मुलाक़ात और परिचय आवश्यक है। व्यक्तिगत संपर्क को वह संस्मरण साहित्य का प्राण मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने जिन भी व्यक्तियों का अपने संस्मरण में स्मरण किया है, उनसे उनके न सिर्फ़ व्यक्तिगत संपर्क थे बल्कि मुलाकातों के माध्यम से पनपे आत्मीय सम्बन्ध भी थे।

बनारसीदास चतुर्वेदी ने अधिकतर संस्मरण लोगों की मृत्यु के पश्चात् लिखा है। यही कारण है कि वे अपने से पूर्व चली आ रही संस्मरण लेखन की 'स्तुतिगान' या यशगान अथवा श्रद्धाभाव परम्परा का ही निर्वहन किया है। उन्होंने स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का सकारात्मक पक्ष ही उजागर किया है।

अपने संस्मरण में बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक यात्रा-संस्मरण को भी सम्मिलित किया है – 'मेरी तीर्थ यात्रा'। एक सम्मलेन के सिलसिले में बनारसीदास चतुर्वेदी लखनऊ की यात्रा की थी। यह यात्रा सिर्फ स्थान से स्थान की नहीं बल्कि व्यक्ति से व्यक्ति की यात्रा है। लेखक को लखनऊ में हो रहे लिबरल-फेडरेशन के कार्यक्रम में जाना था। लेखक पहले द्विवेदी जी, फिर शंकर और अंत में राधाचरण गोस्वामी के यहाँ जाता है। इसी यात्रा में इन तीनों लेखकों से हुई मुलाकात और बातचीत को आधार बनाकर यह संस्मरण लिखा गया है। स्मृत व्यक्तियों पर लिखे इस संस्मरण को पढ़ कर ऐसा लगता है कि इनसे हुई बातचीत और कुछ जानकारियों को इकट्ठा करके, यह संस्मरण तैयार किया गया है। इस संस्मरण में कहीं-कहीं यह भी देखने को मिलता है कि स्मृत व्यक्तियों द्वारा अपने बारे में कही गई बातों को हू-ब-हू उठाकर रख दिया गया है।

बनारसीदास चतुर्वेदी के संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्त्व बहुत करीने से उभर कर सामने आता है। इसका कारण है बनारसीदास चतुर्वेदी का व्यक्ति चरित्र अध्ययन की वृत्ति। वे स्मृत व्यक्ति की छोटी से छोटी बात को अपने संस्मरणों में दर्ज़ करना नहीं भूलते। व्यक्ति चरित्र का अध्ययन उनका शौक है। यही कारण है कि स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्त्व की इतनी सूचनाएँ वह सामने रख देते हैं कि आश्चर्य होता है !

अपने संस्मरणों के माध्यम से बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक संपादक के समक्ष आने वाली कठिनाइयों का भी जगह-जगह वर्णन किया है। वे 'अभ्युदय' और बाद में 'विशाल भारत' जैसे पत्रों से जुड़े थे। संपादकों की कठिनाइयों का तो उन्होंने वर्णन किया ही है, आर्थिक तंगी से जूझ रहे प्रकाशकों और पत्र-पत्रिका के मालिकों की ख़स्ताहाल को भी बयान किया है। यह समय हिंदी पत्रकारिता के संघर्ष का काल था। उसकी कठिनाइयों को इनके संस्मरणों में जगह-जगह देखा जा सकता है। बनरसीदास चतुर्वेदी पर गणेश शंकर विद्यार्थी का गहरा प्रभाव था। उनसे उनका पत्राचार भी होता था। उनपर लिखे संस्मरण में वे पत्रकारिता और विद्यार्थी जी के पत्रकार व्यक्तित्त्व को उजागर करते हुए लिखते हैं- "देश में

बहुत से पत्रकार हुए हैं, और भी होंगें। लीडर भी बहुत से हैं, शायद जरूरत से ज्यादा। कई से अपना परिचय भी है, कुछ की कृपा भी, पर गणेश जी जैसा पत्रकार का सखा, उनके संकट का सहारा, दूसरा नहीं मिला। इस जीवन में मिलने की आशा भी नहीं।"[2] वह जिस व्यक्ति से प्रभावित होते उसके कार्यों और व्यक्तित्त्व की खुलकर प्रशंसा करते। जैसा कि उन्होंने विद्यार्थी जी का अपने संस्मरण में किया है।

बनारसीदास चतुर्वेदी और प्रेमचंद समकालीन थे। ऐसे में मुंशी प्रेमचंद से उनका लगाव और जुड़ाव स्वाभाविक था। प्रेमचन्द के निधन के बाद बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनपर एक संस्मरण लिखा। यह संस्मरण मूलतः श्रद्धांजलिपरक ही है लेकिन वे प्रेमचंद के जीवन और व्यवसाय से जुड़े कुछ ऐसे बिन्दुओं को रेखांकित करते हैं, जिससे तत्कालीन लेखकों और प्रकाशकों के जीवन संघर्ष को समझने में मदद मिलती है। बनारसीदास चतुर्वेदी और प्रेमचंद की बहुत कम मुलाकात रही है लेकिन वह उनके लेखन से प्रभावित रहे हैं। लेखक से प्रेमचंद की जब पहली मुलाक़ात हुई, तब उन्होंने अपने बाल्यावस्था से लेकर उस समय तक के, अनेक प्रसंग सुनाये थे। उन प्रसंगों को लेखक ने अपने संस्मरण में रेखांकित किया है। प्रेमचन्द के स्वाभिमान और आर्थिक संकट के सम्बन्ध में चतुर्वेदी जी ने बताया है कि एक बार प्रेमचन्द को शान्तिनिकेतन जाना था। वह नहीं जा सके। कारण पूछने पर बताया कि "अपनी धर्मपत्नी और बच्चों को छोड़कर अकेले कविवर के दर्शनार्थ नहीं जाना चाहते थे, इतना पैसा उनके पास था नहीं कि सबकी यात्रा का प्रबंध कर सकते। हिंदी में श्रेष्ठ कलाकार की इस आर्थिक परिस्थिति को सुनकर मुझे हार्दिक दुःख हुआ था।....प्रेमचन्द जी की अपनी पुस्तकों से जो आमदनी होती है, उसका एक अच्छा भाग 'हंस' और 'जागरण' के घाटे में चला जाता था।"[3]

इस संस्मरण में स्मृत व्यक्तियों के साथ संस्मरणकार का जीवन भी उभरकर सामने आता है। बनारसीदास चतुर्वेदी एक सम्पादक थे। अपने सम्पादकीय जीवन में उन्होंने अनेक समस्याओं का सामना किया था। बनारसीदास चतुर्वेदी पहले 'अभ्युदय' से जुड़े थे, बाद में 'विशाल भारत' से जुड़ गये। 'विशाल भारत' में काम करते हुए रामानंद चट्टोपाध्याय ने उन्हें उसका सम्पादक बना दिया। पहले 'विशाल भारत' के संपादक रामानंद चट्टोपाध्याय थे। बनारसीदास चतुर्वेदी ने विशाल भारत में रहते हुए पत्रकारिता के संघर्ष को नजदीक से देखा है। वे कहते हैं कि एक समय ऐसा आया जब 'विशाल भारत' काफी घाटे में चल रहा था। स्थिति इतनी ख़राब हो गयी थी कि कई बार पत्र बंद होने से बचा था। लेखक ने उसे दिन-रात की मेहनत से उबारने की कोशिश की। उस समय पत्रकार का जीवन आज के पत्रकारों के जीवन से भिन्न था, और न ही आज जैसी पत्रकारिता थी। उनके इस कथन से पत्रकारों की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है- "हिंदी-पत्रकारों का जीवन कितना संकटमय होता है, यह भुक्तभोगी ही जानते हैं। ऐसे संकट के समय वह किसी-न-किसी का सहारा ढूढ़ता है,

पर हिंदी सम्पादकों में कितने ऐसे है जो सहानुभूतिपूर्ण उत्तर भी दे सके, आर्थिक सहायता देना या दिलाना तो दूर की बात है, और दर असल आर्थिक सहायता तो एक गौण चीज़ है सहानुभूति के भूखे कष्ट पीड़ित पत्रकार को appreciation या दाद की जितनी जरुरत है उतनी किसी दूसरी चीज़ की नहीं। वह अपने कष्टों को संतोषपूर्वक सहन कर सकता है।"[4] बनारसीदास चतुर्वेदी के संस्मरण हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता के आरम्भिक दौर के संघर्ष जानने-समझने की दृष्टि से आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराते हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी का संस्मरण साहित्य हिंदी साहित्यकारों के उन पक्षों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है जो कहीं और पढ़ने-सुनने को नहीं मिलता। उनके संस्मरणों में आत्मीयता और संवेदनशीलता व्यापक रूप में दिखती है।

बनारसीदास चतुर्वेदी कृत 'संस्मरण' में अधिकता श्रद्धांजलिपरक संस्मरणों की है तथा शैली पत्रात्मक है। अपने संस्मरण में इन्होंने जीवन से जुड़े उन सभी व्यक्तियों को शामिल किया है जिनके संघर्षों से किसी-न-किसी तरह प्रभावित रहें हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी ने संस्मरण के साथ-साथ स्मृत व्यक्तियों के साथ हुए पत्र व्यवहारों को आवश्यकतानुसार उद्धृत भी किया है। अपने समकालीन लगभग सभी महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों और पत्रकारों से उनका पत्राचार था। आत्मीयता थी। इन पत्रों पर और उनके साहित्यिक, राजनितिक और सामाजिक मुद्दों पर खुले विचार-विमर्श होते थे। जैसे श्रीधर पाठक के कई पत्र ऐसे हैं जो उन्होंने पश्चिम के विद्वानों को लिखा था। इसमें व्यक्ति चरित्र के साथ-साथ तत्कालीन समय-समाज के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित किया गया है। औपनिवेशिक भारतीय समाज का चरित्र और उस समय के आन्दोलनों- चंपारण आन्दोलन, दक्षिण अफ्रीका में रंग भेद के खिलाफ आन्दोलन, पत्रकारिता और संपादकों का संघर्ष, लेखकों का सरकार या उसकी नीतियों के खिलाफ लिखने-बोलने पर प्रतिबन्ध और उस समय की तमाम घटनाओं की तरफ इसमें इशारा किया गया है। औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ लिखने-बोलने की आज़ादी नहीं थी। उस समय तमाम लेखकों और पत्रकारों ने ब्रिटिश सत्ता के सामने घुटने नहीं टेके। उन्होंने स्वाभिमान से समझौता नहीं किया। बाबू बालमुकुन्द के साहसी, स्वाभिमानी और निर्भीक व्यक्तित्व की बनारसीदास चतुर्वेदी सराहना करते हैं। देश भले गुलाम था, लेकिन कुछ विद्वानों और क्रांतिकारियों ने मानसिक गुलामी को स्वीकार नहीं किया, जिसमें बाबू बालमुकुंद का नाम उल्लेखनीय है। बनारसीदास चतुर्वेदी कहते हैं कि मेंरे संसर्ग में ऐसे कुछ लेखक हैं जिन्होंने मानसिक पराधीनता को अस्वीकार कर अपने स्वाभिमान की रक्षा की; जिनमें बालमुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, गणेश शंकर विद्यार्थी और महावीरप्रसाद द्विवेदी का नाम गर्व से लिया जा सकता है। बनारसीदास चतुर्वेदी उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व को चित्रित करते हुए लिखते हैं- "बाबू बालमुकुन्द गुप्त को इस आधार पर नौकरी से अलग किया जाना कि वे हिन्दुस्तान में

‘गवर्मेंट के विरुद्ध’ कड़े लेख लिखते है, बालकृष्ण भट्ट को अपने गरम विचार से नौकरी से छुटकारा, महावीरप्रसाद द्विवेदी डेढ़ सौ रूपये की सर्विस छोड़कर बीस रूपये महीने पर ‘सरस्वती’ का संपादन और गणेशशंकर विद्यार्थी का बलिदान इत्यादि घटनाएँ हिंदी पत्रकार-कला के इतिहास”[5] में याद रखा जायेगा।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का संस्मरण ‘पथ के साथी’ (1956ई.) में प्रकाशित हुआ था। छायावाद की महत्त्वपूर्ण कवयित्री ने संस्मरण में अपने साथियों को जिस आत्मीयता और आदर से याद किया है, वह अनुकरणीय है। महादेवी वर्मा ने संस्मरण जैसी नीरस विधा को सरसता प्रदान की है। छायावादी रहस्यवाद को समझने–समझाने, छायावादी कवियों की रचना-प्रक्रिया को जानने के महत्त्वपूर्ण सूत्र उनके संस्मरणों में अनुस्यूत हैं।

महादेवी वर्मा साहित्य-सृष्टि की प्रक्रिया और परिवेश को लेखक के व्यक्तित्त्व से जोड़कर या उसके परिवेश से जोड़कर देखने की पक्षधर नहीं हैं। उनकी नज़रों में दोनों के मूल्यांकन की कसौटी भिन्न है। परिवेश भिन्न है। उनका मानना है कि साहित्य-सृष्टि का मूल्यांकन अतीत-भविष्य के अनेक युगों तक हो सकता है लेकिन व्यक्ति के जीवन की कसौटी का “अपना युग ही रहेगा। यह कसौटी जितनी अकेली है, उतनी निर्धान्त नहीं। देश-काल की सीमा में आबद्ध जीवन न इतना असंग होता है कि अपने परिवेश और परिवेशियों से उसका कोई संघर्ष न हो और न यह संघर्ष इतना तरल होता है कि उसके आघातों के चिह्न शेष न रहें।"[6]

महादेवी वर्मा को 'आधुनिक युग की मीरा' कहा जाता है। यह संज्ञा मीरा के निर्भीक व्यक्तित्व की साम्यता के साथ, उनकी अनुभूति की गहराईयों और भावना के विस्तार की ओर परिलक्षित करती है। इसका अंदाजा रवींद्रनाथ ठाकुर के व्यक्तित्व चित्रांकन से लगाया जा सकता है। महादेवी वर्मा अपने अनुभवों के आधार पर स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व की शिनाख्त करती हैं। वे सिर्फ व्यक्तित्व का मूल्याङ्कन नहीं करतीं, बल्कि साहित्यकारों के साहित्य में भी झांककर, उसमें अभिव्यक्त भावों और विचारों के आधार पर भी व्यक्तित्व की परख करती हैं। एक साहित्यकार अपने साहित्य में व्यष्टि-समष्टि का चित्रण तो करता है लेकिन इसके साथ ही वह अपने विचारों और भावों की अभिव्यक्ति भी दे रहा होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य में महादेवी वर्मा उनके व्यक्तित्व का अक्स देखती है। वे इस संदर्भ में कहती हैं- "महान साहित्यकार अपनी कृति में इस प्रकार व्याप्त रहता है कि उसे

कृति से पृथक रखकर देखना और उसके व्यक्तिगत जीवन की सब रेखाएँ जोड़ लेना कष्ट-साध्य ही होता है। एक को तोलने में दूसरा तुल जाता और दूसरे को नापने में पहला नप जाता है। वैसे ही जैसे घट के जल का नाप-तोल घट के साथ है और उसे बाहर निकाल लेने पर घट के अस्तित्व-अनस्तित्व का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।"[7] रचना के आधार पर रचनाकार के व्यक्तित्त्व की विशेषताओं का निर्धारण, हिंदी में संस्मरण लेखन में नयी शुरुआत थी।

महादेवी वर्मा ने अपने संस्मरण में हिंदी के साहित्यकारों का जो वर्णन किया है, उसमें सिर्फ़ उनसे भेंट-मुलाक़ात का रोज़नामचा भर नहीं है बल्कि उनका जीवन कैसा है, उनका रहन-सहन कैसा है, उनका दुःख-दर्द क्या हैं, उनकी पसंद-नापसंद, जैसी बातों का विस्तार से वर्णन है। कहना न होगा कि ये सारी बातें सिर्फ़ संबंधों के बाह्याडम्बर या दिखावे – भर मात्र नहीं ज्ञात होतीं। महादेवी वर्मा ने मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पन्त आदि पर जो संस्मरण लिखे हैं वह केवल संस्मरण भर नहीं हैं। न ही वह उनसे हुई मुलाकातों के विवरण-मात्र हैं। महादेवी वर्मा ने उनके साहित्य के पात्रों के व्यक्तित्त्व, दुःख-दर्द-मुश्किलों को इनके जीवन से जोड़ा है और यह दिखाया है कि कैसे इन विभूतियों ने अपने दुःख-दर्द और बातों को अपने पात्रों या साहित्य में सृजित किया है। जिस आत्मीयता और संवेदनशीलता से महादेवी वर्मा ने अपने साथियों पर संस्मरण लिखा है वह एक मिसाल और नज़ीर बनकर हिंदी संस्मरण के समक्ष खड़ा है। उन्होंने निराला का समूचा व्यक्तित्त्व विश्लेषण उनके साहित्य और पात्रों के माध्यम से किया है।

महादेवी वर्मा का संस्मरण साहित्य पाठकों को इस बात से भी अवगत कराता है कि महिला स्वातंत्र, उसे सशक्त और संघर्षशील बनाता है। सुभद्राकुमारी चौहान को याद करते हुए उन्होंने उन्हें एक स्त्री, एक माँ; जो स्वतंत्रता सेनानी है और कवि–साहित्यकार भी है, इन सब के साथ एक सशक्त नारी भी हैं, के रूप में चित्रित किया है। सुभद्रा कुमारी चौहान नितांत अभावों में अपना जीवन गुजर-बसर कर रही है। उसे ग़रीबी, फांकाकशी पसंद है लेकिन वह अपने उसूलों से समझौता करने को राज़ी नहीं है। वह अभाव के उस पड़ाव पर है कि जेल में अपनी बच्ची को दूध तक नहीं मुहैय्या करा पातीं। बेटी को भर पेट भोजन तक नहीं मिल पाता! ऐसी विषम परिस्थियों में भी सुभद्रा कुमारी चौहान दृढ़ता से अपने मार्ग पर कायम रहीं। महादेवी वर्मा ने सुभद्रा कुमारी चौहान का सशक्त चित्रण किया है।

रामधारी सिंह दिनकर

हिंदी साहित्य में रामधारी सिंह दिनकर की छवि एक ऐसे साहित्यकार की है जो उदास, निराश, कर्तव्यच्युत जनता में कर्म और आशा का संचार करने के लिए जाने जाते हैं।

इन सबसे इतर उनके साहित्यिक जीवन का एक दूसरा पहलू भी है, जिस पर बहुत कम ध्यान दिया गया है – वह है उनका संस्मरणकार व्यक्तित्त्व। रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरण न केवल हिंदी साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण हैं बल्कि स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति और नेताओं के व्यक्तित्त्व को समझने के लिए भी आवश्यक सामग्री प्रदान करते हैं। रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरणों के दो प्रमुख पहलू हैं। एक, उनका साहित्याकर जगत से जुड़ाव को दिखाता है, जिसमें उनके छोटे-बड़े और समवयस्क साहित्यिकों पर आधारित संस्मरण है तो दूसरा, तत्कालीन राजनैतिक जगत के जाने-माने राजनेताओं पर आधारित संस्मरण हैं। कहना न होगा कि ये दोनों किसी न किसी रूप में महत्त्वपूर्ण हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू पर लिखे उनके संस्मरण उनके के व्यक्तित्त्व को समझने के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

रामधारी सिंह दिनकर के प्रमुख संस्मरण 'लोकदेव नेहरू', 'वट-पीपल', संस्मरण और श्रद्धांजलियां', 'शेष-निःशेष' में संग्रहीत हैं। रामधारी सिंह दिनकर के ये संस्मरण तत्कालीन हिंदी साहित्य को समझने की एक दृष्टि तो प्रदान करते ही हैं, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थियों को समझने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। अपनी पुस्तक 'संस्मरण और श्रद्धांजलियां' में उन्होंने ऐसे संस्मरणों का संकलन किया है जिनसे लेखक गहरा प्रभावित है। उनसे किसी न किसी रूप में जुड़ा रहा है। ऐसे लोगों के अवसान के बाद उनसे जुड़े सम्बन्ध और उनके महत्त्व को रेखांकित करने का पूरा प्रयास है। यही रामधारी सिंह दिनकर की उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है ! तत्कालीन राजनीतिक गलियारे में उनके सम्बन्ध महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डॉ.राजेन्द्र प्रसाद, काका कालेलकर, के.एम्. मुंशी, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, लालबहादुर शास्त्री, राममनोहर लोहिया, जाकिर हुसेन आदि से थे। साहित्यिक जगत् में उनके सम्बन्ध राय कृष्णदास, राहुल सांकृत्यायन, पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य रघुवीर, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', नलिन विलोचन शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, निराला, सुमित्रानंदन पन्त, महादेवी वर्मा, हरिवंशराय बच्चन, हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि से बहुत घनिष्ठ थे।

रामधारी सिंह 'दिनकर' के संस्मरण तत्कालीन साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को समझने की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अधिकतर संस्मरण 1930ई. से 1965 ई.के बीच लिखे गए। स्वतंत्रता से पहले और उसके बाद का पूरा परिदृश्य इनके संस्मरणों में दिखाई देता है। यह वह समय है जब देश सिर्फ राजनीतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि की उथल-पुथल से गुजर रहा था। देश में हर तरफ आजादी के लिए संघर्ष चल रहा था। अनेक आन्दोलन हो रहे थे। हमारे नेता ब्रिटिश शासन से मुक्ति के लिए प्रयासरत थे। उनका संघर्ष बहुत कठिन था। इन तमाम

परिस्थियों के साक्षात् दर्शी रामधारी सिंह दिनकर रहे हैं। चूँकि लेखक ने राजनेताओं और साहित्यकारों दोनों पर संस्मरण लिखा है, इसलिए इन संस्मरणों का फलक विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है।

रामधारी सिंह दिनकर का दौर उच्च आदर्शों के निर्माण का दौर था, जहाँ राजनेताओं का एक ऐसा वर्ग था जो व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर देश सेवा के लिए समर्पित था। राजनीति भी उच्च आदर्शों के निर्माण की थी। ऐसा हम रामधारी सिंह के राजनेताओं पर लिखे संस्मरण को पढ़कर समझ पाते हैं। एक तरफ कुछ लोग राजनीति में अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए तमाम दांवपेंच लगा रहे थे, वहीँ कुछ राजनेताओं का ध्येय देश और जनता का कल्याण करना था। इन राजनेताओं ने राजनीति के माध्यम से देश और समाज को अपना श्रेष्ठ देने का कार्य किया, व्यक्तिगत स्वार्थ को परे रखकर। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन के व्यक्तित्त्व का विश्लेषण करते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है- "वे राजनीति के आदमी जरूर थे, मगर राजनीति के लौकिक पक्ष से उनका सरोकार बहुत कम था। राजनीति को उन्होंने किसी ऊँचे ध्येय के साधन के रूप में ग्रहण किया था। उन्होंने बाल-बच्चे पैदा किए, मगर वे बाल-बच्चों के हुए नहीं। वे गृहस्थ के वेष में रहे, मगर हर आदमी उन्हें संन्यासी समझता था।"[8]

रामधारी सिंह दिनकर स्मृत व्यक्तियों पर बात करते हुए उनके सामाजिक,राजनैतिक सरोकारों का विश्लेषण करते हैं। वे देश-समाज के हित को लेकर अपने विचार भी व्यक्त करते हैं। लेखक स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व और वैचारिकी के साथ अपनी वैचारिकी भी स्पष्ट करता चलता है, जिससे लेखक का व्यक्तित्व, उसकी सोच भी उभरकर सामने आती है। इस बात को उदहारण के तौर पर समझने के लिए सेक्युलरिज्म का गलत अर्थ में प्रयोग करना और उसके झोल को लेकर अपना मत प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है- "भारत का एक दुर्भाग्य सेक्युलरिज्म भी है। इसका अर्थ साम्प्रदायिकता नहीं है। अंग्रेजी के इस शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया जा रहा है, उससे असाम्प्रदायिकता का प्रचार नहीं होता। प्रचार उससे इस भाव का होता है कि मुसलमान, मुसलमान है और क्रिस्तान, क्रिस्तान, मगर हिन्दू नहीं, गैर-मुस्लिम हैं। भारत के सेक्युलर राज्य की दृष्टि में हिंदू और मुसलमान बराबर नहीं हैं। हिन्दू एक ही विवाह कर सकता है, मगर मुसलमान के विवाह की संख्या पर रोक नहीं है। और यह तो है ही कि हिन्दू अगर दूसरा विवाह करना चाहे, तो उसे मुसलमान हो जाना पड़ेगा। शिक्षा-आयोग ने सिफारिश की है कि धार्मिक शिक्षा के बिना भारत की संस्कृति नहीं बचेगी, किंतु भारत की सेक्युलर सरकार अपने ही द्वारा स्थापित शिक्षा-आयोग के सुझाव

पर अमल करना नहीं चाहती। सेक्युलरिज्म का इस गलत अर्थ में प्रयोग जवाहरलाल जी के जोर से बढ़ा और राजेन्द्र बाबू तथा डॉ. राधाकृष्णन, राष्ट्रपति होते हुए भी इस प्रवाह को रोक नहीं सके।"[9]

रामधारी सिंह दिनकर अपने संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के माध्यम से तत्कालीन राजनैतिक घटनाओं पर भी दृष्टिपात करते हैं। नेहरू और सर्वपल्ली राधाकृष्णन पर लिखते समय भारत-चीन युद्ध का ज़िक्र वो अवश्य करते हैं और यह बताते हैं कि कैसे ग़लत नीतियों के चलते देश को पराजय का मुंह देखना पड़ा। सर्वपल्ली राधाकृष्णन राष्ट्रपति के पद पर रहते हुए सरकार की आलोचना करने से नहीं चुकते, इस बात की प्रसंशा रामधारी सिंह दिनकर संस्मरण में करते हैं।

आधुनिक भारत में परिवर्तन का बोलबाला है। पारंपरिकता को त्यागकर आधुनिकता को अपनाने पर जोर है। रामधारी सिंह दिनकर का ध्यान उस तरफ़ जाता है कि आधुनिकता ने बहुत कुछ ऐसी चीज़ों को बदल दिया है जो त्याज्य के बजाय ग्रहणीय थीं। वे बदलाव के खिलाफ़ नहीं थे। वह उन हर चीजों में बदलाव चाहते थे जो किसी समाज को आगे बढ़ने में बाधक बन रही हो। लेकिन वे आँख मूंद कर कोरे बदलाव के भी समर्थक नहीं थे। वे मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों में अंध बदलाव के ख़िलाफ़ थे। वे आधुनिकता और परम्परा के साथ तादात्म्य बनाकर चलना चाहते थे, न कि त्याग कर। वे आधुनिकता को परम्परा के साथ अपनाना चाहते थे। रामधारी सिंह दिनकर इस बात के आग्रही हैं कि परम्परा को लेकर चलने का नाम आधुनिकता हैं। हम सिर्फ अपने भविष्य के बारे में नहीं सोच सकते बल्कि भविष्य में आगे बढ़ने के लिए कभी-कभी अतीत की तरफ़ देखना भी आवश्यक है। हमें विज्ञान को अपनाना है लेकिन अपनी संस्कृति के साथ। वे लिखते हैं- "हिंदी-भाषी क्षेत्र की विशेषता है कि उसके नेता बराबर अतीत और समकालीन के बीच समन्वय को अपना ध्येय समझते हैं। पं.मोतीलाल नेहरू और पं.जवाहर लाल नेहरू, ये तो नेता अपवाद स्वरूप जनमें थे। उनका ध्येय भविष्य था। किंतु भारतेंदु हरिश्चंद्र, मालवीय जी, टंडन जी, संपूर्णानंद जी और रविशंकर शुक्ल, ये सभी जननायक भारत के अतीत पर श्रद्धा रखते थे और उनका ध्येय था कि भारत के एक हाथ में विज्ञान की मशाल और दूसरे में धर्म का कमल होना चाहिए। पं.कमलापति त्रिपाठी का दृष्टिकोण इन स्वर्गीय नेताओं के दृष्टिकोण से मिलता-जुलता है। वे एक अधार्मिक युग में धर्म की साधना करते हैं, सिगरेट के जमाने में पान खाते हैं और पाउडर के युग में चंदन लगाते हैं। वे काशी की संस्कृति के जाज्वल्यमान प्रतीक हैं और भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमा हैं।"[10]

अपने संस्मरणों में रामधारी सिंह दिनकर कभी-कभी संस्मरणकार की भूमिका में नहीं बल्कि आलोचक की भूमिका में दिखाई देते हैं। कमलापति त्रिपाठी पर लिखे संस्मरण में उनके आलोचनात्मक विचार को देखा जा सकता है। स्मृत व्यक्ति के माध्यम से नहीं बल्कि सीधे-सीधे और स्पष्ट रूप में वे अपने आलोचनात्मक विचारों को रखते हैं। इस समय वे आत्मकेंद्रित हो जाते हैं। भारत के भविष्य और अतीत पर अपने विचार प्रकट करते हुए वे लिखते हैं- "जो लोग भारत को जबरदस्ती आधुनिक बनाना चाहते हैं, उन्हें अतीत में निराशा हुई है और भविष्य में भी होगी। भारत का ध्येय अतीत और समकालीन के बीच समन्वय लाना है, पूरब और पश्चिम के बीच मेंल बैठाना है। यह देश आधुनिक अपने खास ढंग से हो रहा है। जब से विज्ञान का आविर्भाव हुआ, दुनिया के प्रत्येक देश में अतीत और समकालीन के बीच संघर्ष छिड़ गया और प्रत्येक देश में समकालीन जीता और अतीत हार गया। अतीत केवल भारत वर्ष में आज भी जोरों से युद्ध कर रहा है। भारत और समस्त मानवता के हित में यह आवश्यक है कि अतीत का वह अंश हमारे साथ रहे, जो अमर है।"[11]

चीनी आक्रमण में नेफा के मैदान में भारत का हार जाना, लेखक को ही नहीं बल्कि पूरे देश को स्तब्ध और दुःखी करता है। लेखक कहता है कि पूरे भारत वर्ष का सिर शर्म से झुका है। उस भीषण घटना ने देश के मनोबल को तोड़ा है। भारत ऋषि-मुनियों-महात्माओं की भूमि है। आज के आधुनिक युग में अगर हम शांति सन्देश के भरोसे रहे तो काफी पीछे रह जाएंगे। आज तक भारत अंग्रेजों का उपनिवेश था, वक्त नहीं लगेगा जब दूसरे देश दुबारा भारत को कब्जे में लेने की कोशिश करेंगें। माना कि भारत शांति साधना का आग्रही है लेकिन देश की रक्षा के लिए युद्ध भी जरूरी है। रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं- "युद्ध और शान्ति की समस्या मनुष्य की सनातन समस्या है। लड़ाई बुरी बात है, मगर मुश्किल यह है कि जो राष्ट्र युद्ध के लिए तैयार नहीं रहता, शांति से जीना उसके लिए असम्भव हो जाता है। जिसका आपद्धर्म प्रभावशाली नहीं होता, उसका परमधर्म आपसे-आप नष्ट हो जाता है। भारतवर्ष युद्ध से बिल्कुल आंख मूँदकर शांति की साधना करे, मैंने इस विचारधारा का हमेंशा विरोध किया है और आज भी उसका मैं विरोध ही करूँगा। मैं चाहता हूँ कि हमारा देश न्याय पर रहे और लड़ाई से बचने की कोशिश करे, मगर लड़ाई से बचना जब असम्भव हो जाय, हमें लड़ने को तैयार रहना चाहिए। इस देश में केवल कृष्ण, गुरु गोविंद, तिलक और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ही नहीं हुए हैं, बुद्ध, नानक और गांधी जी भी हुए हैं। हमें उस

रास्ते पर चलना है, जो कृष्ण और बुद्ध के बीच, नानक और गोविंद के बीच, गांधी और सुभाष के बीच की दूरी को संकीर्ण बना दे अथवा उसे बिल्कुल मिटा दे।"[12]

रामधारी सिंह 'दिनकर' के बहुत सारे राजनेता मित्र थे तो वहीं दूसरी तरफ़ उनके साहित्यिक मित्रों की भी भरमार थी। रामधारी सिंह दिनकर ने जब साहित्यिक दुनिया में लेखन की शुरुआत की, तब हिंदी साहित्य में छायावाद का युग उत्कर्ष पर था। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एक स्थापित नाम था। निराला जी से रामधारी सिंह दिनकर का आत्मीय सम्बन्ध था। निराला पर लिखे अपने संस्मरण में वे अपने रागात्मक सम्बन्ध की चर्चा करते हैं। निराला के जीवन को ट्रैजिक बताते हुए वे उनकी विक्षिप्तता का जिक्र करते हैं। वे कहते हैं कि निराला के चेतन और अवचेतन के बीच की दीवार टूट गयी है। वह उस अवचेतन की अवस्था में जितनी भी बात करते हैं, वह प्रतीकात्मक रूप से व्यवस्था और समाज पर व्यंग्य है। उनके उन प्रतीकात्मक शब्दों के मायने होते हैं जिसे गहराई से समझा जा सकता है। वे लिखते हैं- "स्वप्न में बोलते-बोलते वे जाग्रत अवस्था में चले आते हैं और जाग्रत में बोलते-बोलते वे स्वप्न में लौट जाते हैं। उसकी हर बात का कोई न कोई अर्थ होता था। वे प्रतीक में बोलते थे, अन्योक्ति में अभिव्यक्ति करते थे।"[13] रामधारी सिंह दिनकर निराला जी के सम्बन्ध में अपने एक मित्र की बात अक्सर उद्धृत करते, जिसमें उनके मित्र ने निराला और सुमित्रानंदन पन्त की तुलना निराला की कविता 'कुकुरमुत्ता' से की है। वह निराला जी की कविता 'कुकुरमुत्ता' में सुमित्रानंदन पंत और निराला के जीवन संघर्ष को देखते हैं। वह 'गुलाब' का अर्थ सुमित्रानंदन पंत से और 'कुकुरमुत्ता' का अर्थ निराला जी से लगाते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त सहृदय कवि के रूप में जाने जाते है। रामधारी सिंह दिनकर उनके व्यक्तित्व के दो पक्षों को उभारते हैं। एक, साहित्यकार व्यक्तित्व के रूप में और दूसरा 'दद्दा' के रूप में। मैथिलीशरण गुप्त के रूप में वह साहित्य सेवी हैं लेकिन दद्दा के रूप में समाजसेवी। रामधारी सिंह दिनकर उनके खान-पान, बीमारियों की वज़ह से जीवन संघर्ष आदि से लेकर उनकी साहित्यिक अवदानों की चर्चा करते हैं और हिंदी साहित्य की एक मजबूत कड़ी के रूप में देखते हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने तमाम बीमारियों का सामना करते हुए हिंदी जगत को जो दिया, वह अतुलनीय है। उनका पारिवारिक जीवन भी काफी जटिल था। गुप्त जी की तीन शादियां हुई थीं। दो पत्नियों का देहांत हो गया, तीसरी पत्नी से उत्पन्न संतानों की लगातार मृत्यु से उन्हें अनेक बार संतान शोक भी झेलना पड़ा। इन दुःखों के साथ साहित्य को इतना कुछ देना आसान नहीं है। इन तमाम प्रसंगों से मैथिलीशरण गुप्त की जीवटता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

'एक भारतीय आत्मा' के रूप में विख्यात माखनलाल चतुर्वेदी से रामधारी सिंह दिनकर 1920ई. से प्रभावित थे। उस समय उन्होंने लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर एक कविता लिखी थी। उस समय लेखक की उम्र महज 12 साल की थी। रामधारी सिंह दिनकर उस समय उनकी कविता के भाव को समझ न सके, लेकिन कविता की लय ने लेखक को इतना प्रभावित किया कि उन्हें उसी समय पूरी कविता कंठस्थ हो गई। माखनलाल चतुर्वेदी से पहली रचनात्मक मुलाकात में ही लेखक काफी प्रभावित हुआ। यह मुलाकात कब प्रगाढ़ता और आत्मीयता में बदल गयी इसका सही अंदाजा लगाना लेखक के लिए मुश्किल था। माखनलाल चतुर्वेदी से जुड़े तमाम वाकयों का जिक्र रामधारी सिंह दिनकर करते हैं। एक प्रसंग की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं कि जब बनारसीदास चतुर्वेदी ने माखनलाल चतुर्वेदी से कहा कि व्यक्ति को अगर साहित्य और राजनीति को चुनना होता है तो वह राजनीति ही क्यों चुनता है। इस पर माखनलाल जी ने एक पत्र में यह कविता लिखी, जिससे माखनलाल चतुर्वेदी के राजीनतिक झुकाव को आसानी से समझा जा सकता है। उनके माध्यम से लेखकों का राजनीति के प्रति लगाव चाहे वह रचना के माध्यम से हो अथवा सीधा हस्तक्षेप हो-

"सखे, बता दे, कैसे गाउँ, अमृत मौत का दाम न हो,
जगे एशिया, हिले विश्व, पर राजनीति का नाम न हो?
व्यथित बाँसुरी से कहती हूँ हिय तल हूक मचा दे तू,
अरी गरीबिन, रण-डंका बन कस कर चोट लगा दे तू।"[14]

माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएं देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत रहती थी, जिसका कारण उस समय देश की परिस्थितियाँ और समाज में व्याप्त स्वतंत्रता आंदोलन था। लेखक उनकी तमाम कविताएं जैसे 'मरण त्यौहार' एवं 'कैदी और कोकिला' की पृष्ठभूमि का जिक्र करते हैं। 'मरण त्यौहार' उस समय लिखी गयी थी जब बोरष्टल जेल में भगत सिंह और यतीन्द्रनाथ दास के साथ अनेक क्रांतिकारी अनशन पर बैठे थे। इस तरह लेखक उन तमाम प्रसंगों और परिस्थितियों का जिक्र करता है, जो स्मृत व्यक्ति की कविताओं की प्रेरणास्रोत रही हैं। उन परिस्थितियों, समय-समाज तथा देश की भावना को लेखक ने शब्दों में बाँधने की कोशिश की है।

जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' का नाम हिंदी के उत्कृष्ट कवियों में लिया जाता है। इनकी हिंदी के साथ-साथ उर्दू, संस्कृत और फ़ारसी पर बेजोड़ पकड़ थी। जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' की भाषा और साहित्य से प्रभावित होकर पं.महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'महामनीषी' की संज्ञा दी थी। इनके द्वारा रचित पुस्तक कल्लोलिनी, दर्शना, वैकाली आदि

का ज़िक्र करते हुए रामधारी सिंह दिनकर उनके साहित्यिक अवदान की चर्चा करते हैं। उस समय साहित्य और राजनीति के प्रति लोगों का झुकाव देखकर रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं- "सन् 1935 से लेकर सन् 1950ई. तक मैं कवि-सम्मेलनों में अक्सर जाता रहा। उस समय देश में जागृति थी और जनता जितनी रूचि राजनीतिक जागरण में लेती थी, उतनी ही रुचि वह साहित्य के जागरण में भी लेती थी। किराए के अलावा कवियों को पैसे शायद ही मिलते थे, फिर भी हम लोग बड़े उत्साह से कवि-सम्मेलनों में भाग लेते थे।"[15]

एक साहित्यकार व्यक्ति-समय-समाज का चित्रण साहित्य में करता है। उसके साहित्य में समाज के विस्तृत जीवन अनुभव के साथ उसका स्वयं का जीवन भी होता है। स्मृत व्यक्तियों ने जो रचनाएँ लिखी हैं, संस्मरणकार ने उनकी रचनाओं के माध्यम से उनके जीवनानुभवों को पकड़ने की कोशिश की है। रामधारी सिंह दिनकर एक साहित्यकार हैं, जाहिर-सी बात है कि उनके रचनाकार व्यक्तित्व ने उनकी रचनाओं में उनके जीवन की छाप छोड़ी होगी। रामधारी सिंह दिनकर स्मृत व्यक्तियों को याद करते हुए उसकी रचनाओं में समाज को ही नहीं, बल्कि उसका व्यक्तित्व भी ढूढ़ते हैं।

रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति की केन्द्रीयता को लेकर बात की जाय तो संस्मरणकार में काफी भटकाव देखने को मिलता है। वह स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व की बात करते-करते, कब भटककर व्यष्टि-समष्टि की समस्याओं पर या दूसरे व्यक्ति पर केंद्रित हो जाते हैं, पता नहीं चलता है। राय कृष्णदास पर संस्मरण लिखते हुए लेखक कृष्णदास की स्मृतियों और अनुभवों पर कम बात करते हैं लेकिन मैथिलीशरण गुप्त और प्रसाद जी के आपसी मतभेद और सम्बन्धों को लेकर काफी चर्चा करते हैं।

रामधारी सिंह दिनकर ने अपने समकालीन रचनाकारों को याद किया है। उनके ज्यादातर संस्मरण स्मृत व्यक्ति के जीवन की सामान्य जानकारी के आधार पर लिखे गए है। ये संस्मरण सामान्य जानकारी या दो-तीन मुलाकातों के आधार पर लिखें गए हैं। इन संस्मरणों के माध्यम से स्मृत व्यक्ति के जीवन के बाहरी हिस्से को समझा जा सकता है। स्मृत व्यक्ति का यह बाहरी हिस्सा उसके सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक योगदान से जुड़ा हुआ होता है। रामधारी सिंह दिनकर अपने संस्मरण में सिर्फ स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व से जुड़े अपने अनुभव को आधार नहीं बनाते, बल्कि वह अन्य लोगों से प्राप्त जानकारियों को आधार बनाकर संस्मरण में रेखांकित करते हैं। लेखक निराला, माखनलाल चतुर्वेदी आदि पर लिखते हुए उनसे जुड़े अपने अनुभव को और अन्य स्रोतों को आधार बनाता है। इस संस्मरण में लेखक स्मृत व्यक्ति से जुड़े अन्य लोगों के अनुभव से प्राप्त जानकारियों को साझा करता है। रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरणों में एक चीज स्पष्ट दिखाई देती है कि वे व्यक्तियों से तो जुड़े हैं, पर उन व्यक्तियों से जुड़े व्यक्तिगत अनुभव कम

ही है। इन संस्मरणों में लेखक कई जगह सुनी-सुनाई बातों को शामिल करते हुए दिखाई देता है।

रामधारी सिंह दिनकर अपने संस्मरणों में अपने जीवन से जुड़े तमाम प्रसंगों को रेखांकित करते हैं। इनके संस्मरणों में लेखक का व्यक्तित्व स्मृत व्यक्ति के माध्यम से नहीं बल्कि सीधे-सीधे दिखाई देता है। इन संस्मरणों को पढ़कर स्पष्ट होता है कि रामधारी सिंह दिनकर का हिंदी भाषा के प्रति अगाध प्रेम था। वे हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिलाने के आग्रही थे। यह वह समय था जब भारत अंग्रेजों का उपनिवेश था। उस समय कार्यालय या शासन के सभी काम का माध्यम अंग्रेजी थी। ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा से भी मुक्ति के लिए संघर्ष चल रहा था। कुछ लोग अंग्रेजी भाषा में पहले की तरह शासन-प्रशासन के काम को जारी रखने के पक्षधर थे और कुछ लोग अंग्रेजी को स्थानांतरित कर, हिंदी को लाने के आग्रही थे। उस समय राजभाषा और राष्ट्रभाषा का भी द्वन्द्व जोरों पर था। रामधारी सिंह दिनकर ने इन तमाम द्वंद्व को अपने और स्मृत व्यक्तियों के माध्यम से रामधारी सिंह दिनकर संस्मरण में रेखांकित करते हैं। उनके संस्मरणों के माध्यम से हिंदी भाषा को लेकर उनके विचारों को जाना जा सकता है।

रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरणों में जगह-जगह संवादात्मक शैली का प्रयोग हुआ हैं, जो हमारे सामने संस्मरण का कथात्मक रूप प्रस्तुत करता है। इस तरह के संवाद नाटकों और उपन्यासों जैसी कथात्मक विधाओं के वैशिष्ट्य के रूप में उभरकर सामने आते हैं। दिनकर के संस्मरणों के शैलीगत प्रयोग, उनके संस्मरणों को रोचक बनाते हैं। दिनकर की हास्य-व्यंग्य शैली उनके संस्मरणों को बोझिल होने से बचाती है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन : वैविध्य के आयाम

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन ने संस्मरण साहित्य को नयी ऊँचाई प्रदान की है। आज संस्मरण लेखन जिस रूप में हमारे सामने आया है, वह सर्वथा नवीन है। संस्मरण आज भी परिवर्तन और निरंतर विकास की ओर अग्रसर है। संस्मरण साहित्य पुरानी शैली, पद्धति, तौर-तरीकों को छोड़कर नवीन शैली और पद्धति को अंगीकार किया है। आज वह हिंदी की किसी भी विधा के समकक्ष खड़ा हो सकता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन के लिए यह कहना गलत नहीं होगा की वह आज भी नए प्रयोगों और कथ्य की विविधता के साथ अपनी विकासशीलता की ओर अग्रसर है। हिंदी संस्मरण में नवीन कथ्य और बदलते स्वरूप के साथ इसे विधागत स्थायित्व ही नहीं मिला बल्कि इसकी लोकप्रियता भी बढ़ी है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन की बात करें तो उसमें व्यक्ति के माध्यम से जीवन के विविध रूप देखने को मिलते हैं। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन के वैविध्य को रेखांकित करने के लिए मैंने कुछ संस्मरणों को चुना है। ये संस्मरण व्यष्टि और समष्टि से जुड़े विविध जीवन मूल्यों से रू-ब-रू कराते हैं। यहाँ इन पुस्तकों के माध्यम से समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन के वैविध्य को रेखांकित किया गया है। इनमें जीवन के विविध पक्ष हैं।

1. यादव, राजेंद्र – वे देवता नहीं हैं (2000)
2. कालिया, रवीन्द्र- ग़ालिब छूटी शराब (2000)
3. जोशी, मनोहर श्याम– रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण(2004)
4. जैन, कान्ति कुमार- तुम्हारा परसाई (2005)
5. सिंह, काशीनाथ-घर का जोगी जोगड़ा (2006)
6. कालिया, ममता- कितने शहरों में कितनी बार(2010)
7. सोबती, कृष्णा– हम हशमत-3 (2012)

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन की विकास परम्परा को देखा जाए तो हमें इसमें सकारात्मक बदलाव दिखाई देते हैं। यही कारण है कि संस्मरण एक स्वतंत्र विधा के रूप में अपनी अलग पहचान बनाये हुए है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन को समृद्ध बनाने में काशीनाथ सिंह, कांतिकुमार जैन, कृष्णा सोबती, मनोहर श्याम जोशी, राजेन्द्र यादव, विश्वनाथ त्रिपाठी, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया आदि साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन पूर्ववर्ती संस्मरणों से कई अर्थों में भिन्न है। इसमें तरह-तरह के प्रयोग दिखाई देते हैं। समकालीन संस्मरण में ये प्रयोग कथ्य, भाषा, शैली आदि के आधार पर हुए हैं, जो उसे पूर्ववर्ती संस्मरण से अलग करता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में यह बदलाव सिर्फ बाह्य रूप में ही नहीं बल्कि आंतरिक रूप में भी दिखाई

देता है। संस्मरण का यह बदलाव सकारात्मक है। ये सकारात्मक बदलाव ही संस्मरण को लोकप्रिय बना रहें हैं। यही कारण है कि संस्मरण दिन-प्रतिदिन नवीनता की ओर अग्रसर है। उपर्युक्त संस्मरणों के माध्यम से इन बदलाओं और प्रयोगों को देखने की कोशिश की जाएगी।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन की तुलना पूर्ववर्ती संस्मरणों से करें तो जहां पहले श्रद्धेय या श्रद्धांजलिपरक संस्मरणों की प्रमुखता थी, वहीं समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इस परंपरा से बाहर निकलता हुआ दिखाई दे रहा है। यह स्मृत व्यक्ति के देहावसान के बाद की चरण वन्दना या महिमामंडन या यशोगान को अस्वीकार करता है। समकालीन संस्मरणकार महान, आराध्य, पूज्य, श्रद्धेय, श्रद्धांजलि जैसे शब्दों से बचने की कोशिश कर रहा है। पहले के संस्मरणों में हम देख चुके हैं कि स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व ईश्वरत्व या आराध्य रूप में ऐसे दिखाया जाता था कि उसका असल व्यक्तित्व गायब हो जाता था। ऐसी स्थिति में संस्मरण का स्वाभाविक रूप नदारद हो जाता था और अस्वाभाविक लगने लगता था। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इस अस्वाभाविकता को परिलक्षित करता है। वह उससे बाहर निकलता हुआ दिखाई दे रहा है। आज के संस्मरणों में आराध्य या पूज्य भाव को आधार बनाकर लिखने वाले साहित्यकारों की खुलकर आलोचना की जाती है। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव कहते हैं- “मेरी बात संस्मरणों के नाम पर परोसे जाने वाली परिपाटीबद्ध प्रशस्तियों और विरुदावलियों से अलग थी। संस्मरण हो या श्रद्धांजलि, हमारी भाषा इतनी रूढ़, बासी, अतिश्योक्तियों से लदी और प्रश्स्तिपरक होती है कि उनके पीछे का आदमी गायब ही हो जाता है। भेद कर पाना मुश्किल है कि जिसके बारे में कहा जा रहा है वह जीवित भी हैं या चल बसे।”[16]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन संबंधों की प्रगाढ़ता को महत्त्व देता है। यह प्रगाढ़ता पारिवारिक व्यक्ति, दोस्त, गुरु, शिष्य आदि किसी से भी हो सकती है। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को जितनी गहराई से संस्मरणकार समझता है उसी को प्रमुखता देता है। काशीनाथ सिंह ने ‘घर का जोगी जोगड़ा’ में अपने बड़े भाई नामवर सिंह, और ‘याद हो कि न याद हो’ में दोस्तों, शिष्यों आदि पर संस्मरण लिखा है जिसमें संबंधों की प्रगाढ़ता को महत्त्व दिया गया है। कान्तिकुमार जैन कृत ‘हरिशंकर परसाई’ में गुरु को याद करते हैं। संस्मरणकार के लिए प्रभावशाली व्यक्तित्व ही रेखांकन का पैमाना नहीं होता है। पूर्ववर्ती संस्मरणों में देखा गया है कि संस्मरणकार समाज पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए प्रभावशाली व्यक्तियों पर संस्मरण का आधार बनाते थे। उनके लिए संबंधों की प्रगाढ़ता और व्यक्तित्व की गहराई की नहीं बल्कि प्रभावशाली व्यक्तित्व और सकारात्मक प्रभाव की प्रमुखता होती थी। स्मृत व्यक्ति का सिर्फ सकारात्मक पक्ष संस्मरणकार रेखांकित करता था। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के एक पक्ष का रेखांकन तथा दूसरे पक्ष का अभाव उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने में बाधक सिद्ध होता है। संस्मरणकार का अस्वाभाविक या अतिरंजित रूप प्रस्तुत करना, स्मृत

व्यक्ति और विधा दोनों के साथ न्याय न होगा। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में इस परंपरा का नकार दिखाई देता है। आज के संस्मरणकार, स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को सिर्फ संपूर्णता में नहीं देखते बल्कि उसके एकपक्षीय मूल्यांकन की आलोचना भी करते हैं। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव कहते हैं- "हमारे यहाँ मरने पर हर व्यक्तित्व का सिर्फ हनुमान-चालीसा ही लिखा जा सकता है। जिसके बारे में भी उसके श्रद्धालुओं या भक्तों ने जो छवि बना ली है उससे अलग कुछ भी कहना उस 'महान आत्मा' के प्रति विश्वासघात है। उसे लगभग एक शहीद का दर्जा देना हमारे चरित्र की मजबूरी है- क्योंकि कल हमें भी तो मरना है ऐसे मनोवैज्ञानिक दबावों में जीवन की कुछ मोटी-मोटी घटनाओं के विवरणों या सब कुछ महान, सब कुछ अद्वितीय की 'ओम जय-जगदीश हरे' छाप आरतियों के सिवा लिखा या कहा भी क्या जा सकता है? परिणाम यही हुआ कि इन मूर्ति पूजकों के चंगुल में या तो भारतेंदु, निराला, उग्र, भुवनेश्वर जैसे चुनौती-भरे 'व्यक्तित्व' महानता की गुमनामियों में डाल दिए गये या उनपर इतना घी-सिन्दूर पोता गया कि कृष्ण, विष्णु या राम की मूर्तियों की अलग पहचान ही खो गयी-सब एक से सपाट, एक से श्रद्धेय।"[17]

अगर हम बात करें राजेन्द्र यादव के संस्मरण 'औरों के बहाने' और 'वे देवता नहीं हैं' की तो इस पुस्तक के 'शीर्षक' से ही बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। 'वे देवता नहीं हैं' का मतलब ही है कि व्यक्ति के गुणों और अवगुणों के साथ चित्रित करना। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को सम्पूर्णता में देखना। स्मृत व्यक्ति का ईश्वरत्व या आराध्य रूप का खंडन। व्यक्ति को उसकी अच्छाईयों और खामियों के साथ मानवीय रूप में प्रस्तुत करना। हर व्यक्ति के जीवन के दो पहलू होते हैं, अच्छे (सकारात्मक) और बुरे (नकारात्मक)। मनुष्य तभी तक मनुष्य है जब तक उसके जीवन में अच्छाई और बुराई का समान अनुपात है, वरना सिर्फ़ अच्छा–अच्छा दिखाने से वह देव तुल्य होगा और बुरा-बुरा दिखाने से नकरात्मक व्यक्तित्त्व का निर्माण होगा ! ये दोनों बातें असंभव हैं। इन बातों का कमोबेस समावेश सबमें होता है। साहित्य में वह अपने दोनों रूपों के साथ ही सही ढंग से चरितार्थ हो सकता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इन्हीं मूल्यों की मांग करता है। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के दोनों रूपों के साथ ही उसका वास्तविक रूप उभर आता है। राजेन्द्र यादव कहते हैं- "ईमानदार लेखक मूलतः अपने भीतर की खाई-खंदकों, शिखरों और ढलानों की यात्राओं, तकलीफों, तनावों या सुखों की अभिव्यक्ति के सिवा कुछ हो ही नहीं सकता और इस ग्रीनरूम में झांके बिना उसका कोई भी मूल्याङ्कन झूठा, बनावटी और फूहड़ यानी एकैडेमिक है।"[18] 'वे देवता नहीं हैं' में स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलुओं की पड़ताल की गयी है। काशीनाथ सिंह ने 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह के जीवन के लगभग सभी पक्षों का उद्घाटन किया है। उनके व्यक्ति रूप को देखने की कोशिश की है। काशीनाथ सिंह ने नामवर सिंह के गुण-अवगुण को बिना किसी लाग-लपेट के जुगलबंदी के साथ प्रस्तुत किया है। समकालीन हिंदी

संस्मरण लेखन में यह स्पष्ट परिलक्षित किया गया है कि स्मृत व्यक्ति, चाहे वह सामान्य जन अथवा साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, अभिनेता, संगीतकार आदि हो उसके अन्दर भी कमियां होती हैं। वह देव नहीं होता है। उनमें मनुष्य से अलग लक्षण नहीं होते हैं। वह भी अपने निजी जीवन में वे सब करते हैं जो एक साधारण मनुष्य करता है। काशीनाथ सिंह ने 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह का जो चरित्र उभारा है, उससे स्पष्ट होता है कि साहित्य में जो व्यक्ति इतनी वाहवाही बटोर रहा है, वहीं परिवार को लेकर इतना उदासीन है। कृष्णा सोबती ने अपने संस्मरण 'हम हशमत-3' में जहाँ एक तरफ सत्येन, जयदेव, निर्मला जैन, अशोक वाजपेयी आदि के अच्छे अनुभवों को साझा करती हैं वहीं दूसरी तरफ उनके व्यक्तित्व की कमियों को भी रेखांकित करते हुए चलती हैं। राजेद्र यादव अपने संस्मरण में रामविलास शर्मा, मोहन राकेश, अज्ञेय आदि के दोनों रूपों को बहुत सहजता से दिखाते हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में तटस्थता को लेकर बात करें तो समकालीन संस्मरणकार अपने संस्मरण में बहुत तटस्थ दिखाई देता है। वह स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व रेखांकन में भावनाओं की भावधारा में बहता नहीं है बल्कि तटस्थ होकर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है। काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' और कान्तिकुमार जैन द्वारा लिखित 'तुम्हारा परसाई' इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं। 'घर का जोगी जोगड़ा' में स्मृत व्यक्ति भाई और 'तुम्हारा परसाई' में गुरु हैं। दोनों में भावनाओं के भावावेश की प्रबल संभावना है लेकिन इन दोनों संस्मरणों को पढ़कर कहीं भी ऐसा नहीं लगता की लेखक भावुक हुआ है। वह संस्मरणकार की भूमिका में तटस्थ है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन की तटस्थता ही संस्मरण को उच्चता प्रदान करती है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को समग्रता से देखने की कोशिश करता है। मसलन, स्मृत व्यक्ति के जीवन के सामाजिक सरोकार कैसे हैं? उसकी राजनीतिक वैचारिकी क्या है? उसका पारिवारिक जीवन कैसा है? साहित्य में उनके योगदान कैसे हैं? आदि-आदि प्रश्नों पर दृष्टि डालता है। काशीनाथ सिंह अपने संस्मरण में नामवर सिंह के सिर्फ पारिवारिक जीवन को ही चित्रित नहीं करते बल्कि उनके साहित्यिक अवदान, सामाजिक सरोकार और राजनीतिक वैचारिकी आदि को भी विस्तार से रेखांकित करते हैं। वह नामवर सिंह के व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों की गहराई में उतरने की कोशिश करते हैं। हरिशंकर परसाई को याद करते हुए कान्तिकुमार जैन उनके जीवन से जुड़े अनेक पहलुओं से रू-ब-रू कराते हैं। मनोहर श्याम जोशी जब रघुवीर सहाय पर संस्मरण लिखते हैं तो उनके विद्यार्थी जीवन से लेकर साहित्यकार बनने के सफर तक का रेखांकन करते हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि समस्याओं का भी रेखांकन मिलता है। रघुवीर सहाय के जीवन की समस्याओं के माध्यम से मनोहर श्याम जोशी समाज की समस्या को उठाते हैं। इसी प्रकार काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक समस्याएं आयी हैं। काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह के माध्यम से परिवार की आर्थिक समस्याओं का रेखांकन किया गया है जिसमें भारत के तमाम परिवारों की आर्थिक समस्या का अक्स दिखाई देता है। राजेन्द्र यादव कृत 'वे देवता नहीं' और 'औरों के बहाने' को देखें तो उनके संस्मरण में कई जगह सीधे-सीधे समाज की समस्याओं को दिखाने की कोशिश की गयी है। वह मनुष्यता के ह्रास को लेकर काफी चिंतित हैं। आज के दौर में व्यक्ति कुछ और पाने की लालसा में स्वाभिमान की रक्षा करने में नाकाम है। राजेंद्र यादव हमारा ध्यान व्यक्ति के इस ह्रास की तरफ ले जाते हैं। साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों, समाजसेवियों आदि का मानवीय रूप प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं- "साहित्य में ऐसे महामानव कम हुए हैं जिनके लिए इतने उच्च विचार प्रकट करने की गुंजाइश हो...क्षेत्र और संभावनाएं भी उतनी नहीं हैं-अपने को स्थापित करने की तिकड़में, छोटे-बड़े पुरस्कार, यात्राएँ ज़माने-गिराने की उठा-पटक, प्रभावशालियों का चरणोदक-पान, बच्चों-शिष्यों को सही जगह फिट करने की जुगाड़, अहंकार और मूर्खताओं के कवच-कुंडल, व्यास और वाल्मीकि होने या दूसरों को सिद्ध करने के मुगालते-बस हो गयी जन्मपत्री- न किसी को मरवा पाए, न शीलभंग किया, न दस-बीस हजार करोंड़ पचा सके, न मंत्री, प्रधान-मंत्री की कुर्सी हथियायी...सचमुच बेचारे निरीह ही मारे गए-हाँ, प्रतिभा अदम्य थी...जो दूसरों की प्रशस्ति में खर्च होती रही।"[19]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ अन्य व्यक्ति चित्रों का रेखांकन मिलता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के साथ जुड़े प्रसंगों के माध्यम से दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारता है। राजेन्द्र यादव जब रामविलास शर्मा को याद करते हैं तो उनके साथ-साथ रांगेय राघव का व्यक्तित्व भी उभरकर आता है। लेखक दोनों से जुड़े प्रसंगों को उद्धृत करता है। दोनों के व्यक्तित्व का वे तुलनात्मक विश्लेषण करते हैं जिसके माध्यम से दोनों व्यक्तियों के व्यक्तित्व को समझने में सहूलियत होती है। वे लिखते हैं- "बैठकबाज, सुन्दर, अध्ययनशील और प्रतिभाशाली रांगेय राघव सबके प्रिय थे। रामविलास जी और पप्पू एक दूसरे के विलोम थे- एक सुकुमार, प्रियदर्शी, जीवंत और रचनाशील तो दूसरे कसरती, अक्खड़, अध्ययनशील- हमेंशा बौद्धिक ऊँचाई का अहसास कराता- लगभग 'बाहरी आदमी' का प्रभाव छोड़ने वाला आलोचक, प्रगतिशील लेखक संघ में कभी शायद कोई ऐसी नोंक-झोंक हुई थी कि दोनों एक-दूसरे से बचते थे।"[20] वे रामविलास शर्मा और रांगेय राघव के आपसी तनाव को बताते हैं, वहीँ अमृतलाल नागर से रामविलास शर्मा के आत्मीयता भरे सम्बन्ध की भी चर्चा करते हैं। दोनों की लम्बे समय से कायम मित्रता के बारे में भी बताते हैं।

काशीनाथ सिंह जब नामवर सिंह को याद करते हैं तो उनके साथ उनकी माँ, पिता, पत्नी, भाई, गुरु, दोस्त आदि का व्यक्तित्व भी उभरता हुआ नजर आता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार के व्यक्तित्व का चित्रांकन मिलता है। संस्मरणकार जब संस्मरण लिखता है तो स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ उसका व्यक्तित्व भी दर्ज होता है। संस्मरण में सिर्फ स्मृत व्यक्ति के साथ उसके सम्बन्ध ही नहीं, बल्कि उसके जीवन की व्यक्तिगत, वैचारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि पक्ष भी उद्घाटित होते हैं। मनोहर श्याम जोशी द्वारा लिखित संस्मरण 'रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण' में देखें तो संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ अपने जीवन की परिस्थितियों को बताता है। वह अपने और रघुवीर सहाय के जीवन की समस्याओं की साम्यता को परिलक्षित करता है। काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में देखें तो उनके संस्मरण में स्मृत व्यक्तियों के साथ-साथ उनका भी चरित्र उभरता दिखाई देता है। 'घर का जोगी जोगड़ा' में सिर्फ नामवर सिंह के व्यक्तित्व की शिनाख्त नहीं होती, उनके साथ संस्मरणकार का भी जीवन चरित स्पष्ट होता है। नामवर सिंह के साथ संस्मरणकार का पारिवारिक सम्बन्ध भी उभरकर आता है। लेखक जब अपने मित्र रामाधार या हिंदी के प्रसिद्द कवि त्रिलोचन पर लिखते हैं तो उनके साथ संस्मरणकार का सहज-सरल रूप उभरकर आता है। कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत-3' की बात करें तो इसमें लेखिका का चरित्र विभिन्न स्मृत व्यक्तियों के साथ अलग-अलग उभरता दिखाई देता है। जब वे सत्येन या जयदेव पर लिखती हैं तो उनका सहज, सरल और आत्मीय रूप उभरकर आता है। वहीं विभूतिनरायण राय और रवींद्र कालिया पर लिखते हुए उनके प्रखर तेवर को देखा जा सकता है। इसी तरह राजेन्द्र यादव के संस्मरण में देखें तो संस्मरणकार का व्यक्ति चित्र हर जगह नजर आता है। राजेन्द्र यादव अपने संस्मरण में यह कहते हुए नजर आते हैं- "औरों के बहाने' के साथ 'वे देवता नहीं हैं' मिलाकर पढ़ने से मेरे जीवन का काफी हिस्सा जाना जा सकता है।"[21] राजेन्द्र यादव के संस्मरण 'औरों के बहाने' शीर्षक से स्पष्ट होता है कि संस्मरणकार दूसरे के माध्यम से अपने बारे में भी कुछ कहना चाहता है। इसमें उसके विचारों के साथ-साथ उसका जीवन अभिव्यक्त होता है। वह व्यक्ति और समाज को लेकर अपनी राय व्यक्त करता है लेकिन उसमें उसका व्यक्तित्व भी झाँकता हुआ नजर आता है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "एक तरह देखा जाय तो सारा ईमानदार कथा-लेखन औरों के यानी पात्रों के बहाने अपनी ही बात कहना है। कहीं बात घटनाओं, वार्तालापों और चरित्रों के स्तर पर होती हैं तो कभी अनुभवों, स्थितियों और उनकी प्रतिक्रियाओं के रूप में, कहीं इन सबसे भी गहरी उतरकर संवेदना और अवधारणाओं, आस्था और निष्ठा की शक्ल में; होता सब 'अपना' या 'आत्मकथ्य' ही है।"[22] राजेंद्र यादव द्वारा मोहन राकेश, रामविलास शर्मा, अज्ञेय आदि पर लिखे संस्मरण को देखें तो वे स्मृत व्यक्ति के साथ स्वयं के व्यक्तित्व और उनके साथ अपने सम्बन्धों को दर्ज करते हुए नजर आते

हैं। राजेन्द्र यादव 'वे देवता नहीं हैं' में रामविलास शर्मा और अमृतलाल नागर के साथ कन्याकुमारी की एक यात्रा का जिक्र करते हैं। राजेन्द्र यादव को इस यात्रा के दौरान दोनों लेखकों को और अधिक समझने का मौका मिलता है। इस पूरे प्रकरण में लेखक का इनके साथ सम्बन्ध और व्यक्तित्व दोनों उभरता है। वे लिखते हैं- "यात्रा के दौरान रामविलास जी अपना हर काम चुपचाप और सबसे पहले निपटा देते, मैं भी लगभग आत्मनिर्भर था। बड़े घर के बेटे नागर जी प्राय: बौखलाए हुए कभी इस झोले में कुछ ढूढ़ते, कभी उसमें। सुबह और शाम का सिलसिला लम्बा होता। मैं उन्हें डाँटता और मदद करता"[23]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए संस्मरणकार अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के साथ-साथ स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त हो रहे उसके जीवन को देखने की कोशिश करता है। वह स्मृत व्यक्ति की रचनाओं के मुख्य पात्रों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व से करता है। पूर्ववर्ती संस्मरणों में संस्मरणकार उस तरफ सिर्फ हमारा ध्यान ले जाता है, जबकि समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति की रचनाओं को उद्धृत कर, उसके व्यक्तित्व और रचना के पात्रों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन भी करता है। मनोहर श्याम जोशी जब रघुवीर सहाय पर लिखते हैं तो वह उनके जीवन के तमाम प्रसंगों के जानकार ही नहीं, उनकी बनती-बिगड़ती रचनाओं के भी साक्षात् दर्शी हैं। उनकी रचनाएँ किन परिस्थितियों में लिखीं गयी? उस समय लेखक की आर्थिक-सामाजिक स्थिति क्या थी? स्मृत व्यक्ति की किस मनःस्थिति में उस रचना का जन्म हुआ है आदि बातें लेखक बखूबी जानता है । रघुवीर सहाय के जीवन की परिस्थितियाँ उनकी कविताओं में अभिव्यक्त होती है। वे अपने पिता के संघर्षों को कविता में शब्दांकित करते हुए लिखते हैं- "यही मैं हूँ/और जब मैं यही होता हूँ/ थका, या उन्हीं के-से वस्त्र पहने, जो मुझे प्रिय हैं/दुखी मन में उतर आती है पिता की छवि/अभी तक जिन्हें कष्टों से नहीं निष्कृति/उन्हीं अपने पिता की मैं अनुकृति हूँ/यही मैं हूँ......शक्ति दो, बल दो, हे पिता/ जब दुःख के भार से मन थकने आये/पैरों में कुली की-सी लपकती चाल छटपटाए/इतना सौजन्य दो कि दूसरों के बक्स-बिस्तर घर तक पहुँचा आयें/कोट की पीठ मैली न हो, ऐसी व्यथा-/शक्ति दो।"[24] संस्मरणकार जब स्मृत व्यक्ति का इस आधार पर मूल्याङ्कन करता है तो इससे दोनों के सम्बन्धों की गहराई का पता चलता है। इससे स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के बहुआयामी पक्षों को समझने में आसानी होती है। अज्ञेय के संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "बिना उनके इस बहुआयामी व्यक्तित्व को समझे, उनके साहित्य को नहीं समझा जा सकता है और बिना उनके साहित्य को समझे उनके व्यक्तित्व में झांक सकना मुश्किल है।"[25]

हिंदी संस्मरण में व्यक्ति और समाज तो हमेशा केंद्र में रहे हैं, लेकिन किसी शहर विशेष के माध्यम से व्यक्ति और समाज को देखना, समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में एक

नया प्रयोग है। मनोहर श्याम जोशी 'लखनऊ मेरा लखनऊ' में लखनऊ शहर को संस्मरण का माध्यम बनाकर, व्यक्ति और समाज के विभिन्न पहलुओं से रू-ब-रू कराते हैं। इसमें संस्मरणकार लखनऊ शहर से जुड़ी स्मृतियाँ और आत्मीय व्यक्तियों को याद करता है। लेखक शहर को सिर्फ शहर के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि उस शहर के परिवेश में उसके बनते-बिगड़ते व्यक्तित्व में आत्मीय सम्बन्धों की क्या भूमिका रही है? इन तमाम प्रसंगों को परिलक्षित करता है। उस परिवेश के आईने में देखकर व्यक्ति स्वयं के व्यक्तित्व को तराश सकता है। संस्मरणकार के व्यक्तित्व के निर्माण में लखनऊ शहर की भूमिका आईने की तरह रही है। वहाँ से जुड़े अनेक साहित्यकारों के व्यक्तित्व का प्रभाव संस्मरणकार के व्यक्तित्व निर्माण पर पड़ा है। ममता कालिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार' में वह अपने आत्मीय सम्बन्धों के साथ-साथ शहर के सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियों की चर्चा करती हैं। वे लिखती हैं- "जितने शहरों पर लिखा उतने से ज्यादा अभी मेरे अन्दर कसमसा रहे है, अपनी हरी-पीली-लाल बत्तियों के साथ जल-बुझ-जल रहे हैं। कभी लखनऊ का गौतमपल्ली और हजरतगंज यादों में कौंध जाता है, कभी काठगोदाम का डाकबंगला। यकायक ध्यान आ जाता है भिलाई का साफ़-सुथरा परिसर कि उसके ऊपर सुपर इम्पोज हो जाती हैं भोपाल की ऊँची-नीची सड़कें।"[26]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में आदर्श और नैतिक मूल्य का ह्रास दिखाई देता है। संस्मरणकार नैतिक मूल्यों के अस्वाभाविक आवरण को हटाता हुआ यथार्थ मूल्यांकन का आग्रही नजर आता है। पूर्ववर्ती संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के नैतिक रूप का रेखांकन किया जाता था लेकिन समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इस परंपरा को तोड़ता हुआ नजर आता है। हमारे समाज में शराब पीना, प्रेम करना, जुआ खेलना आदि सामाजिक रूप से ग्राह्य नहीं था। इन्हें जीवन का स्वाभाविक रूप न मानकर नैतिक मूल्यों के ह्रास का कारण माना जाता था। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इसे स्वाभाविकता को समेटता हुआ सहजता से रेखांकित करता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के स्वाभाविक और यथार्थ रूप को प्रस्तुत करता है। कृष्णा सोबती 'हम हशमत-3' में सत्येन के घर बितायी एक शाम का जिक्र करती हैं, जिसमें वह अपने पुरुष साथियों के साथ चियर्स करती नजर आती हैं। शाम और चियर्स का जितना सहज रूप संस्मरण में आया है वह संस्मरण के बने-बनाए नैतिक ढांचे को तोड़ता नजर आता है। 'शराब' भारतीय समाज में एक व्यसन की वस्तु मानी जाती है। शराब पीने वाले या किसी तरह का नशा करने वाले को अच्छे रूप में नहीं लिया जाता है। गालिब छूटी शराब में लेखक शराब का सामाजिक-सांस्कृतिक रूप में चित्रण करता है जो साहित्य में थोपें गए नैतिक मूल्यों के ढांचे को तोड़ता है। लेखक का यह कहना कि हम खाते-खाते नहीं, पीते-पीते मरने वाले लोग हैं, यह पारम्परिक आदर्शों या नैतिकता को तोड़ता है, जो भारतीय समाज के ढाँचे को निर्धारित करते है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन ने आमजन मानस को जगह दी हैं। पूर्ववर्ती संस्मरणों में देखा गया है कि प्रभावशाली व्यक्तित्व को संस्मरण का आधार बनाया जाता था। इसका कारण समाज पर अच्छा असर डालना था। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन आम-जन को संस्मरण के केंद्र में लाया। यह व्यक्ति समाज के लिए सामान्य था लेकिन संस्मरणकार के लिए विशिष्ट था। स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज को भले ही प्रभावित नहीं करता था लेकिन संस्मरणकार कहीं न कहीं जरूर प्रभावित था। राजेन्द्र यादव कृत 'वे देवता नहीं हैं' में मीरा महादेवन, मनमोहन ठाकौर आदि के व्यक्तित्व से संस्मरणकार काफी प्रभावित हैं। मीरा कुमार एक मामूली सामाजिक कार्यकर्ता है जो मिल या ठीका पर काम करने वाली श्रमिक महिलाओं के छोटे-छोटे बच्चों की देखभाल करती हैं। मनमोहन ठाकौर एक सामान्य व्यक्ति हैं लेकिन विभिन्न विषयों के ज्ञाता थे। इनका व्यक्तित्व लेखक को प्रभावित करता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के संबंधों का निष्पक्ष मूल्यांकन देखने को मिलता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के साथ संबंधों का वही रूप रेखांकित करता है जैसा वह अतीत में था और वर्तमान में है। मनोहर श्याम जोशी रघुवीर सहाय को स्मरण करते हुए उनके साथ अपने रागात्मक संबन्ध की चर्चा करते हैं लेकिन बाद में संबंधों की दूरी और उसके कारणों को भी ज्यों का त्यों दिखाते हैं। रांगेय राघव पर लिखे गए संस्मरण में राजेन्द्र यादव अपने संबन्ध के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को उद्धृत करते हैं। वे अपने संस्मरण 'औरों के बहाने' में लिखते हैं- "जहां उनके बेहद दुर्बल शरीर को देखकर मुझे धक्का-सा लगा, वहीं बात करने का लहजा वही था, जिसकी प्रत्याशा थी। लगा, शरीर चाहे सुख गया हो और सिर के गंजेपन के कारण, देखने में वे चाहे टिपीकल दाक्षिणात्य लगते हों- लेकिन अंदर व्यक्ति यह वही है, जिससे मैं नौ-दस साल पहले मिला था।"[27] कृष्णा सोबती ने अपने संस्मरण 'हम हशमत-3' में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व और अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को उसी रूप में प्रस्तुत किया है जिस रूप में उनके साथ घटित हुआ है। विभूतिनारायण राय पर बात करते हुए उनके द्वारा स्त्रियों पर सार्वजनिक रूप से अभद्र टिप्पणी करने का वे पुरजोर विरोध ही नहीं करतीं बल्कि उस टिप्पणी को हर नारी समाज की गरिमा पर चोट के रूप में लेते हुए विभूतिनारायण राय को तमाम प्रश्नों के घेरे में खड़ा कर देती हैं। वे कहती हैं- "बुरा न मानिएगा आपका 'बेबाक' इंटरव्यू कई बार पढ़ने के बाद इस खाकसार की समझ में यही बैठा कि जनाब ने 'बिस्तरबाजी' शब्द के लिए ही स्त्री-लेखन को अपने इंटरव्यू में केंद्रित किया है। अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर 'हाई-कास्ट' का बोझ ढोते-ढोते राष्ट्र के

संवैधानिक, लोकतांत्रिक मूल्यों की अवज्ञा और अपमान करने लगे। जनाब ने फरमान कि बेवफाई का उत्स है हिंदी समाज का स्त्री-विमर्श। आपने आलोचकीय हस्ती के खुमार में यह भी ऐलान किया कि स्त्री-विमर्श शरीर पर केंद्रित है।"[28] पूर्ववर्ती संस्मरणों में संस्मरणकार उन्हीं पर उस रूप में संस्मरण लिखता था जिससे उसका अच्छा संबंध बना रहे। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इस परंपरा को तोड़ते हुए नजर आता है। संस्मरणकार उनपर भी संस्मरण लिख रहा है जिससे उसका पहले घनिष्ठ संबन्ध था लेकिन बाद में मनमुटाव हो गया है। इस तरह के संस्मरणों में एक ख़ासियत देखने को मिलती है कि संस्मरणकार से स्मृत व्यक्ति से भले मनभेद और मतभेद हो, उनके बीच की अंतरंगता कम हुई हो पर उनके व्यक्तित्व के मूल्यांकन में कोई कमी नहीं होती है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के साथ अपने सम्बन्ध को हू-ब-हू उसी रूप में चित्रित करता है। भले ही उनके संबंध पहले हो और बाद में चाहे जैसा रहा हो।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन देखने को मिलता है। संस्मरणकार एक स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व की तुलना दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व से करता है। इसमें एक की खूबियों की तुलना, दूसरों की खामियों से की जाती है। यह तुलना स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को धूमिल करने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व में और अधिक स्पष्टता लाने के लिए की जाती है। इस तुलनात्मक अध्ययन में तीन या ज्यादा व्यक्तियों का व्यक्तित्व उभरकर आता है। नामवर सिंह पर संस्मरण लिखते हुए काशीनाथ सिंह उनके पढ़ाने की कला की तुलना हजारीप्रसाद द्विवेदी से करते हैं। वे लिखते हैं- “जहाँ द्विवेदी जी गोताखोर नहीं, उड़ाका थे। उड़ाने भरनेवाला। टेक्स्ट पर केवल विश्राम के लिए उतरते थे, फिर क्षण भर ठहरकर उड़ान पर निकल जाते थे साहित्य के अनंत आकाश में।...नामवर न डूबते थे, न उड़ते थे। उन्होंने पानी को चीरते हुए तैरने का एक ऐसा रास्ता निकाला जिसमें सर आकाश में रहे और धड़ पानी में। वे बीच-बीच में लहरों से खेलते भी थे और छपाके के साथ किल्लोल भी करते थे।”[29] इसी प्रकार काशीनाथ सिंह कृत ‘याद हो कि न याद हो’ हो में नामवर सिंह और विजयमोहन के अकेलेपन को लेकर लिखते हैं- “दिल्ली में अकेले हैं नामवर भी और विजयमोहन भी, लेकिन नामवर का अकेलापन उस ब्रह्मा का अकेलापन है जिसके भीतर ‘सृष्टि’ है, जो जब चाहे तब दुकेला-तिकेला हो लें। मगर विजयमोहन का अकेलापन बेजान खड़ी दीवारों का अकेलापन है- शाम और भोर में दी जानेवाली अजान की तरह, जो धरती छोड़ देती है मगर कहीं नहीं पहुँचती।”[30] राजेन्द्र यादव कृत ‘वे देवता नहीं हैं’ में रामविलास शर्मा पर बात करते हुए वे उनकी तुलना अमृतलाल नागर और रांगेय राघव से करते हैं। वे रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व के तमाम सकारात्मक पहलुओं को बताते हुए नकारात्मक पक्ष को भी दिखाते हैं जिससे व्यक्ति अपने

सम्पूर्णता के साथ चित्रित होता है। रामविलास शर्मा और रांगेय राघव की तुलना करते हुए राजेन्द्र यादव लिखते हैं- “बैठकबाज, सुन्दर, अध्ययनशील और प्रतिभाशाली लेखक रांगेय राघव सब के प्रिय थे। रामविलास जी और पप्पू एक दूसरे के विलोम थे- एक सुकुमार, प्रियदर्शी, जीवंत और रचनाशील तो दूसरा कसरती, अक्खड़, अध्ययनशील-हमेंशा बौद्धिक ऊँचाई का अहसास कराता।”[31] संस्मरणकार यह तुलना सिर्फ व्यक्तित्व के मूल्यांकन में नहीं बल्कि साहित्यिक मूल्यांकन में भी करता है। राजेन्द्र यादव यशपाल को जब याद करते हैं तो उनके साहित्यिक अवदान को बताना नहीं भूलते। उनके साहित्य की तुलना जैनेन्द्र, अज्ञेय और प्रेमचन्द से करते हैं। उनका कहना है, प्रेमचन्द की साहित्यिक दृष्टि से जिन सामाजिक समस्याओं की पड़ताल की गयी हैं उसको यशपाल की दृष्टि और विस्तार देती है।

समकालीन हिंदी संस्मरणों में भाषाई नैतिकता टूटती हुई नजर आती है। इस समय के संस्मरणों में लेखक स्मृत व्यक्ति के लिए भारी आदर्शवादी शब्दों का प्रयोग नहीं करता है। वह स्मृत व्यक्ति के लिए उसी तरह के शब्दों का प्रयोग करता है जैसा उनके साथ व्यावहारिक जीवन में करता रहा है। काशीनाथ सिंह ‘याद हो कि न याद हो’ में रवीन्द्र कालिया, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर के लिए जिन शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखते हैं, उससे संस्मरणों में बनावटी भाषा का ढाँचा टूटता हुआ नजर आता है- “किस्सा कहानी में नामी-गिरामी! शराफत की लत के मारे बेचारे, इसके बावजूद परम हरामी! इन हरामियों में सिरमौर रवीन्द्र कालिया। मेरा ख्याल है कि वह यदि ‘हरामीपन’ पर उतर आए तो राजेन्द्र यादव तो मान ही लीजिए आजकल शरीफ आदमी हो चले हैं, लेकिन कमलेश्वर जैसे ‘चूड़ामणि’ भी उसके आगे पानी भरें।”[32] संस्मरणकार के मन में स्मृत व्यक्ति को लेकर जो भाव है उसे वह स्पष्ट कहने में कोई गुरेज नहीं करता है। जो मन के अन्दर है, वही बाहर भी दिखाई देता है। स्मृत व्यक्ति के लिए अभिव्यक्ति का यह माध्यम, बनावटी भाषाई अभिव्यंजना से बाहर निकालकर संस्मरण को ज्यादा यथार्थ बनाता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन अपने पूर्ववर्ती संस्मरणों से ज्यादा समृद्ध है। उसकी समृद्धि उसके वैविध्य में निहित है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में कथ्य और स्वरूपगत भिन्नता, उसे उसके पूर्ववर्ती संस्मरणों से अलग करती है। संस्मरणकार जिस प्रकार व्यक्ति और समाज की विभिन्नता को वैविध्यपूर्ण रूप में प्रस्तुत कर रहा है इससे संस्मरण के विकास की संभावनाएं और अधिक बढ़ जाती है।

संदर्भ सूची :

1. पद्म पराग, पद्म सिंह शर्मा, पृष्ठ-ङ ।
2. संस्मरण, बनारसीदास चतुर्वेदी, पृष्ठ 108 ।
3. वही, पृष्ठ 90 ।
4. वही, पृष्ठ 94 ।
5. वही, पृष्ठ 138 ।
6. पथ का साथी, महादेवी वर्मा, पृष्ठ-दो शब्द ।
7. वही, पृष्ठ-दो शब्द ।
8. दिनकर रचनावली-खंड-12, संपा-नन्द किशोर, तरुण कुमार, पृष्ठ 19 ।
9. वही, पृष्ठ 58 ।
10. वही, पृष्ठ 95 ।
11. वही, पृष्ठ 95 ।
12. वही, पृष्ठ 73 ।
13. वही , पृष्ठ 205 ।
14. वही, पृष्ठ 186 ।
15. वही, पृष्ठ 191 ।
16. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 40 ।
17. वही, पृष्ठ 40-41 ।
18. वही, पृष्ठ 17 ।
19. वही, पृष्ठ 8 ।
20. वही, पृष्ठ 14 ।
21. वही, पृष्ठ 9 ।
22. वही, पृष्ठ 7 ।
23. वही, पृष्ठ 16 ।
24. रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 9 ।
25. वही, पृष्ठ 27 ।
26. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 5 ।
27. औरों के बहाने, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 21 ।
28. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 97 ।
29. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 84 ।
30. याद हो की न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 100 ।
31. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 14 ।
32. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ-90 ।

तीसरा अध्याय

समकालीन हिंदी संस्मरण : वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य

(i) घर-परिवार के व्यक्तियों पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र।

(ii) मित्रों अथवा सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र।

(iii) आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र।

समकालीन हिंदी संस्मरण : वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य

'हर आदमी में होते हैं दस-बीस आदमी, जिसको भी देखो कई बार देखो'। आज का समय जितना जटिल है उससे कम व्यक्ति मन की जटिलता नहीं है। व्यक्ति दिन-प्रतिदिन खुद से संघर्ष कर रहा है। समय की आपाधापी ने मनुष्य के जीवन को इतना अस्त-व्यस्त कर दिया है कि वह भौतिक सुख और सामाजिक स्टेट्स की होड़ में खुद से दूर जाता हुआ दिखाई दे रहा है। 'और' पाने की चाह व्यक्ति को व्यक्ति मन से दूर ले जा रही है। वह खुद को भूला हुआ, भौतिक चीजों की पीछे भाग रहा है। भौतिक सुख सुविधाओं की चाह जितनी बलवती हो रही है, उसके सम्बन्धों का दायरा उतना कमजोर और संकुचित होता जा रहा है। मनुष्य दिन-प्रतिदिन व्यक्तिनिष्ठता की तरफ बढ़ रहा है। व्यक्ति मन की जटिलताओं को समझना मुश्किल होता जा रहा है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन उस जटिलता, बढ़ते अन्तर्विरोध और मन की अस्थिरता को परत-दर-परत उघाड़ने में ज्यादा सहायक सिद्ध हो रहा है।

संस्मरण एक ऐसी विधा है जो व्यक्ति जीवन के यथार्थ से सीधे जुड़ती है। यह विधा व्यक्ति जीवन के विभिन्न आयामों से प्रत्यक्ष रूप से परिचित कराती है। इसमें हम व्यष्टि-समष्टि के कोरे यथार्थ से रू-ब-रू होते हैं। संस्मरण विधा भले ही व्यक्ति के जीवन का यथार्थ रेखांकन करती है लेकिन उस यथार्थ की भी एक सीमा होती हैं। संस्मरणकार उस दायरे में रहकर ही स्मृत व्यक्ति के जीवन की वास्तविकता का रेखांकन करता है। स्मृत व्यक्ति का "व्यक्ति चित्र प्राय: वास्तविक होता है। मतलब प्राय: किसी जाने-पहचाने या वास्तविक व्यक्ति को केंद्र में रखकर संस्मरण की रचना की जाती है। इसकी अनेक सीमाएं होती हैं क्योंकि आजादी कम होती है पर जिस व्यक्ति का शब्द चित्र बनाया जा रहा है उसे दूसरे लोग भी जानते हैं, इसलिए पूरी सतर्कता बरतनी आवश्यक होती है।"[1] स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को संस्मरणकार परत-दर-परत खोलता जाता है। उसके व्यक्तित्व से लोगों को परिचित कराता है। लेखक स्मृत व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि कभी-कभी वह व्यक्ति विशेष की समस्या न होकर पूरे समाज की समस्या हो जाती है।

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के दो रूप होते हैं- एक बाह्य रूप और दूसरा आंतरिक रूप। बाह्य रूप के बारे में उससे जुड़े लगभग सभी लोग जानते हैं लेकिन आंतरिक रूप के बारे में सिर्फ वही व्यक्ति जानता है जिससे उसकी घनिष्ठता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्मृत व्यक्ति के दोनों रूपों को संस्मरणकार रेखांकित करने की कोशिश करता है लेकिन उसका झुकाव व्यक्तित्व के उस रूप की ओर होता है जिससे लोग या तो परिचित नहीं होते हैं या उसके जानने वालों की संख्या बहुत कम होती है। संस्मरणकार संबंधों की घनिष्ठता के आधार पर व्यक्ति के अंतर्मन को देखने की कोशिश करता है। किसी व्यक्ति के आंतरिक मन को बिना व्यक्तिगत संबंधों की घनिष्ठता के समझना आसान नहीं है। संस्मरण में स्मृत व्यक्ति के अंतर्मन को समझे बिना, व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता। यह कहा जा सकता है कि स्मृत "व्यक्ति के अंतर्मन की जटिलता यदि व्यक्तिचित्र में नहीं तो उसका लिखना, न लिखने के बराबर माना जाएगा। अंतर्मन आसानी से खुलने वाला 'दरवाज़ा' नहीं है। अंतर्मन

की जटिलताएं कभी-कभी इतनी अंतर्विरोधी होती हैं कि उन्हें समझकर तर्क संगत ढंग से रखना मुश्किल हो जाता है।"[2] फिर भी, लेखक को उन अंतर्विरोधों की चुनौती का सामना करना पड़ता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार इन्हीं आंतरिक रूपों की पड़ताल करता है।

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व अथवा चरित्र का उद्घाटन करना, सबसे कठिन और मुश्किल काम है। इसमें संस्मरणकार को तमाम चुनौतियों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लेखक या साहित्यकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती, स्मृत व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन के प्रसंगों को लेकर होती है। संस्मरणकार के लिए यह तय कर पाना बड़ा मुश्किल होता है कि वह स्मृत व्यक्ति के जीवन से जुड़े किन प्रसंगों को शामिल करे, जिससे उसका व्यक्तिगत जीवन और संबंध प्रभावित न हो। इसके लिए संस्मरणकार को संयमित और तटस्थ नजरिया अपनाना पड़ता है। संस्मरण जितना यथार्थ होगा संस्मरणकार के सामने यह समस्या उतनी ही जटिल रूप में दिखाई देती है। संस्मरणकार इस जटिलता का सामना तटस्थ और संयमित दृष्टिकोण से करता है। असगर वजाहत के शब्दों में कहें तो "व्यक्तिचित्र लिखना एक तरह से तलवार की धार पर चलने जैसा है"[3]

प्रारम्भिक हिंदी संस्मरण लेखन और समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो दोनों के पारम्परिक भेद को समझा जा सकता है। समकालीन हिंदी संस्मरणों में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के सकारात्मक और नकारात्मक पहलू को लिखने में कोई गुरेज नहीं करता है। वह स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के दोनों पक्षों को रेखांकित करता है, जबकि बीसवीं शताब्दी के नौवें दशक से पहले के संस्मरणों में यह चीज देखने को नहीं मिलती। इन संस्मरणों में निष्पक्ष मूल्यांकन की कमी दिखती है। उस समय के संस्मरणों में संस्मरणकार उन्हीं लोगों पर संस्मरण लिखते थे जिनके साथ उनके अच्छे सम्बन्ध होते थे और उनका व्यक्तित्व प्रभावी होता था। संस्मरणकार का प्रभावी व्यक्तित्व पर ज्यादा फोकस होता था। इसका कारण समाज पर अच्छा असर डालना होता था। संस्मरणकार अच्छे संबंधों को बनाए रखने तथा समाज पर अच्छा प्रभाव डालने के लिए स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का एकांगी मूल्यांकन करता था। वे सम्बन्धों की एकरसता को बनाए हुए, संस्मरण लिखने में विश्वास करते थे। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का एकांगी मूल्यांकन न करके संस्मरणकार उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालता है। वह उसके व्यक्तित्व के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों का रेखांकन करता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में यह देखने को मिलता है कि लेखक और स्मृत व्यक्ति के आपसी संबंध जैसे भी हो लेकिन उसका असर स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व मूल्यांकन पर नहीं पड़ता है। लेखक आपसी सम्बन्धों में बदलाव आने के बावजूद स्मृत व्यक्ति का निष्पक्षता से मूल्यांकन करता है। अगर वह अपने व्यक्तिगत संबंधों की चर्चा करता है तो उसके दोनों पहलुओं को स्पष्ट करता है। लेखक संबंध की सुखद स्मृतियों के साथ-साथ संबंध में आए तनाव और उनके कारणों को भी स्पष्टता से रेखांकित करता है। इस तरह के संस्मरणों में मनोहर श्याम जोशी द्वारा रघुवीर सहाय पर लिखे गये संस्मरण को देखा जा सकता है।

संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति दोनों के सम्बन्धों में उतार-चढ़ाव आता है लेकिन लेखक अपने संबंध को (जैसा पहले और बाद में हुआ) उसी रूप में दिखाने की कोशिश करता है। रांगये राघव पर लिखते हुए राजेन्द्र यादव अपने शुरुआती संबंधों की घनिष्ठता को बताते हैं। वे बाद में संबंधों में आए तनाव का जिक्र भी करते हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का केंद्र बिन्दु व्यक्ति के जीवन का कोरा यथार्थ है। यह जीवन का कोरा यथार्थ ही संस्मरण को ज्यादा प्रमाणिक बनाता है। साहित्य में कथ्य को लेकर समय-समय पर लोगों की मांग बदलती रही है। आज का पाठक वर्ग कल्पना की चादर में लिपटे हुए यथार्थ का नहीं है बल्कि वह व्यक्ति और समाज के वास्तविक और कोरे यथार्थ का आग्रही है। संस्मरण साहित्य इस मांग पर खरा उतरता हुआ नजर आता है।

संस्मरण किसी घनिष्ठ मित्र या पूर्ण परिचित व्यक्ति पर लिखे जाते हैं। इन संस्मरणों में व्यक्ति के जीवन के उन पक्षों को उद्घाटित किया जाता है, जिसे लोग नहीं जानते हैं। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा', कांतिकुमार जैन कृत 'जो कहूँगा सच कहूँगा', मनोहर श्याम जोशी कृत 'रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण', रवीन्द्र कालिया कृत 'ग़ालिब छूटी शराब', ममता कालिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार', राजेन्द्र यादव कृत 'वे देवता नहीं हैं', कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत'(भाग-3) आदि को इस श्रेणी में शामिल किया गया है। इन संस्मरणों में व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व और उसके जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं का मूल्यांकन किया गया है। इसमें स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार और इनके सहकर्मियों का व्यक्तिगत जीवन भी उभरकर आता है। समकालीन हिंदी संस्मरणों में विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विस्तार रूप देखने को मिलता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन को देखा जाय तो संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को विभिन्न आयामों से देखने की कोशिश करता है, जिसमें स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ अनेक व्यक्तिओं का व्यक्ति चित्र उभर कर आता है।

(1) घर-परिवार के व्यक्तियों पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र।

(2) मित्रों अथवा सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र।

(3) आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति में चित्र ।

घर-परिवार के व्यक्तियों_पर लिखे गए संस्मरण में व्यक्ति चित्र

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में घर-परिवार के व्यक्ति द्वारा लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र उभारने की कोशिश की गई है। इस तरह के संस्मरणों में संस्मरणकार घर का कोई व्यक्ति होता है जो घर के ही किसी व्यक्ति पर संस्मरण लिखता है। इसमें स्मृत व्यक्ति के जीवन को संस्मरणकार नजदीक से देखता-समझता हैं, उसके व्यक्तित्व के हर पहलू से बखूबी परिचित होता है। संस्मरणकार अपने अनुभवों को संस्मरण में शब्दबद्ध करने की कोशिश करता है। चूंकि संस्मरणकार परिवार का व्यक्ति होता है इसलिए स्मृत व्यक्ति के वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य के मूल्यांकन को लेकर कई प्रश्न हमारे सामने उभरता है। इन प्रश्नों को बिना स्पष्ट किये पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य को समझना मुश्किल है। पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों को लेकर पहला प्रश्न तो यही उठता है कि क्या संस्मरणकार पारिवारिक संबंधों की भावुकता से मुक्त होकर स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का तटस्थ और संयमित मूल्यांकन करता है? क्या स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का निष्पक्ष मूल्यांकन संस्मरणकार करता है? क्या स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का सही रूप पाठक के सामने उभारता है? क्या संस्मरणकार अपने और स्मृत व्यक्ति के बीच संबंधों की मर्यादा का ख्याल रखते हुए या अतिक्रमण करते हुए व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है? पाठक के सामने इस तरह के अनेक प्रश्न उठते हैं। इन तमाम प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए, इस अध्याय में बात की जाएगी। समकालीन हिंदी संस्मरणों को केंद्र में रखकर (जो परिवार द्वारा परिवार के व्यक्ति पर लिखे गए हो) इन तमाम जिज्ञासाओं और प्रश्नों का समाधान किया जाएगा।

पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व के उन पहलू से संस्मरणकार रू-ब-रू कराता है, जिससे लोग अनभिज्ञ रहते हैं। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष को तो लगभग सभी जानते हैं लेकिन उसके व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष को वही जानता है जिससे उसका घनिष्ठ संबंध हो। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष को समझना ही, संस्मरण की महत्त्वपूर्ण कसौटी में से एक है। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के इसी आंतरिक पक्ष का उद्घाटन संस्मरणकार करता है। पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार उसके जीवन और व्यक्तित्व से जुड़े तमाम प्रसंगों से रू-ब-रू रहता है। काशीनाथ सिंह कृत ‘घर का जोगी जोगड़ा’, पारिवारिक व्यक्ति पर लिखा गया संस्मरण है। इसमें नामवर सिंह के जीवन और व्यक्तित्व के उन पक्षों का रेखांकन मिलता है, जिससे ज्यादातर लोग अपरिचित हैं। नामवर सिंह के साहित्यिक योगदान, राजनीतिक सक्रियता आदि बाह्य पक्षों को तो सभी जानते होंगे लेकिन आंतरिक पक्षों को पारिवारिक व्यक्ति ही समझ सकता है। काशीनाथ सिंह ने नामवर सिंह को साहित्यिक योगदान के पीछे के कठिन परिश्रम को देखा है। उनके राजनीतिक सक्रियता के लंबे संघर्ष को नजदीक से अनुभव किया है। नामवर सिंह सन् 1959 में ‘कम्युनिस्ट पार्टी’ से चंदौली संसदीय क्षेत्र से लोकसभा के उपचुनाव में उम्मीदवार थे। काशीनाथ सिंह उनके चुनावी जीवन की व्यस्तता और पार्टी के

प्रति समर्पण भाव के संदर्भ में कहते हैं- "वे दिन मुझे याद हैं जब विश्वविद्यालय से लोलार्क कुंड और लोलार्क कुंड से गोदौलिया आने-जाने को छोड़कर रात-दिन पढ़नेवाले और अमन-चैन की जिन्दगी बसर करनेवाले नामवर ने दो-ढाई महीने तक न रात को रात जाना, न दिन को दिन। जाड़े का मौसम। धूल में अँटा पड़ा शरीर। बिखरे बाल। न ठीक से खाना न पीना। रात को कभी दो बजे, कभी भोर में चार बजे आते थे, डाक देखते थे और फिर जीप से वापस।कभी सोते या बिस्तरे पर लेटते मैंने नहीं देखा"[4] जो नामवर सिंह साहित्यिक दुनिया में जितने भरे-पूरे हैं वहीं वास्तविक जीवन में कितने अकेले हैं? इसका अंदाजा इस कथन से लगाया जा सकता है- "यह बेटी नहीं विदा हो रही थी, उनके जीवन में सहसा कुछ दिनों के लिए आ गया सुख और अमन-चैन का घर विदा हो रहा था। एक पुल था जो ढह रहा था- उसके बाद फिर वही निचाट अकेलापन और कूंथता सन्नाटा"[5] 'औरों के बहाने' में राजेन्द्र यादव पर संस्मरण लिखते हुए मन्नू भण्डारी उनके व्यक्तित्व के तीन रूपों को रेखांकित करती हैं। राजेन्द्र यादव परिवार और अभिभावकों के बीच बैठकर उनका उपदेश समान रूप से ग्रहण करना, बाहर की दुनिया में हँसते-खिलखिलाते और गुरुआना लहजे में उपदेश देने वाले राजेन्द्र यादव वास्तविक जीवन में बहुत अनमने और बेचैन थे। इस संदर्भ में मन्नू भण्डारी कहती हैं- "कोई चीज दिमाग में आती है, और वह कागज पर उतरती है, उसके बीच का रूप... अनमनापन, मौन, बेचैनी, काफी, सिगरेट, बात-बात पर झल्लाहट..दूसरे शब्दों में कहूँ तो पूरी कवायद।"[6]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तिगत संबंधों (खासकर पारिवारिक संबंधों) की बारीकियों को ज्यादा बेहतर ढंग से समझता है, जो सहकर्मियों, मित्रों आदि के लिए मुश्किल है। काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह के जीवन की बारीकियों का गहराई से रेखांकन करते हैं। मसलन- नामवर सिंह की पारिवारिक स्थिति, परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के साथ उनका संबंध, परिवार के बीच उनका महत्त्व, परिवार का उनके जीवन में कितना महत्त्व, उनके जीवन के साहित्यिक, राजनीतिक और आर्थिक संघर्ष, बनती बिगड़ती साहित्यिक अभिरुचियाँ आदि का बहुत बारीक चित्रण किया गया है। इन तमाम प्रसंगों की बारीकियों को वही समझ सकता है जो हर परिस्थिति में स्मृत व्यक्ति के साथ हो। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नामवर सिंह की हर परिस्थिति के साक्षी काशीनाथ सिंह न रहे हो। नामवर सिंह के पारिवारिक के प्रति भावनात्मक लगाव के संदर्भ काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "भैया की आँखों में आँसू देखे मैंने- जीवन में पहली बार और वह भी बेटे की शादी के समय। वे खुशी के आँसू थे। माँ का जब देहांत हुआ था तब नहीं आए थे आँसू। दर्द या दुख के समय बच-बचा के निकल भागने में महारथ हासिल है उन्हें। लेकिन '78 में बार-बार आंखे भर या रही थीं उनकी। बेटे ने वह किया था जो उनके नसीब में नहीं था"[7] राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने' में मन्नू भण्डारी के व्यक्तित्व के उन तमाम पहलुओं को रेखांकित करते हैं, जिसे सिर्फ एक पारिवारिक व्यक्ति

ही समझ सकता है। राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी पति-पत्नी हैं। वे उनके व्यक्तित्व के बारीक रेशों को बहुत स्पष्टता से प्रकट करते हैं, मसलन- पति-पत्नी के रिश्ते, इस संबंध के अंतर्विरोध, आपसी मतभेद, व्यक्तित्व के अंतर्विरोध, खूबियाँ-खामियाँ, पसंद-नापसंद, व्यक्तित्व की उदारता आदि पर बहुत सहजता से दृष्टि डालते हैं। मन्नू भण्डारी द्वारा राजेन्द्र यादव पर लिखे गए संस्मरण में लेखिका, अपने और राजेन्द्र यादव के संबंधों को लेकर तमाम बारीकियों को रेखांकित करती हैं। मन्नू भण्डारी एक ओर अपने भीतर की लेखकीय प्रतिभा को उभारने का श्रेय राजेन्द्र यादव को देती हैं, वहीं दूसरी ओर पति-पत्नी से जुड़े जीवन के तमाम सुखों से वंचित होने का जिम्मेदार भी ठहराती हैं। उनका कहना है कि वह राजेन्द्र यादव से घृणा भी करती हैं लेकिन भीतर-ही- भीतर कहीं प्यार भी। लेखिका अपने संबंधों के तमाम अंतर्विरोधों को बड़ी बारीकी से विश्लेषित करती हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में पारिवारिक व्यक्तियों पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति का मूल्यांकन भावुकता मुक्त और संयमित होता है, जिससे स्मृत व्यक्ति का व्यक्ति रूप बहुत स्पष्ट उभरकर सामने आता है। 'औरों के बहाने' में राजेन्द्र यादव पर संस्मरण लिखते हुए इस संदर्भ में मन्नू भण्डारी कहती हैं- "पत्नी होने के नाते अच्छाईयों और बुराईयों, दुर्बलता और दृढ़ता, गुणों और दुर्गुणों के ताने-बाने से बुने हुए व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए, मुझे बड़े सधाव और संतुलन की आवश्यकता महसूस हो रही हैं"[8] स्मृत व्यक्ति के उसी व्यक्तित्व का रेखांकन संस्मरणकार करता है जो वास्तविक रूप में है। यह वास्तविकता उसके व्यक्तित्व के दोनों रूपों की होती है, चाहे वह अच्छा हो अथवा बुरा। स्मृत व्यक्ति के सकारात्मक और नकारात्मक अथवा उसके जीवन और व्यक्तित्व के स्याह-सफेद पक्षों के साथ ही उसका सही मूल्यांकन संस्मरणकार करता है।

'आछे दिन पाछे गए' में काशीनाथ सिंह अपनी माँ पर बात करते हुए उनके व्यक्तित्व के दोनों पक्षों को रेखांकित करते हैं। काशीनाथ सिंह की माँ जब संयुक्त परिवार में थीं, तब परिवार से अलग होने की बात करती थीं। वह पारिवारिक कलह का एक हिस्सा थीं। आज वहीं माँ अपने तीनों बेटों को संयुक्त देखना चाहती थीं। काशीनाथ सिंह अपनी माँ के दोहरे चरित्र के रेखांकन में कोई गुरेज नहीं करते हैं। वे इस संदर्भ में लिखते हैं- "अपने तीनों बेटों के रिश्ते की नींव माँ की रखी हुई है। वह हमें देखकर हमेशा गाती रहती थीं...नीम चाहे जितनी कड़वी हो, उसकी छाह शीतल होती है। भाई जितना भी बेगाना हो, दाहिनी बांह होता है।...मुझे हैरत है कि जब हमारा परिवार संयुक्त था- सन् 53 से पहले, तब उसकी ये और दूसरी खूबिया कहाँ थीं। प्राय: रोज ही औरतों में झगड़े होते थे तब यही माँ बिल्ली और बंदरिया की तरह कटकटाती हुई भद्दी-भद्दी गालियों के साथ दूसरों पर झपट्टा मारती थी।"[9] काशीनाथ सिंह 'घर का जोगी जोगड़ा' में एक तरफ नामवर सिंह के साहित्यिक समर्पण की प्रशंसा करते हैं और इस संदर्भ में वे लिखते हैं- "हजारों हैं जिनकी साहित्य में दिलचस्पी नामवर को सुनकर हुई है। और ऐसी संख्या तो लाखों में है जिन्हें नामवर को सुनकर हिंदी स्वादिष्ट लगी है।"[10] वहीं दूसरी तरफ नामवर सिंह की पारिवारिक उदासीनता के बारे में वे कहते हैं- "भौजी भैया की कार्यसूची में फिलहाल थीं ही नहीं; भौजी क्या, परिवार भी वहीं तक था जहां तक उनके रास्ते में न आए। हों घर के लोग जरूर; लेकिन वे ही, जो उन्हें

निश्चिंत रखें"[11] राजेन्द्र यादव 'औरों के बहाने' में मन्नू भण्डारी के सहज, पारदर्शी और उदार व्यक्तित्व की सराहना करते हुए लिखते हैं- "मन्नू के जिस गुण के सामने मैं अपने को निहायत छोटा महसूस करता हूँ- वह यही नि:स्वार्थ-उदारता है।"[12] संस्मरणकार उनके व्यक्तित्व के अंतर्विरोध को रेखांकित करना नहीं भूलता। राजेन्द्र यादव इस संदर्भ में लिखते हैं- "उसकी मूलभूत प्रकृति, अधीरता ही की एक अभिव्यक्ति है। अधीरता अर्थात् असहिष्णुता...मन्नू का दूसरा नाम है।"[13]

समकालीन हिंदी संस्मरण में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार सिर्फ स्मृत व्यक्ति का ही नहीं, बल्कि स्मृत व्यक्ति के साथ जुड़े मित्र, सहकर्मी, गुरु आदि के भी व्यक्तित्व का रेखांकन करता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के इर्द-गिर्द फैले उसके चतुर्दिक संबंधों की चर्चा करता है, जो स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। इसके अलावा यह चर्चा स्मृत व्यक्ति के व्यक्ति रूप के साथ-साथ अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने का अवसर प्रदान करती है। संस्मरणकार की प्रमुखता स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारने पर केंद्रित रहती है, लेकिन उसके माध्यम से उससे जुड़े घनिष्ठ व्यक्तियों और संबंधों का जीवन भी उभरता है। 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह का उनके मित्रों, सहकर्मियों, गुरु आदि के साथ कैसा संबंध था, उसको संस्मरणकार ने बहुत संजीदगी से प्रस्तुत किया है। नामवर सिंह के गुरु हजारीप्रसाद द्विवेदी थे। गुरु और शिष्य दोनों में काफी घनिष्ठता थी। इनका आपस में रोजाना मिलन-जुलना होता था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की नौकरी से नामवर सिंह निकाला जाना और उसी दौरान हजारीप्रसाद द्विवेदी का वहाँ से निष्कासित होना, दोनों की समस्याओं, संबंधों की मर्यादा और व्यक्तित्व को लेखक रेखांकित करता है- "भैया नियमित शाम को पार्टी आफिस जाते। हजारीप्रसाद द्विवेदी के यहाँ से होते हुए, कभी उधर से लौटते हजारीप्रसाद द्विवेदी के यहाँ जाते। लेकिन मैंने देखा कि उनकी जिंदगी का यह पहला या कहिए शायद अंतिम भी- वक्त था जब वे पंडित जी के यहाँ जाने से बचना चाहते थे। और जाना काफी कम भी कर दिया था उन्होंने। पूछने पर कहते, एक तो पंडित जी खुद दुखी हैं, मुझे प्रत्यक्ष देखकर और दुखी होते होंगे। दूसरे, कहीं ऐसा न सोचते हों और खुद न भी सोचते हों तो दूसरे सोचवाने लगें कि देखो, नौकरी के लिए दौड़ रहा है। मैं उन्हें ऐसी किसी उलझन में नहीं डालना चाहता"[14] हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह के व्यक्तित्व की अपनी खूबियाँ हैं। लेखक नामवर सिंह के पढ़ाने की कला का तुलनात्मक विशेषण हजारी प्रसाद सिंह से करता है जिससे नामवर सिंह के साथ हजारीप्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व उभरकर आता है- "जहाँ द्विवेदी जी गोताखोर नहीं, उड़ाका थे। उड़ान भरनेवाला। टेक्स्ट पर केवल विश्राम के लिए उतरते थे, फिर क्षण भर ठहरकर उड़ान पर निकल जाते थे साहित्य के अनंत आकाश में।...नामवर न डूबते थे, न उड़ते थे। उन्होंने पानी को चीरते हुए तैरने का एक ऐसा रास्ता निकाला जिसमें

सर आकाश में रहे और धड़ पानी में। वे बीच-बीच में लहरों से खेलते भी थे और छपाके के साथ किल्लोल भी करते थे।"[15] ममता कालिया ने 'कितने शहरों में कितनी बार' में अपने और रवींद्र कलिया के बीच आपसी तनाव और उसमें उपेन्द्रनाथ अश्क की मध्यस्थता को लेकर लिखा है जिससे उनके व्यक्तिगत संबंध के साथ-साथ अश्क का व्यक्तित्व भी उभरकर आता है। वे लिखती हैं- "मेरी याददाश्त में कौंध गए वे सारे रिश्ते जो अश्कजी की मध्यस्थता से मुँह के बल गिरे थे। अश्कजी की जितनी ख्याति अपने साहित्य के कारण थी उससे कम साहित्येतर कारणों से न थी। कांता भारती-धर्मवीर भारती, मन्नू भण्डारी-राजेन्द्र यादव, शीला राकेश-मोहन राकेश, कोई कम चमकदार नहीं थे वे जोड़े जिन्हें अश्कजी की सलाह का मौका मिल था। टूटे सितारों की कहकशां में मैं अपना नाम नहीं लिखवाना चाहती थी"[16]

समकालीन हिंदी संस्मरण में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरण में संस्मरणकार का अनुभव स्मृत व्यक्ति के साथ स्वानुभूति पर आधारित होता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन की तमाम समस्याओं का सहभागी होता है। जीवन का लगभग ज्यादा से ज्यादा हिस्सा दोनों एक-दूसरे के साथ बिताये होते हैं। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन की तमाम समस्याओं को देखता ही नहीं, बल्कि झेलता भी है। स्मृत व्यक्ति के जीवन की कुछ समस्याएं संस्मरणकार के जीवन को प्रभावित करती हैं। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन के दुःख-सुख का साक्षी ही नहीं, बल्कि भागीदार होता है। काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह के जीवन के तमाम प्रसंग; इसी भागीदारी के परिणाम है। यह प्रसंग देखा हुआ नहीं, बल्कि लेखक द्वारा स्वयं अनुभव किया हुआ है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति की आँखों से उसके दर्द की थाह लेता है। काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "नामवर की आँखें ! ये आँखें उस बारह बीघे के काश्तकार के लड़के की आँखें थीं जिसे चौदह साल तक जीयनपुर के ऊसर ने बाजरा, सावाँ, गन्ने का रस, मटर की घुँघनी और खारा पानी पिला-खिलाकर पाला था, जो दस वर्षों तक काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की आँख की पुतली था, जो महीनों तक चुनाव के दौरान रोटी-नमक-प्याज खाकर भूखे-नंगे गांवों की खाक छानता रहा था, जिसे मार्क्सवाद ने दृष्टि दी थी और इसी नगर के टकियल लोग जब घास नहीं डालते थे तो कम्युनिस्ट पार्टी ने सहारा दिया था।"[17] 'औरों के बहाने' में राजेन्द्र यादव ने मन्नू भण्डारी को याद करते हुए उनसे जुड़े अपने अनुभव को रेखांकित किया है। मन्नू भण्डारी के सोने-उठने, खाने-पीने, पसंद-नापसंद, नौकरों के साथ उनके व्यवहार, अन्य व्यक्तियों के साथ उनके संबंध, लेखकीय और अध्यापकीय व्यक्तित्व आदि को उन्होंने नजदीक से देखा है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को सिर्फ जानता ही नहीं बल्कि उस विपरीत परिस्थितियों में उसके धैर्य, साहस, निर्णायक दृष्टि आदि की क्षमताओं को देखता भी है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन के उतार-चढ़ाव को बहुत नजदीक से देखता है। यही कारण है कि इस तरह के संस्मरणों में लेखक स्मृत व्यक्ति के जीवन के व्यापक हिस्से को बहुत सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' और राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने' में क्रमश: नामवर सिंह और मन्नू भण्डारी के व्यक्तित्व की जिस सूक्ष्मता, गहराई में जाकर विस्तार देने की कोशिश की गयी है, वह एक

पारिवारिक व्यक्ति द्वारा ही संभव है। स्मृत व्यक्तियों के जीवन का इतना सूक्ष्म विश्लेषण कोई पारिवारिक व्यक्ति ही कर सकता है, जिसने उसके जीवन को सिर्फ देखा ही न हो, बल्कि अनुभव भी किया हो। पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के जीवन की समस्याएं, जितना उसे प्रभावित करती हैं उससे कम लेखक को व्यथित नहीं करती हैं। संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति का पारिवारिक संबंध होने के कारण, स्मृत व्यक्ति के जीवन की परिस्थितियाँ जितना उसके जीवन पर असर डालती हैं, उससे कम संस्मरणकार को नहीं झकझोरती हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में पारिवारिक व्यक्ति द्वारा लिखे गये संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का अतिसूक्ष्म रेखांकन देखने को मिलता है। यह रेखांकन तभी संभव है, जब लिखने वाला व्यक्ति पारिवारिक हो, भावना के स्तर पर काफी गहराई से जुड़ा हो तथा स्मृत व्यक्ति के छोटे-बड़े क्रिया कलापों को गंभीरता से देखा-समझा हो। 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह के संघर्षों को काशीनाथ सिंह सिर्फ जानते नहीं, बल्कि देखा और अनुभव भी किया है। वे नामवर सिंह की परेशानियों से सिर्फ परिचित नहीं हैं बल्कि उन परेशानियों में उनके बनते-बिगड़ते मनोबल को भी देखा है। नामवर सिंह के जीवन का संघर्ष, उन्हें जीवन के प्रति उदासीन नहीं बनाता, बल्कि दो-गुने उत्साह के साथ और अधिक प्रेरित करता है। काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "मैंने देखा जो परेशानियाँ किसी सामान्य आदमी को भीतर तक तोड़ देती हैं, वे ही उस आदमी को और ज्यादा 'क्रिएटिव' और मानवीय बना देती हैं! ऐसे क्षणों में उनमें हास्य और मजाक की क्षमता अद्भुत ढंग से निखरकर सामने आती है।"[18] स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का इतना सूक्ष्म मूल्यांकन पारिवारिक व्यक्ति द्वारा ही संभव है। नामवर सिंह की तमाम पुस्तकों और लेखों के काशीनाथ सिंह साक्षात् दर्शी भी रहे हैं। उनके कई बनते-बिगड़ते लेखों को देखा ही नहीं, बल्कि पहले स्त्रोता भी रहे हैं। 'घर का जोगी जोगड़ा' में काशीनाथ सिंह यह बताते हैं कि नामवर सिंह अपने लेखन की शुरुआत कविता/कहानी से करते हैं, लेकिन रचनात्मक साहित्य में ज्यादा रूचि न होने के कारण उन्होंने आलोचना की तरफ रुख किया। आज हिंदी आलोचना में उनकी क्या साख है यह किसी से छिपा नहीं है। इनके रचनात्मक साहित्य से आलोचनात्क साहित्य की तरफ झुकाव को लेकर लेखक लिखता है- "नामवर को जानने वाले जानते हैं कि वे कवितायेँ लिखते थे, कवितायेँ छोड़ दीं, ललित निबन्ध लिखते थे, उन्हें भी छोड़ दिया, कहानी-उपन्यास कभी लिखे नहीं, शुरू की आलोचनाएँ। आलोचना की एक सीमा होती है, उसका अपना अनुशासन है। आलोचना की उस सीमा और अनुशासन के सामने खड़ा है, विविध अनुभवों और कठोर संघर्षों से समृद्ध नामवर का जीवन, जो बार-बार आलोचना के दायरे पर चोट करता है, उसे तोड़ता है, झकझोरता है। उनका अनुभव सम्पन्न जीवन अपने को व्यक्त करने के लिए आलोचना के 'आलम्बन' में अपने लिए 'आश्रय' ढूंढता है। इसीलिए आलोचना के फ़ार्म में जब मुझे कविता, निबन्ध, कहानी के किस्से की जमीन दिखाई पड़ती है, तो आश्चर्य नहीं होता।"[19] पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के परिस्थिति को सिर्फ देखता नहीं हैं बल्कि उसके मनोभावों को महसूस भी करता है। नामवर सिंह की परिस्थिति के काशीनाथ सिंह दृष्टा नहीं, बल्कि भोक्ता भी हैं। वे लिखते हैं- "मैं

असल नामवर को देख रहा था-मुझे याद नहीं कि सागर से लौटते पर नगर का कोई साहित्यकार- लेखक घर आया हो और सहानुभूति की तो बात दीगर, यही जानना चाहा हो कि सागर में कैसी गुजरी, कैसे क्या हुआ? जो शख्स पिछले दस सालों तक नगर की जबान रहा हो, हमेशा दस लोगों से घिरा रहा हो, वही नामवर अब एकदम अकेला था- लेकिन चेहरे पर कहीं कोई तनाव नहीं, थकान नहीं।"[20] पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार व्यक्तित्व के बाह्य रूप को नहीं बल्कि आंतरिक रूप को खँगालता हैं। नामवर सिंह के स्वाभिमान का रेखांकन करते हुए काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "जेब में पैसे नहीं लेकिन गर्व से तना हुआ सिर, आत्मविश्वास इतना कि धरती का बड़ा-से-बड़ा आदमी ठेंगे पर, वही सफेद लकदक कुर्ता-धोती, वही गोदौलिया पर 'दी रेस्टोरेंट' की शाम और पार्टी-दफ्तर।.."[21] राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने' में इनके व्यक्तित्व की विशेषताएं बताते हुए मन्नू भण्डारी लिखती हैं- "टेलीफोन पर लंबी-लंबी बातें करना, घर में कोई भी आ जाए-बड़े ही खुले दिल से उसका स्वागत करना, मनुहार करके उछल-उछलकर उसे खिलाना और इसी चक्कर में स्वयं उससे ज्यादा खा लेना, दूसरे को हँसाना और स्वयं खुलकर हँसना, मिले तो सारे दिन कॉफी पीना, सिगरेट फूंकना, रात में देर-देर तक घूमना-ये सारी कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिसके बिना राजेन्द्र की कल्पना अधूरी रह जाती है"[22]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति यदि लेखक, समाजसेवी, राजनेता आदि हो तो उनके इन योगदानों की चर्चा के साथ-साथ उसके पीछे के समर्पण और संघर्षों का रेखांकन मिलता है। काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' में वे नामवर सिंह के अध्ययनशील व्यक्तित्व की चर्चा करते हैं। उनके गहन अध्ययन के प्रति समर्पण को लेकर लिखते हैं- "लिखने के दौरान उनके साथ उनका सर्वोत्तम मनुष्य होता था- तमाम मानवीय गुणों से भरपूर; व्यक्तिगत राग-द्वेष से रहित, क्रोध और तनाव का नामोनिशान नहीं और इस मनुष्य के सामने होता था- कवि, कथाकार का रचा हुआ संसार। नामवर सिंह उस 'संसार' को उठाकर साहित्य के समूचे भूगोल और इतिहास के बीच रख देते थे और बड़ी तन्मयता से उसका जायज़ा लेते थे- इतनी तन्मयता से की उसका बारीक के बारीक रेशा भी उनकी आँखों से ओझल नहीं होता था। मैंने कई बार देखा है- जब भी इनके लेख को पढ़ने के बाद कोई- यह सोचकर कि शायद इस ओर उनका ध्यान न गया हो- किसी शब्द, वाक्यांश, बिम्ब और प्रतीक की ओर इशारा करता था, वे उसके अगल-बगल ही नहीं, ऊपर-नीचे तक सुना जाते थे।"[23] नामवर सिंह की राजनीतिक प्रतिबद्धता मार्क्सवादी थी। यह वह दौर था, जब मार्क्सवादी होने का अर्थ वैचारिक रूप से प्रगतिशील होना माना जाता था। नामवर सिंह ने वामपंथी राजीनीति में पदार्पण 1952-53 में किया था। वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में नौकरी करने के दौरान ही 1959 में 'कम्युनिस्ट पार्टी' से चंदौली संसदीय क्षेत्र से लोकसभा उपचुनाव के लिए उम्मीदवार थे। नामवर सिंह लोकसभा उपचुनाव हार जाते हैं। एक तरफ नामवर सिंह चुनाव में हारते हैं, वहीं दूसरी ओर उन्हें नौकरी से भी निकाल दिया जाता है। इन समस्याओं में नामवर सिंह का संघर्ष कैसा रहा? उन्हें किन-किन परिस्थियों का सामना करना पड़ा? उसे लेखक ने विस्तार से रेखांकित किया है। नामवर सिंह के जीवन के संघर्ष उन्हें तोड़ते नहीं हैं बल्कि और ज्यादा मजबूत बनाते हैं। उन्हें नित-नई ऊचाइयों पर ले जाते हैं। लेखक ने

नामवर सिंह के जीवन के क्षोभ और संघर्ष को देखा है। उन्हें उन तमाम परिस्थितियों से बाहर निकलते हुए भी देखा है। नामवर सिंह की विपरीत परिस्थिति का सहारा अध्ययन को बनाते हैं जो उन्हें उनके जीवन के दुख-सुख, क्षोभ आदि से दूर रखता है। इस संदर्भ में काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "आज तक ऐसे किसी आदमी की कल्पना नहीं की थी जिसके सारे दुखों, सारी परेशानियों, पराजयों, तिरस्कारों और अपमानों का विकल्प अध्ययन हो। चुनाव हारने और अच्छी-खासी नौकरी जाने का सियापा घर में हो और वह आदमी खर्राटे ले रहा हो या कमरा बंद कर के किसी लेख की तैयारी कर रहा हो या पढ़ी गयी किताब से नोट्स ले रहा हो।"[24]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में यह देखने को मिलता है कि स्मृत व्यक्ति और संस्मरणकार के व्यक्तित्व के निर्माण में किस पारिवारिक व्यक्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, जिसका प्रभाव स्मृत व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व पर पड़ा हो। काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' में स्मृत व्यक्ति (नामवर सिंह) के व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी माँ की अहम भूमिका है। नामवर सिंह के व्यक्तित्व पर उनकी माँ का इतना प्रभाव था कि उन्हें नामवर को नामवर होने का श्रेय दिया जाता था। नामवर की माता पढ़ी-लिखी नहीं थीं, लेकिन पढ़ाई के महत्त्व को समझती थीं। काशीनाथ सिंह लिखते हैं कि माँ को जिन लोगों ने देखा था, जिनसे उनकी बातें हुई थी, "वे नामवर के नामवर होने का श्रेय माँ को देते हैं। उसने अपने बेटों की पढ़ाई के लिए अपना गहना-गुरिया सारा कुछ बेच डाला था।"[25] 'कितने शहरों में कितनी बार' में संस्मरणकार (ममता कालिया) के व्यक्तित्व निर्माण में उनके पिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वे लिखती हैं– "सात साल की उम्र में मुझे एक भी दिन ऐसा याद नहीं जब मैं बिना पढ़े, पापा की नजर बचाकर सो सकी हूँ।"[26] 'औरों के बहाने' में मन्नू भण्डारी अपने लेखनीय प्रतिभा को उभारने का श्रेय राजेन्द्र यादव को देती हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार ने यह देखने की कोशिश की है कि स्मृत व्यक्ति का परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रिश्ता कैसा है? इसके माध्यम से स्मृत व्यक्ति के व्यक्तिगत और पारिवारिक संबंधों का अंदाजा लगाया जा सकता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक रिश्ते की मजबूतियों और कमजोरियों की जड़ को अच्छे से समझता है। वह स्मृत व्यक्ति के उन रिश्तों के आधार पर उसके की शिनाख्त करता है। इससे स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने में सहूलियत मिलती हैं। 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह के व्यक्तित्व को और अधिक स्पष्ट करने के लिए काशीनाथ सिंह उनके व्यक्तिगत संबंधों को आधार बनाते हैं। नामवर सिंह का माता-पिता, पत्नी, पुत्र, पुत्री, भाई आदि के साथ कैसा संबंध था? इन संबंधों के निर्वहन में स्मृत व्यक्ति की क्या भूमिका थी? नामवर सिंह पारिवारिक संबंधों के प्रति कितने समर्पित हैं? इन प्रश्नों पर लेखक दृष्टि डालता है। 'घर का जोगी जोगड़ा' में काशीनाथ सिंह यह बताने की कोशिश करते हैं कि नामवर सिंह जितना अपने अध्ययन-अध्यापन को लेकर सजग थे, उतना परिवार को लेकर नहीं। उनके लिए परिवार का महत्त्व वहीं तक था, जहां तक वह उनके अध्ययन-अध्यापन में बाँधा न बने। वे साहित्य के क्षेत्र में एक अलग परिवार बना रहे थे।

नामवर सिंह के जीवन में परिवार का कितना महत्त्व था, यह काशीनाथ सिंह के इस कथन के माध्यम से समझा जा सकता है- “लोलार्क कुंड पर रहने के थोड़े दिनों बाद ही मुझे लग चुका था कि भौजी भैया की कार्य सूची में फिलहाल थीं ही नहीं, भौजी क्या, परिवार भी वहीं तक था जहाँ तक उनके रास्ते में न आए। हों घर के लोग जरूर; लेकिन वे ही, जो उन्हें निश्चिन्त रखें।”[27] नामवर सिंह की पारिवारिक उदासीनता काशीनाथ सिंह के लिए जिम्मेदारी बन जाती थी। नामवर सिंह जब तक अध्ययन-अध्यापन का कार्य किये, तब तक वह घर-परिवार की जिम्मेदारियों और समस्याओं से थोड़ा दूरी बनाकर रहें। परिवार में जब कोई दिक्कत होती तो निर्णायक की भूमिका में, घर से बाहर निकलते समय २-३ वाक्य में अपनी राय देते थे। इससे ज्यादा उन्होंने घर के लिए अलग से समय कभी नहीं निकला। काशीनाथ सिंह लिखते हैं- “वे आर्थिक या पारिवारिक समस्याएं जो आपको हफ़्तों-महीनों से झिंझोड़ रही हों, उसके बारे में ये दो मिनट बात करेंगे-निर्णयात्मक ढ़ंग से, वह भी घर से बाहर जाते समय। रिक्शे या गाड़ी में बैठते-बैठते। या घर में ही हों तो खड़े-खड़े। ऐसे वक्त वे बड़े असहज होते हैं। यानी ऐसा कि कहते हुए डर लगे। उसके बाद किताब खोलेंगे और भूल जायेंगे।”[28] नामवर सिंह को अपने परिवार की जरूरत तब महसूस हुई जब उनका लिखना पढ़ना कम हो गया था। इस पुस्तक के परिशिष्ट में काशीनाथ सिंह उनसे सवाल करते हैं कि जीवन में उन्हें खालीपन कब लगता है नामवर सिंह जबाब में कहते हैं- ‘जब दिमाग खाली हो। यह नामवर सिंह का वही समय था, जब साहित्यिक सेवा में वह अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे चुके थे। उनमें कुछ नया करने का न तो उतना उत्साह बचा था, न दिल्ली में बनारस वाली एकाग्रता थी।’ नामवर सिंह की परिवार के प्रति भावुकता और जिम्मेदारियों को लेकर काशीनाथ सिंह कहते हैं- “भैया की आँखों में आंसू देखे मैंने-जीवन में पहली बार और वह भी बेटे की शादी के समय। वे ख़ुशी के आंसू थे। माँ का जब देहांत हुआ था तब नहीं आये आंसू। दर्द या दुःख के समय बच-बचा के निकल भागने में महारत हासिल है उन्हें। लेकिन ‘78’ में बार-बार आँखें भर आ रही थीं उनकी। बेटे ने वह किया था जो उनके नसीब में नहीं था।”[29] ममता कालिया ‘कितने शहरों में कितनी बार’ में पारिवारिक व्यक्तियों के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए उनके आपसी संबंधों की भी चर्चा करती हैं। लेखिका अपने पापा, चाचा, दादी-दादा, मामा-मामी के आपसी संबंधों और उनके बीच की पारिवारिक उदासीनता और कलह को बताती हैं। पारिवारिक व्यक्तियों का व्यक्तित्व उभारते हुए उनके आपसी संबंधों की चर्चा करते हुए ममता कालिया लिखती हैं- “जब भारत चाचा और पापा इकट्ठे घर आते। दोनों के परिवार साथ होते। छोटी-छोटी घटनाओं पर कलह मच जाती।”[30] मम्मी और मामा के संबंध को लेकर वे कहती हैं- “रक्षाबंधन और भाईदूज पर मम्मी उदास हो जातीं। चार भाई, चारों हृदयहीन”[31] समकालीन हिंदी संस्मरण में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तिगत संबंधों को इसलिए भी लाने की कोशिश करता है ताकि उसके माध्यम से स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को ज्यादा व्यापकता से समझा जा सके। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व की स्पष्टता के लिए पारिवारिक संबंधों की शिनाख्त तो करता है, इससे स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक स्थिति-परिस्थिति का भी बोध होता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार का परिवार के अन्य सदस्यों से संबंध का रेखांकन मिलता है, जिसके माध्यम से संस्मरणकार तथा उससे जुड़े पारिवारिक व्यक्तियों का व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। ऐसे में संस्मरणकार, स्मृत व्यक्ति और अन्य पारिवारिक व्यक्तियों का व्यक्तित्व और इनके साथ आपसी संबंध भी उभरकर सामने आते हैं। रवींद्र कालिया जब 'गालिब छूटी शराब' में अपनी माँ के व्यक्तित्व का रेखांकन करते हैं तो इसके साथ ही परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने संबंध पर भी दृष्टि डालते हैं। रवींद्र कालिया के जीवन में पारिवारिक संबंधों का कितना महत्त्व और हस्तक्षेप है, यह उनके इस कथन के माध्यम से ज्ञात होता है- "आज तक मैंने किसी को भी अपने जीवन में हस्तक्षेप करने की छूट नहीं दी थी, मगर माँ आज यह छूट ले रही थीं, और मैं शांत था। आज मेरा दिमाग सही काम कर रहा था, वरना मैं अबतक भड़क गया होता।"[32] इस संस्मरण में लेखक का व्यक्तित्व एक बेपरवाह, मस्तमौला, मनमौजी जीवन के आग्रही रूप में उभरकर आता है जिसमें सेंध लगाने की छूट किसी को नहीं दी गई थी। संस्मरणकार के लिए जीवन की स्वतंत्रता इतनी मायने रखती है, उसमें पारिवारिक व्यक्ति (माँ, पिता, भाई) और व्यक्तिगत संबंध(पत्नी) को हस्तक्षेप करने की इजाजत नहीं है। इस संस्मरण में संस्मरणकार के व्यक्तित्व के साथ-साथ पारिवारिक व्यक्तियों का व्यक्तित्व और उनके साथ लेखक का संबंध कैसा है? यह उभरता हुआ नजर आता है। 'आछे दिन पाछे गए' में संस्मरणकार जब यह कहते हुए नजर आता है कि "माँ, बीवी, दो बच्चियाँ, भतीजा, भतीजी, गरज की पूरा परिवार, शहर का खर्च और सबकी उम्मीद की किरण काशी!"[33] तो सहज ही परिवार के अन्य सदस्यों के साथ संस्मरणकार के महत्त्व का भान हो जाता है, इसके साथ ही संस्मरणकार का व्यक्तित्व भी उभरकर सामने आता है। देखा जाए तो समकालीन हिंदी संस्मरण में पारिवारिक व्यक्तियों पर लिखे गए संस्मरण में संस्मरणकार का परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ संबंधों का गहन रेखांकन मिलता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार का व्यक्तित्व और उसके जीवन के तमाम पहलू उभरकर आते हैं। जब संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति एक ही परिवार से जुड़े हो तो एक व्यक्ति का जीवन, दूसरे व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करता है। 'घर का जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह के जीवन की समस्याएं काशीनाथ सिंह के जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि नामवर सिंह के पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक आदि जीवन पर बात की जाती है तो काशीनाथ सिंह के जीवन के अनेक परिदृश्य दिखाई देते हैं। नामवर सिंह के जीवन की पारिवारिक समस्या और आर्थिक स्थिति पर काशीनाथ सिंह बात करते हैं तो स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार का जीवन भी उभरता हुआ दिखाई देता है। पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में पारिवारिक और आर्थिक स्थिति की जब भी बात की जाती हैं तो एक व्यक्ति के जीवन को नापने से दूसरे व्यक्ति का जीवन अपने आप नप जाता है। काशीनाथ सिंह जब नामवर सिंह की पारिवारिक स्थिति पर बात करते हैं तो सहज ही दोनों की पारिवारिक स्थिति का भान हो जाता है। काशीनाथ सिंह लिखते हैं-

“रोटी-नमक, रोटी-प्याज, जाड़े में सिर्फ एक कम्बल, ओढ़ो भी-बिछाओं भी, ठण्ड ज्यादा लग रही है तो गाँव के किनारे या बीच में पेड़ पर भोंपू लेकर बैठ जाओ- हँसिया-बाली जिंदाबाद!’ साइकिल मिली तो मिली, नहीं पैदल, जिले-भर का चप्पा-चप्पा छान रहे हैं। ऐसे-ऐसे घर, ऐसे-ऐसे आदमियों को देखा मैंने काशी की क्या बताएं? जब भूख बर्दाश्त न हो और घर में कुछ न हो तो सुर्ती फाँकों।’(उन्हें भी पान के अभाव में सुर्ती की लत चुनाव के दौरान ही पड़ी)”[34] इसमें काशीनाथ सिंह और नामवर सिंह के संबंधों की प्रगाढ़ता के साथ-साथ, उनका जिम्मेदार और मर्यादित व्यक्तित्व भी उभरकर आता है। काशीनाथ सिंह का जिम्मेदार और भावुक व्यक्तित्व उस समय उभरकर आता है, जब नामवर सिंह आर्थिक समस्या से जूझ रहे थे। काशीनाथ सिंह के भावुक व्यक्तित्व को इस प्रसंग के माध्यम से समझा जा सकता है, जब वे लिखते हैं- “मैंने अपने वजीफे के पैसे से एक साइकिल खरीदी और पैसे बचे थे, क्योंकि कई महीने के पैसे एक साथ मिले थे। मैंने दिन में ही भैया को सोते हुए देखकर चुपके से उनके कुर्ते की जेब में एक रूपए का सिक्का डाल दिया था। ज्यादा इसलिए नहीं कि उन्हें संदेह हो जाएगा।”[35] इससे काशीनाथ सिंह का जिम्मेदार व्यक्तित्व, संबंधों की मर्यादा, पारिवारिक प्रेम का भान होता है। वे नामवर सिंह को नौकरी से निकाले जाने से उत्पन्न परिवार की आर्थिक समस्या को लेकर सजग हैं लेकिन संबंधों की मर्यादा को ध्यान में रखकर। नामवर सिंह की जेब में काशीनाथ सिंह कम पैसा रखते हैं, ताकि बड़े भाई को यह न लगे कि उनकी जिम्मेदारियों का बोझ छोटे भाई पर आ गया। ममता कालिया कृत ‘कितने शहरों में कितनी बार’ में स्मृत व्यक्तियों पर बात करते-करते उनके जीवन का दर्द अक्सर झलक जाता है। वे कहती हैं- “बचपन में पापा के तबादले ने हमें भारत दर्शन करवाया; बड़े होने पर जिंदगी की ठोकरों ने घाट-घाट का पानी पिलवा दिया”[36]

समकालीन हिंदी संस्मरणों में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में कुछ संस्मरणों की संख्या ऐसी है जो किसी एक व्यक्ति विशेष पर केंद्रित होते हैं, जिसमें उसके व्यक्तित्व को समग्रता से देखने की कोशिश की जाती हैं, वही कुछ संस्मरणों में पारिवारिक व्यक्ति के जीवन के किसी एक हिस्से का रेखांकन देखने को मिलता है। एक व्यक्ति विशेष पर केंद्रित संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के तमाम पहलु उभरकर सामने आते हैं। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन के लगभग ज्यादा से ज्यादा हिस्से को पाठक के सामने लाने की कोशिश करता है। एक व्यक्ति विशेष को आधार बनाकर लिखे गए संस्मरणों में अक्सर यह देखा गया है कि संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति का साथ बहुत लंबे समय तक का होता है। काशीनाथ सिंह कृत ‘घर का जोगी जोगड़ा’ में नामवर सिंह की प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उम्र के आखिरी पड़ाव तक की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को रेखांकित किया गया है। ‘घर का जोगी जोगड़ा’ में नामवर सिंह के जीवन के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से देखने की कोशिश की गई है। इस संस्मरण में स्मृत व्यक्ति के जीवन का अधिकतर हिस्सा आ गया है। जैसे- जीवन संघर्ष, पारिवारिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, राजनीतिक स्थिति आदि। ‘घर का जोगी जोगड़ा’ में नामवर सिंह के व्यक्तित्व और जीवन को तीन हिस्सों में बाँटकर देखा गया है। यह तीन हिस्से उनके जीवन के तीन पड़ाव हैं, जिसके माध्यम से लेखक ने उनके व्यक्ति रूप को उभारने का प्रयास किया है। लेखक स्मृत व्यक्ति का भाई है। दोनों जीवन का बड़ा हिस्सा एक-दूसरे के साथ बिताएं हैं। इस संस्मरण में नामवर

सिंह के जीवन में लगभग महत्त्वपूर्ण हिस्से को रेखांकित किया गया है जिसे तीन उपशीर्षकों में बाँट कर देखने की कोशिश की गयी है- (i) जीयनपुर (ii) गरबीली गरीबी वह (iii) घर का जोगी जोगड़ा। लेखक ने संस्मरण के पहले अध्याय का शीर्षक 'जीयनपुर' दिया है, जिसमें नामवर सिंह के जीवन से जुड़े उन तमाम प्रसंगों को उद्घाटित किया गया है, जो गाँव से जुड़े थे। जीयनपुर में नामवर की पारिवारिक स्थिति, बाल्य जीवन के संघर्ष, प्रारम्भिक शिक्षा, गाँव के प्रति लगाव आदि का रेखांकन किया गया है। संस्मरण का दूसरा शीर्षक 'गरबीली गरीबी वह' में लेखक नामवर सिंह के जीवन के दूसरे पड़ाव की चर्चा करता है। नामवर सिंह के जीवन के इस दूसरे पड़ाव में राजनीतिक सक्रियता, अध्ययनशीलता और नौकरी के संघर्ष को रेखांकित किया गया है। तीसरा शीर्षक 'घर का जोगी जोगड़ा' में लेखक ने स्मृत व्यक्ति के उस पक्ष को रेखांकित करने की कोशिश की है, जिसके माध्यम से स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक जीवन को समझा जा सकता है। उसके व्यक्तित्व की सामाजिकता को समझा जा सकता है। समकालीन हिंदी संस्मरणों में परिवारिक व्यक्ति द्वारा लिखे गए संस्मरण में जब एक ही व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व का मूल्याङ्कन किया जाता है, तो इसमें स्मृत व्यक्ति के जीवन का लगभग महत्त्वपूर्ण हिस्सा आ जाता है।

समकालीन हिंदी संस्मरणों में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए कुछ संस्मरण ऐसे भी है जिनमें संस्मरणकार का अनुभव स्मृत व्यक्ति के साथ कम समय का होता है। वह जीवन के किसी एक अनुभव खंड से जुड़ा होता है। स्मृत व्यक्ति को लेकर संस्मरणकार के अनुभव खंड की समय सीमा भले ही कम हो लेकिन उसके व्यक्तित्व को समझने में कोई कमी नहीं होती है। राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने', ममता कालिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार', रवींद्र कालिया कृत 'गालिब छूटी शराब' आदि इसी तरह के संस्मरण हैं। ममता कालिया जब 'कितने शहरों में कितनी बार' में अपने माता, पिता, बहन पर लिखती हैं तो वह अपनी शादी से पहले के अनुभव को रेखांकित करती हैं। जब वे रवींद्र कालिया पर लिखती हैं तो अपनी शादी के बाद के अनुभव को चित्रित करती हैं। इन दोनों अनुभव खंडों की अपनी एक समय सीमा है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन के कुछ पहलुओं से अनभिज्ञ हो सकता है लेकिन उसके चरित्र की बारीकी और गहराई से बखूबी परिचित होता है। राजेन्द्र यादव ने 'औरों के बहाने' में शादी के बाद की मन्नू भण्डारी को याद किया है। वे मन्नू भण्डारी के व्यक्तित्व को एक पत्नी, एक गृहिणी, एक अध्यापिका और एक लेखिका के रूप में रेखांकित करने की कोशिश करते हैं। यहाँ संस्मरणकार शादी से पहले वाली मन्नू भण्डारी के जीवन को नहीं, बल्कि शादी के बाद वाली मन्नू भण्डारी के जीवन को रेखांकित करता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में भाषाई मर्यादा का काफी ध्यान रखा गया है। संस्मरणकार अपने संस्मरण में अनैतिक शब्दों के इस्तेमाल से बचता है। काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' और 'याद हो कि याद न हो' की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करें, तो दोनों में भाषाई अंतर स्पष्ट नजर आते हैं। 'घर का जोगी जोगड़ा' पारिवारिक व्यक्ति को आधार बनाकर लिखा गया संस्मरण है, जबकि 'याद हो कि न याद हो' में लेखक अपने सहकर्मियों, मित्रों आदि को याद करता है। बड़े भाई नामवर सिंह पर लिखे गए संस्मरण में जो भाषाई नैतिकता दिखाई देती है वह दोस्त रामाधार पर लिखे गए संस्मरण में नहीं। काशीनाथ सिंह जब सहकर्मी, मित्रों आदि पर

लिखते हैं तो क्षेत्रीय भाषाओं में प्रयोग होने वाली गाली-गलौज के शब्दों का सहजता से प्रयोग करते हैं। वह भाषा में बिना बदलाव किये, नैतिकता के आवरण को बिना चढ़ाएं, शब्दों का इस्तेमाल ज्यों का त्यों करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समकालीन हिंदी संस्मरण में पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के जीवन के उन पहलुओं को रेखांकित किया जाता है, जिससे लोग सामान्यत: परिचित नहीं होते हैं। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन के तमाम छोटे-बड़े पहलुओं को सूक्ष्मता से विश्लेषित करता है। वह स्मृत व्यक्ति के जीवन के हर कोने में झाँकता है, जिससे उसके जीवन के विभिन्न आयाम उभरकर आते हैं। मसलन, स्मृत व्यक्ति की परिवार और समाज में क्या भूमिका है?, उसका व्यक्तित्व कैसा है? उसके संघर्ष कैसे हैं? आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ कैसी हैं? स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक संबंध कैसे हैं? उसके व्यक्तिगत संबंधों की खामियाँ और खूबियाँ क्या हैं? स्मृत व्यक्ति से जुड़े इन तमाम प्रश्नों को आसानी से समझा जा सकता है। पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि इसमें स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार के व्यक्तित्व और उसके जीवन से जुड़े तमाम प्रसंगों को जाना जा सकता है। पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में यह देखने को मिलता है कि संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के साथ काफी लम्बा समय बिताया होता है। दोनों के सम्बन्धों के बीच की आत्मीयता इतनी गहरी या यह कहें कि जिंदगी की धूप-छाहीं की तरह होती है। लेखक स्मृत व्यक्ति के जीवन के हर खोह से परिचित होता है। संस्मरणकार सिर्फ स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व की शिनाख्त नहीं करता है बल्कि उसके साथ-साथ अपने को भी दर्ज करता हुआ नजर आता है। पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरण में संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के लिए यह कहना गलत न होगा कि एक के जीवन को नापने पर दूसरा अपने आप नप जाता है अर्थात दूसरे का व्यक्तित्व भी उभरकर आता है।

मित्रों अथवा सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में व्यक्ति चित्र:

समकालीन हिंदी संस्मरण में देखा जाए तो मित्रों पर लिखे गए संस्मरणों की संख्या अधिक है। मित्रों पर लिखे गए संस्मरणों की परम्परा संस्मरण के आविर्भाव के साथ ही देखने को मिलती है, जिनमें पद्मसिंह शर्मा, बनासरीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर आदि की अग्रणी भूमिका रही है। समकालीन हिदीं संस्मरण इस परम्परा को अपनाता है लेकिन कुछ तत्त्वगत बदलाव के साथ। प्रारम्भिक हिंदी संस्मरण में यह देखने को मिलता है कि स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के एक पक्ष को ही रेखांकित किया जाता था। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के सिर्फ प्रभावशाली और सकारात्मक व्यक्तित्व को उद्‌धृत करता था। इस तरह का एक पक्षीय मूल्यांकन स्मृत व्यक्ति के वास्तविक व्यक्तित्व को उभरने नहीं देता था। समकालीन हिंदी संस्मरण इसी परंपरा को तोड़ता हुआ नजर आता है। वह स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के दोनों पक्षों (सकारात्मक और नकारात्मक) को चित्रित करता है। इससे स्मृत व्यक्ति के सपाट और एकरस जीवन का नहीं बल्कि जीवन के ऊबड़-खाबड़ खंडहरों का भी पता चलता है। समकालीन हिंदी संस्मरण में मित्रों या सहकर्मियों पर काशीनाथ सिंह, ममता कालिया, कृष्णा सोबती, राजेन्द्र यादव, कान्तिकुमार जैन आदि ने संस्मरण लिखे। इन लेखकों ने अपने मित्रों को याद करते हुए, उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की शिनाख्त की है। काशीनाथ सिंह कृत 'आछे दिन पाछे गए' और 'याद हो कि न याद हो' में अपने मित्रों और सहकर्मियों को याद किया है। काशीनाथ सिंह ने 'आछे दिन पाछे गए' में नंदलाल, रामाधार, अपने दो शोध छात्र रमेश और महेश्वर आदि पर संस्मरण लिखे हैं। काशीनाथ सिंह अपनी दूसरी पुस्तक 'याद हो कि न याद हो' में हजारी प्रसाद द्विवेदी, त्रिलोचन, रवीन्द्र कालिया आदि को याद किया गया है। कान्तिकुमार जैन ने 'जो कहूँगा सच कहूँगा' में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, राजनाथ पाण्डेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, जीवन लाल वर्मा, मुकुटधर पाण्डेय, नामवर सिंह, शिवमंगल सिंह 'सुमन', श्यामाचरण दुबे आदि व्यक्तियों को याद किया है। इन स्मृत व्यक्तियों पर संस्मरण लिखते हुए लेखक अपने जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण स्मृतियों को खँगालता है जो उसपर अपनी छाप छोड़ी हुई हैं। इसी प्रकार राजेन्द्र यादव कृत 'वे देवता नहीं हैं' दोस्तों, सहकर्मियों को आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें उन्होंने रामविलास शर्मा, यशपाल, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मनमोहन ठाकौर, नजीर अकबराबादी, शानी, धर्मवीर भारती, भैरव प्रसाद गुप्त, मीरा महादेवन, शैलेश मटियानी, नरेशचंद्र चतुर्वेदी, निर्मला जैन, लक्ष्मीचंद्र जैन, भंवरमल सिंघी को याद किया है। कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत-3' में लेखिका सत्येन, जयदेव, अशोक वाजपेयी, निर्मला जैन, विभूतिनरायण राय, रवींद्र कालिया आदि को याद किया है। इसमें इन्होंने स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व के गुण-अवगुण का सम्यक विश्लेषण किया है।

मित्रों पर लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के जीवन के विभिन्न आयामों से कम परिचित होता है। इस तरह के संस्मरणों में संस्मरणकार का स्मृत व्यक्ति से जुड़ा अनुभव पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरण से अपेक्षाकृत कम होता है। वह उसके जीवन से जुड़ी हर छोटी-छोटी बारीक और अतिसूक्ष्म समस्या से परिचित नहीं होता है।

मित्रों अथवा सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक संबंधों के बाह्य रूप का रेखांकन मिलता है। इसका कारण है कि संस्मरणकार बाहरी व्यक्ति होता है। उसके लिए पारिवारिक संबंधों की जटिलताओं को समझना आसान नहीं होता है। पारिवारिक व्यक्तियों पर लिखे गए संस्मरण में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के परिवार का हिस्सा होता है। उसके लिए स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक संबंधों को समझना आसान होता है। वह उस संबंधों की बारीकियों से भली-भाँति परिचित होता था। मित्रों और सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरण में संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के व्यक्तिगत संबंधों की सीमा होती है। संस्मरणकार का स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक संबंधों के साथ एक सीमित दायरा होता है। मित्र या सहकर्मी बाहरी व्यक्ति होता है। उसकी एक सीमा होती है। उस सीमा के अतिक्रमण की छूट लेखक को नहीं होती है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक संबंधों से परिचित होता है लेकिन उसके बाह्य रूप से। उसके लिए संबंधों की सूक्ष्मता को समझना आसान नहीं होता है। 'हम हशमत-3' में कृष्णा सोबती सत्येन और उनकी पत्नी, अशोक वाजपेयी और पत्नी रश्मि के संबंधों की आंतरिकता से भले न परिचित हों लेकिन बाहरी समाज में उनके संबंधों की सरलता, स्वच्छदता और स्वतंत्रता को भाप लेती हैं। वे अशोक वाजपेयी और रश्मि के व्यक्तिगत संबंधों का हवाला देते हुए तमाम उलझे पति-पत्नी के सम्बन्धों पर छींटाकसी करती हुई कहती हैं- "रश्मि वाजपेयी के प्रति हिंदी बिरादरी कृतज्ञ रहेगी कि अशोक के विशाल मित्र-एरीना को लेकर उन्होंने सार्वजनिक गोष्ठियां और समारोहों में कोई खुजलाहट, झुंझलाहट नहीं बिखेरती की खबरदार ! मेरे मियां की ओर देखना मत! रश्मि साहिबा ने उन शोख साड़ियों को भी चुपके-चुपके नहीं घूरा जो अशोक की खिलखिलाहट पर हवा में फरफराने लगती हैं। हम सभी लम्बे अरसे से उन तंगदिल लेखक-बीवियों को भी देखते रहे हैं जो भरपूर साहित्यिक शामें मियाँ की हरकतों पर अपनी आँखों का तम्बू ताने रहती हैं। गंभीर मंचीय साँचे में ढली रश्मि हर पहचान को अपने चुनाव पर ही कीमती मुस्कुराहट से नवाजती हैं।"[37] सत्येन और उनकी पत्नी के सुलझे संबंध और व्यक्तित्व का जिक्र वे करती हैं। 'रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण' में रघुवीर और उनके पत्नी के प्रेम संबंधों को लेकर मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं- "रघुवीर का अपनी पत्नी के प्रति प्यार क्रमश: बढ़ा था और फिर स्वतंत्र लेखक बन जाने के बाद पराकाष्टा पर पहुंचा था।"[38] यह 'क्रमश:' शब्द उनके संबंधों को समझने का पैमाना पेश करता है। राजेन्द्र यादव 'वे देवता नहीं हैं' में रामविलास शर्मा, मनमोहन ठाकौर, मोहन राकेश आदि के व्यक्तिगत संबंधों की मर्यादा का ध्यान रखते हैं। राजेन्द्र यादव अपने संस्मरण में स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक संबंधों को लेकर संकेत करते हैं। वे जब रामविलास शर्मा घर और परिवार के संदर्भ में कहते हैं- "न उन्हें घर का होश था न परिवार का"[39] तो सहज ही रामविलास शर्मा का पारिवारिक व्यक्तियों के प्रति जिम्मेदारी और वैयक्तिक पक्ष का बोध हो जाता है। मोहन राकेश के व्यक्तिगत संबंधों के बारे में राजेन्द्र यादव कुछ कहने से बचते हैं लेकिन व्यक्तिगत संबंधों के प्रति मोहन राकेश के आलोकतंत्रिकता व्यवहार की तरफ संकेत कर ही देते हैं जिससे उनका व्यक्तित्व उभरकर आता है। वे कहते हैं- "मैं शीला, पुष्पा और अनीता की बात जानबूझकर

इसलिए नहीं कर रहा : पति-पत्नी का रिश्ता इतना अजीब है कि बाहरी व्यक्ति उनकी जटिलताओं को प्राय: समझ नहीं पाता। उम्र के अंतर के बावजूद वहाँ मांग बराबरी की होती है और राकेश को यह सह्य नहीं था"[40] संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहराई से परिचित होता है लेकिन स्मृत व्यक्ति के परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ उसका कैसा रिश्ता है? उनके संबंधों की जड़ कितनी गहरी है? इससे संस्मरणकार का ज्यादा सरोकार नहीं होता है। संस्मरण में स्मृत व्यक्ति के लिए पारिवारिक संबंध उसके जीवन का एक अहम हिस्सा होता है। इसके माध्यम से उसके वैयक्तिक पक्ष को और अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में मित्रों पर लिखे गए संबंधों में स्मृत व्यक्ति के पारिवारिक संबंधों के माध्यम से उसके वैयक्तिक पक्ष को समझने में वह स्पष्टता नहीं मिलती है जो पारिवारिक व्यक्ति पर लिखे गए संस्मरणों में दिखाई देती है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में मित्रों पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनीतिक आदि योगदानों का रेखांकन मिलता है। मित्र या सहकर्मी स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के इस पहलू से बखूबी परिचित होता है। समकालीन हिंदी संस्मरण में यह देखा गया है कि संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के विभिन्न योगदानों की चर्चा करता है। मनोहर श्याम जोशी रघुवीर सहाय के साहित्यिक योगदान की चर्चा करते हैं। रघुवीर सहाय कलम का सहारा आर्थिक जरूरतों के लिए लेते हैं। इस संदर्भ में लेखक लिखता है- "उसने शुरू में ज्यादातर कहानियां तब-तब लिखी है जब-जब उसे लिखकर पैसा कमाने की जरूरत पड़ी है। तब पत्र-पत्रिकाएं कहानियां छापने पर ही पैसे देती थीं, कविताएं छापने पर नहीं"[41] रघुवीर सहाय द्वारा आर्थिक जरूरत के लिए उठाया गया रचनात्मक लेखन का कदम, कब उनका जुनून बन गया? इसका अंदाजा लगाना मुश्किल हैं। मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं- "बढ़े हुए पारिवारिक दायित्व और अनुवादक के रूप में छटपटाती साहित्य धर्मिता से रुग्णचित्त हो चुके रघुवीर ने अपनी बीमारी का एक ऐसा इलाज खोजें जो जितना कवियोचित्त था उतना ही अव्यावहारिक भी, रोजी-रोटी की कोई वैकल्पिक व्यवस्था किये बगैर उसने पक्की सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया।"[42] कृष्णा सोबती 'हम हशमत-3' में अशोक वाजपेयी के साहित्यिक समझ और योगदान की चर्चा करते हुए उन्हें साहित्य के लिए ज्यादा सही व्यक्ति मानती हैं। अशोक वाजपेयी प्रशासनिक अधिकारी थे। उनका सम्बन्ध हर खेमें के लोगों से था। उनका उठना-बैठना जितना प्रशासनिक अधिकारियों के बीच था, उतना ही साहित्य सेवियों, समाज सेवियों, राजनीतिक हस्तियों एवं सांस्कृतिक साधकों के बीच भी। इस संदर्भ में लेखिका कहती हैं- "उनका सर्जनात्मक ग्राफ इसलिए ऊँचा नहीं कि वह एक सफल नौकरशाह हैं और उनकी प्रशासनीय निपुणता भी सिर्फ इसलिए नहीं कि वह दशक-दर-दशक वरिष्ठ कवियों की पंक्ति में अडिग खड़े हैं। वह निबन्धकार, आलोचक हैं, चौकन्ने सुधि पाठक और संपादक भी। अशोक वाजपेयी में विविध अनुभवों के साथ गहराता वह आत्मबोध है जो साहित्य की सक्रियता में पनपा है। सघन और सतर्क।"[43] राजेन्द्र यादव 'वे देवता नहीं हैं' में रामविलस शर्मा, मोहन राकेश और अज्ञेय के साहित्यिक योगदान

की चर्चा करते हैं। वह अज्ञेय के साहित्यिक योगदान की चर्चा करते हुए, उनके इस साधना को साहित्यिक जगत में अविस्मरणीय बताते हैं। उनका मानना है कि अज्ञेय ने बिना किसी स्वार्थ के सिर्फ साहित्य सेवा की है। अज्ञेय का यह साहित्यिक समर्पण, उनके व्यक्तित्व को गहराई, उचांई, विस्तार और सम्मान दिलाता है। इस संदर्भ में लेखक लिखता है- "अज्ञेय शिखर थे; शिखर पर थे और इसलिए अकेले थे...ऊपर के हिम और नीचे के प्रलय-प्रवाह को देखते हुए। चेखव के 'काला पुजारी' की तरह, दोस्तोवस्की के 'फादर जोसिमा' की तरह...अपनी महानता में कैद और पहुँच से परे...एक बने-संवेरे चहेरे के पीछे संवादहीनता की नियति से बिंधे...विराट स्फिक्स (नृसिंह) की तरह धरती को दबाए- फीनिक्स की तरह अपनी ही आग के साक्षी... 'फादर फिगर'(पितृमूर्ति) से अधिक, 'फादर' की तरह आत्म-निर्वासन के निर्णय को जीता हुआ एक ऐसा रहस्यमय द्वीपवासी, जो किसी भी सेतु में (का?) विश्वास नहीं करता, किसी भी नाविक को अपना किनारा नहीं छूने देता...सिर्फ दूर से दिखाई देता है एक रजत-मीनार की तरह जो अपने होने के बिंदु पर सागर और आकाश को जोड़ देता है..."[44] अज्ञेय के समर्पण में भटकाव और उफान नहीं, स्थिरता थी, विस्तार के साथ गहराई थी। 'असाध्य वीणा' की तरह उन्होंने साहित्य को साधा था। उनके लिए साहित्य साध्य और साधन दोनों था। जैसे साधक अपनी साधना से भटकता नहीं है उसी प्रकार अज्ञेय के भी साधना में भटकाव नहीं है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "वे एक सम्पूर्ण, अखंडित और नीरन्ध्र व्यक्तित्व थे, परफैक्ट और परफैक्शनिस्ट सब मिलाकर वे गलत या सही हो सकते हैं, लेकिन अज्ञेय की पूरी जीवन-यात्रा में कहीं भटकाव और स्खलन नहीं है।"[45]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार का व्यक्तित्व भी उभरता है। संस्मरणकार जब स्मृत व्यक्ति को याद करता है तो उसके माध्यम से स्वयं को भी दर्ज करता हुआ दिखाई देता है। इसमें उसके व्यक्तित्व के साथ-साथ जीवन की समस्याएं भी उभरकर आती हैं। 'रघुवीर सहाय:रचनाओं के बहाने एक स्मरण' में मनोहर श्याम जोशी जब रघुवीर सहाय पर लिखते हैं तो दोनों के संबंध, व्यक्तित्व के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन की समस्याएं भी उभरकर सामने आती हैं। इसे मनोहर श्याम जोशी के इस कथन के माध्यम से समझा जा सकता है- "रघुवीर, जिसे लखनऊ में छूटे अपने परिवार के पालन के लिए नौकरी के साथ-साथ पत्रकारिता और अनुवाद वगैरह का काफी काम करना पड़ता था, क्यों इस तरह मेरी खातिर भी कलम-घिसाई करने को राजी हो जाता था? इसके जवाब में एक अटकल तो यह लगायी जा सकती है कि वह मुझे भी अपने छोटे भाई-सरीखा मानने लगा था लेकिन मैं समझता हूँ कि ज्यादा सही यह कहना होगा कि रघुवीर के मन में सहानुभूति का जबरदस्त माद्दा था।"[46] 'हम हशमत-3' में कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व और स्मृत व्यक्तियों के साथ संबंध उभरकर आता है। इस संस्मरण में कृष्ण सोबती का व्यक्तित्व हर स्मृत व्यक्ति के साथ अलग-अलग देखने को मिलता है। सत्येन पर संवादात्मक शैली में लिखे गए संस्मरण में उनके साहित्यकार व्यक्तित्व का रेखांकन मिलता है तो वहीं जयदेव, अशोक वाजपेयी के साथ सहज-सरल व्यक्तित्व का बोध होता है। विभूतिनारायण राय द्वारा स्त्रियों पर अभद्र टिप्पणी करने पर लेखिका का प्रखर तेवर और बेवाक रूप उभरकर आता है। जयदेव के माध्यम से उनके इसी

प्रखर तेवर का जिक्र मिलता है। लेखिका जयदेव की बातों को उद्धृत करते हुए लिखती हैं- “एक दिन हँसते-हँसते जय ने कहा- कहीं आपकी खूबियों का बखान हो रहा था! आपने अपने साथियों को खासा आतंकित कर रखा है।”[47] यह प्रसंग लेखिका के बोल्ड व्यक्तित्व की ओर इशारा करता है। कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व इस संस्मरण में एक स्पष्टवादी, सशक्त, बेवाक, ईमानदार लेखिका के रूप में आया है। लेखिका अपने लेखकीय जिम्मेदारी और आत्मीय सम्बन्धों को अलग रखकर देखती हैं। उनका व्यक्तित्व पक्षपात के भाव से बिल्कुल उन्मुक्त दिखाई देता है। एक सेमीनार में लेखिका और जयदेव एक साथ उपस्थित थे। जयदेव के पढ़े पर्चे में कमी और लापरवाही को देखकर, लेखिका वहाँ उपस्थित होने के कारण अपने लेखकीय कर्त्तव्य को दोस्ती के आड़े नहीं आने देती। वह बिना लाग-लपेट के उनका विरोध करती हैं। वह यह नहीं सोचती की यहाँ जयदेव की गरिमा धूमिल होगी, बल्कि एक लेखकीय गरिमा का ध्यान रखते हुए इन्टरव्यू में पूछे गए प्रश्नों का जवाब खुद देती हैं। जयदेव द्वारा रोष व्यक्त करने पर वे कहती हैं- “जो सवाल उठे और पूछे गए, उन्हें स्पष्ट करना मेरा लेखकीय कर्तव्य और अधिकार दोनों ही थे।”[48] लेखिका अपने और स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को उसी रूप में प्रस्तुत कर रही हैं जैसा वह यथार्थ रूप है। इससे एक बात बहुत स्पष्ट रूप से हमारे सामने उभर कर आती है कि आज के संस्मरणों में संस्मरणकारों का स्वीकारोक्ति भाव बहुत सहज रूप में दिखाई देता है, जो संस्मरण को उसकी विश्वसनीयता की ओर अग्रसर करता है। यही स्वीकारोक्ति भाव काशीनाथ सिंह के ‘याद हो कि न याद हो’ में दिखाई देता है जब वे रवींद्र कालिया, विजय मोहन, कमलेश्वर, गोविंद मिश्र पर लिखते हैं- “संस्मरण का यह वह स्थल है मित्रों, जहां मैं एक मानवीय दुर्बलता का शिकार हो रहा हूँ। अगर मेरे कथन में ‘आत्मप्रशंसा’ झलक जाए- जो कि झलकेगी-तो मुझे मतिमंद, कुटिल, खल, अधम आदि जानकर क्षमा करें”[49]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति से जुड़े उसके अनेकानेक संबंधों का रेखांकन देखने को मिलता है। इसमें स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ उससे जुड़े अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व का रेखांकन मिलता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के संबंधों के माध्यम से उसके व्यक्तित्व को खंगालने की कोशिश करता है। संस्मरणकार अन्य व्यक्तियों को तभी शामिल करता है, जब उससे अथवा स्मृत व्यक्ति से जुड़ा कोई प्रसंग हो। ‘हम हशमत-3’ में कृष्णा सोबती जब सत्येन की बात करती हैं तो वह सत्येन के साथ मंजूर एहतेशान के आपसी संबंधों को बताना नहीं भूलती हैं। इस कड़ी में वह मंजूर एहतेशान के व्यक्तित्व का भी रेखांकन करते हुए नजर आती हैं। संस्मरणकार का स्मृत व्यक्ति के अन्य संबंधों को रेखांकित करने के पीछे का एक औचित्य यह भी है कि इसके माध्यम से स्मृत व्यक्ति के व्यावहारिक और सामाजिक दायरों को समझा जा सकता है। सत्येन और मंजूर एहतेशाम के व्यक्तिगत सबन्धों पर प्रकाश डालते हुए कृष्णा सोबती उनके सम्बन्धों की स्वाभाविकता और मिठास का जिक्र करते हुए कहती हैं- "सत्येन बड़े भाई और मंजूर बरखुरदार बने इस अदबी दोस्ती को बखूबी निभाते हैं।...ऐसा भी नहीं कि एक-दूसरे से असहमति न जताते हों फिर भी कहीं कुछ ऐसा है जो स्वाभाविक रूप से गहरी दोस्ती को प्रकट करता है। एक साथ साहित्य को जानने-पहचानने और लिखने का रचनात्मक

अनुशासन शायद इसका रुचिकर आधार हो सकता है। एक ठेठ राजस्थानी और दूसरा खालिस भोपाली। चश्मेबद्दूर, इस नजदीकी में कोई जहरीली बूटी उग गई तो देखनेवाले मजा लेंगे! वैसे कहीं कोई स्पर्धा, एक-दूसरे को पछाड़ने की महत्त्वाकांक्षा लगती तो नहीं- शायद साहित्य की कड़ी अराजकता में अपनी-अपनी पहचान बनाए रखने का यह भी एक साझा मैत्री-उपक्रम है।"[50]

कृष्णा सोबती अपने संस्मरण में एक व्यक्ति के साथ-साथ कई व्यक्तियों के व्यक्तित्व को उद्घाटित करती हैं। सत्येन के साथ चार लोगों (जिसमें सत्येन, सत्येन की पत्नी, मंजूर एहतेशाम और खुद लेखिका) उपस्थित है लेकिन अपने संवाद में वहां अनुपस्थित निर्मल वर्मा की रचनात्मकता को भी वे याद कर लेती है। सत्येन और मंजूर एहतेशान के संबंध के साथ-साथ, वे मंजूर एहतेशाम के व्यक्तित्व को उभारती हुई नजर आती हैं। मंजूर एहतेशाम के लेखकीय और सहज व्यक्तित्व का परिचय देते हुए उन्हीं के मुख से कहलवाती हैं- "हम बिचारे लेखकों के काम काफी घटिया ही समझें। बीमारी ऐसी कि इससे निजात पाने का इलाज भी एक ही-लिखना। माफ कीजिए- लिखना ही नहीं, पहले तो यार लोगों के साथ बेमतलब घूमना इस उम्मीद में कि वह किसी शाम रौ में आकर चुपके से हमारी रचना की रूह हमें पकड़ा दें।"[51] सत्येन और स्वदेश दीपक के सम्बन्ध के बारे में कृष्णा सोबती बात करते हुए सत्येन के सहयोगी स्वभाव, साथ ही साथ सम्बन्धों के तमाम उतार-चढ़ाव की ओर भी ध्यान आकृष्ट करती हैं। वे लिखती हैं- "बरसों पहले सत्येन ही थे जो यह जानकर की स्वदेश की मनःस्थिति गहरी उदासी से ग्रस्त है, उसे अम्बाला से भोपाल लिवा ले गए थे। भोपाल से कुछ मित्रों के साथ मांडू की तफसीलें दीं। किस-किस से किस-किस का झगड़ा हुआ। किसका किससे मनमुटाव और किस पर बहस-मुहाबस। लड़ाई-झगड़े और प्यार-मुहब्बत भी।"[52] लेखिका दोनों के संबंधों के साथ-साथ स्वदेश दीपक की व्यक्तिगत समस्याओं को रेखांकित करती हैं। स्वदेश दीपक गहरी मानसिक पीड़ा से बाहर निकलने के बाद, ‘मैंने मांडू नहीं देखा’ यात्रा साहित्य पर एक पुस्तक लिखी। स्वदेश दीपक की पुस्तक के लोकार्पण में लेखिका शरीक होती है और स्वदेश दीपक के सन्दर्भ में वे कहती हैं- "बरसों के पिछवाड़े से स्वदेश के माथे का तनाव गायब था। गहरी मानसिक तल्खियों में से निकलकर दमक रहे थे। हमें स्वदेश पर गुमान हुआ।...'मैंने मांडू नहीं देखा' यह एक बीमार शख्स की सेहतमंद किताब है।"[53]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व से बखूबी परिचित होता है। वह उसके चरित्र को जानता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रमुखता देता है, जीवन की बाकी चीजें उसके लिए गौड़ है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार उन्हीं पर संस्मरण लिखता है, जिनके व्यक्तित्व से बखूबी परिचित होता है, जिनके साथ उनके संबंध प्रगाढ़ होते हैं। दोनों के संबंधों की प्रगाढ़ता ही स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व में स्पष्टता लाती है। स्मृत व्यक्ति

के व्यक्तित्व की स्पष्टता ही संस्मरणकार को संस्मरण लिखने के लिए प्रेरित करती है। वह उन्हीं पर संस्मरण लिखता है जिनके जीवन की अच्छाईयों के साथ-साथ बुराईयों को भी जानता है। उसके जीवन के अंतर्विरोधों से भली-भांति परिचित होता है। राजेन्द्र यादव कृत 'वे देवता नहीं हैं' में रामविलास शर्मा, अज्ञेय, मोहन राकेश, यशपाल, कमलेश्वर, नजीर अकबराबादी, धर्मवीर भारती, भैरव प्रसाद गुप्त, निर्मला जैन आदि को याद किया गया है। संस्मरणकार स्मृतियों के माध्यम से स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व की खोह में झाँकने की कोशिश करता है। उनके व्यक्तित्व के अनेक चित्रों को शब्दांकित करता है। इन स्मृतियाँ में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के जीवन के विविध रंग हैं, जिसे लेखक अपने अनुभव की कूंची से ज्यों का त्यों उतारने का प्रयत्न करता है। इन स्मृतियों में राग भी है तो दोष भी। सुख भी है तो दुःख भी। आत्मीयता है तो दूरी भी। स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व भी है तो समाज, राजनीति, संस्कृति, साहित्य भी। संस्मरणकार कभी स्मृत व्यक्ति के वैयक्तिक मूल्य, सामाजिक पहलू, राजनितिक समझ, दार्शनिक विचारों, सांस्कृतिक विविधता आदि को देखते हुए, अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मूल्याङ्कन करता है तो कभी उसकी रचनाओं का उसके व्यक्ति रूप से तुलनात्मक अध्ययन करता है। राजेंद्र यादव ने 'एक बेदाग बोर्जुआ' शीर्षक देकर अपनी पुस्तक में अज्ञेय को याद किया है। यह शीर्षक अज्ञेय के व्यक्तित्व का द्योतक है। लेखक का मानना है कि अज्ञेय के व्यक्तित्व का एक दायरा था। उस दायरे में हर किसी को घुसने की हिम्मत नहीं थी, लेकिन जो उसमें हिम्मत करके एक बार चला जाए, फिर सारी असहजता दूर हो जाती थी। अज्ञेय ने इस गरिमापूर्ण व्यक्तित्व को अपने प्रयत्नों से अर्जित किया है। अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता सिर्फ उनके लेखन में ही नहीं बल्कि जीवन में भी रही है। उनके जीवन की कठोरता, एकांतप्रियता, चिंतनशीलता आदि उन्हें स्खलन और भटकाव से बचाती हैं। अज्ञेय भीड़ के नहीं, बल्कि एकांत के कवि थे। लेखक कहता है- "अकेले थे और अद्वितीय थे, निजी और व्यक्तिनिष्ठ थे, कुलीन और अभिजात थे...मुक्ति का उद्गाता एक बंद व्यक्ति।"[54] रामविलास शर्मा के साथ आगरा में बिताये सुखद पल को राजेन्द्र यादव याद करते हैं। रामविलास शर्मा के साथ अपने सम्बन्ध की शिनाख्त करते हुए उनके आसपास के सम्बन्धों की चर्चा करते हैं। राजेन्द्र यादव और रामविलास शर्मा की घनिष्ठता उस समय से थी जब राजेन्द्र यादव विद्यार्थी और रामविलास जी अध्यापक थे। उसके साथ ही उनके आत्मकेंद्रित व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए एक तरफ उन्हें दंभी, अहंकारी और स्वार्थी बताते हैं तो वहीं दूसरी ओर उनकी अध्ययनशीलता, साहित्यिक साधना और साहित्यिक अवदान की प्रसंशा भी करते हैं। उनके अच्छाईयों को ग्रहण करना चाहते हैं तो उनके व्यक्तित्व की कुछ खामियों की आलोचना भी करते हैं। लेखक रामविलास शर्मा का अध्ययनशील व्यक्तित्व से प्रभावित था, जो उनके जीवन का साध्य था। रामविलास शर्मा का अध्ययन उन्हें बाहरी व्यावहारिक दुनिया से अलग करता था, यही कारण है कि उन्हें कभी-कभी द्वेष, आत्मकेंद्रित और स्वार्थी आदि होने का तगमा भी दिया जाता था। रामविलास शर्मा की आत्मकेंद्रीयता उनकी गम्भीर अध्ययनशीलता प्रमाणित करती है। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "शायद बिना इस तरह अकेला हुए साधना नहीं की जा सकती थी।

विराट मानव कल्याण के लिए जिंदगी समर्पित करने वाले प्रायः अपने तत्काल संबंधों के प्रति अमानवीय की हद तक उदासीन हो जाते हैं। अपनी मेज और कमरे में ही कैद रामविलास जी किसी दूसरे ही लोक के प्राणी लगते थे इसलिए सिर्फ 'श्रद्धेय' होते चले गए-क्लासिक पूज्य ग्रन्थों की तरह।"[55] कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत -3' में सत्येन, जयदेव, निर्मल वर्मा, अशोक वाजपेयी, विभूतिनारायण राय, देवेन्द्र इस्सर, निर्मला जैन, गिरधर राठी, शम्भुनाथ, रवीन्द्र कालिया, आलोक मेहता, विष्णु खरे पर संस्मरण लिखा है। लेखिका ने स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व को उसी रूप में चित्रित किया है जैसा वह वास्तविक रूप में था। कृष्णा सोबती का इन स्मृत व्यक्तियों से नजदीकी का साबका रहा है। इनमें से कुछ के साथ इनकी व्यक्तिगत अंतरंगता रही है तो कुछ के साथ साहित्यिक। इन्होंने अपने व्यक्तिगत एहसासों, सुखद पलों, साहित्यिक प्रतिस्पर्धा, शिकवा-शिकायत आदि को बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया है। इनके संस्मरण में अलग-अलग तरह के प्रयोग दिखाई देते हैं। संस्मरणों में यह परंपरा देखने को मिलती है कि संस्मरणकार उन्हीं पर संस्मरण लिखता था जिनसे उसके आत्मीय संबंध होते थे। लेखक घनिष्ठ व्यक्तियों पर संस्मरण लिखता था। समकालीन हिंदी संस्मरण में यह परंपरा टूटते हुए नजर आती है। कृष्णा सोबती 'हम हशमत' में उन स्मृत व्यक्तियों को भी याद किया है जिनसे उनके संबंध अच्छे न थे। व्यक्ति दो तरह के व्यक्तियों के व्यक्तित्व से बखूबी परिचित होता है। पहला वह जिनसे व्यक्ति के काफी घनिष्ठता हो। दूसरा वह जिनसे व्यक्ति का आपसी मतभेद और मनभेद हो। कृष्णा सोबती अपने संस्मरण में इन दोनों तरह के व्यक्तियों के व्यक्तित्व को रेखांकित किया है। इन्होंने सत्येन, जयदेव, अशोक वाजपेयी आदि जैसे घनिष्ठ और आत्मीयजनों की सुखद स्मृतियों को याद किया है, तो रवीन्द्र कालिया, विभूतिनारायण राय के साथ वैचारिकी और व्यक्तिगत असहमतियों के साथ अपने बुरे अनुभवों को भी रेखांकित किया है। वह अपने और अशोक वाजपेयी से जुड़े अनुभव और स्मृति में सिमटे चित्र को बड़ी सहजता और सरलता से रखते हुए उनके व्यक्तित्व को परत दर परत खोलती हैं। अशोक वाजपेयी का व्यक्तित्व इसलिए भी लोगों को प्रभावित करता है कि प्रशासनिक ऑफिसर जैसे भाग-दौड़ की नौकरी करने के बाद साहित्य के प्रति भरपूर समर्पित थे। इन दोनों कार्यों के प्रति गजब का उत्साह और अनुशासन था। अशोक वाजपेयी के व्यक्तित्व की तरफ इशारा करते हुए लेखिका लिखती हैं- "लेखकीय शख्सियत और नौकरशाही अनुशासन दोनों की खंडपीठ सही-सलामत हैं।"[56] जयदेव को याद करते हुए कृष्णा सोबती उनके सरल, सहज और सहयोगी व्यक्तित्व की प्रसंशा करती हैं। जयदेव के अंतर्मन को उघाड़ती हुए वे कहती हैं- "जयदेव मूड में होते तो सुथरा और सुलझा हुआ कहते। लेकिन तर्क और बहस की विरोधी तनातनी में अपने को ख़ामोशी में सोख लेते। मौन हो जाते। नुक्ताचीनी, शिकवा-शिकायत का सामना न के बराबर। ऐसे में बहुत बार लगता कि तुम अपने को परेशान रखने में माहिर हो। बोलने पर अंकुश लगानेवाली इतनी चुप्पी भी भला क्यों!"[57] जयदेव का बाह्यमन जितना सहज, सरल, साफ़-सुथरा, सुलझा हुआ है उससे कहीं ज्यादा अंतर्मन। उनकी बाह्य शख्सियत "दुबले-पतले अनुशासन प्रिय जयदेव अपने विनम्र परिश्रमी स्वभाव की तमाम असंगतियों को उद्यमशीलता से कुछ ऐसा ढाल लेते की हुनरमंदों को हतप्रभ कर देते।"[58] देवेन्द्र इस्सर के व्यक्तित्व की तरह ध्यान दिलाते हुए कृष्णा

सोबती लिखती हैं- “एक ऐसी शख्सियत जिसे न अपने पर अतिरिक्त रौब रखने की जरूरत और न बातों-बातों में अपने को प्रमोट करने की। देवेन्द्र का गहरा अध्ययन, शायस्तगी, दानाई और किसी से बेकार का झगड़ा मोल न लेने की समझ और अदबी कबीले को परखने की गहरी तालीम दूसरों में विश्वास जगाती। उम्मीद थी कि हमारा यह संयोजित काम कायदे मुताबित चल निकलेगा”[59] काशीनाथ सिंह ‘याद हो कि न याद हो’ में धूमिल, त्रिलोचन आदि पर संस्मरण लिखे हैं। त्रिलोचन के सत्यनिष्ठ व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं- “शास्त्री जी कही झूठ नहीं बोलते। झूठ में इतना साहस ही नहीं कि उनके पास आकर सुरक्षित रह सके। वह उनके दांतों के बीच पड़कर पटपटा उठता है और ‘सच’ होने के लिए तड़पने लगता है”[60]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में मित्रों पर लिखे गए संस्मरण में स्मृत व्यक्ति और उनकी रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से व्यक्तित्व का रेखांकन देखने को मिलता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व और विचार से बखूबी परिचित होता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त विचार और पात्रों के माध्यम से, उसके व्यक्तित्व का अक्श तलाश लेता है। निर्मला जैन के व्यक्तित्व से कृष्णा सोबती बखूबी परिचित हैं। वह निर्मला जैन पर संस्मरण लिखते हुए अपने अनुभवों को सीधा-सीधा न लिखकर, उनकी पुस्तक ‘शहर-दर-शहर’ का समीक्षात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत करती हैं। इस पुस्तक में अभिव्यक्त निर्मला जैन के विचार और व्यक्तित्व की तुलना अपने द्वारा स्मृत व्यक्ति से जुड़े अनुभवों से करती हैं। निर्मला जैन ने ‘शहर-दर-शहर’ के माध्यम से दिल्ली के सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को सामने लाने की कोशिश की हैं। दिल्ली शहर में निर्मला जैन के उभरते व्यक्तित्व की बानगी ‘शहर-दर-शहर’ के माध्यम से प्रस्तुत की गयी है। कृष्णा सोबती सत्येन के जीवन की रोमानियत को उनकी कहानी के एक कथन के माध्यम से उद्धृत करती हैं। इस कथन में सत्येन के व्यक्तित्व की छाप लेखिका को दिखाई देती हैं। वह स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए उस कथन को उद्धृत करती हैं- "एक धुन होती है जिंदगी। किसी साज पर बजती हुई धुन जैसे इसे कोई बजाता हो अपने माउथ आर्गन पर। उसके साथ ही खनकती हुई किसी की हंसी हवा में फैलती हुई जैसे कोई झरना किसी चट्टान पर से बहता हो।"[61] मनोहर श्याम जोशी कृत ‘रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने कुछ स्मरण’ में रघुवीर सहाय की मन:स्थिति को उनकी रचनाओं में देखा है। रघुवीर सहाय अपने जीवन की समस्याओं में इतने उलझे रहे कि अपनी पत्नी के साथ सुकून का जीवन बिता नहीं पाए। इसका मलाल उनकी रचनाओं में दिखाई देता है जिसे लेखक उद्धृत करता है- “एक दिन जल्दी ही हम दोनों में/कोई एक चला जाएगा/मैं अगर गया तो बहुत कागज छोड़ जाऊंगा/तुम अगर गयी तो कुछ नहीं छोड़ जाओगी/तुम एक जिन्दगी आधी-अधूरी हो/ जो लिखी नहीं गयी/ जो अभी जीई नहीं गयी/जिसकी अभी बातें हुई नहीं/ हम दोनों के बीच।”[62] ‘वे देवता नहीं हैं’ में राजेन्द्र यादव मोहन राकेश की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व को देखते हैं। मोहन राकेश के व्यक्तित्व को ‘आषाढ़ का एक दिन’ के कालिदास से जोड़कर देखते हुए वे लिखते हैं- “आषाढ़ का एक दिन मूलत: सत्ता और रचनात्मकता के संघर्ष की कहानी है, जो रचनात्मकता एक साधारण आदमी को कालिदास बनाती है, उसे ही सीढ़ी बनाकर वह ऊपर

की अभिजात दुनिया में जा-शामिल होता है, जिंदगी भर इस दंश से क्षत-विक्षत रहता है कि उसने 'आप' के साथ विश्वासघात किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' राकेश की सबसे प्रामाणिक रचना है"[63] इसी तरह यशपाल पर बात करते हुए वे उनकी रचनाओं में व्यक्ति और समाज की समस्याओं की तुलना उनकी सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक प्रतिबद्धता से करते हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में सहकर्मियों पर लिखे गएसंस्मरणों में व्यक्तित्व के नैतिक मूल्यों का दायरा टूटता हुआ नजर आता है। पूर्ववर्ती हिंदी संस्मरण में स्मृत व्यक्ति का आदर्श और नैतिक रूप प्रस्तुत किया जाता था। संस्मरणकार उन प्रसंगों से बचता था, जो सामाजिक रूप से वर्जित हो। समकालीन हिंदी संस्मरण इस वर्जना को तोड़ता है। आज के दौर में संस्मरणकार संस्मरण में उन सभी प्रसंगों को शामिल करता है जो समाज में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। 'हम हशमत-3' में कृष्णा सोबती को अपना या स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व रेखांकन में नैतिकता के साँचे की जरूरत नहीं पड़ती है। वह उस रूप को सामने लाती हैं जैसा वह वास्तविक रूप में है। सत्येन पर लिखे संस्मरण में लेखिका बड़ी सहजता से अपने मित्रों के साथ ड्रिंक करती नजर आती हैं। समकालीन हिंदी संस्मरण में मित्रों के सामने स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का सहज रूप उभरकर आता है। इस रूप में मर्यादा और नैतिकता का दबाव नहीं रहता है, बल्कि जीवन की सहज अभिव्यक्ति दिखाई देती है। किसी भी व्यक्ति के जीवन का एक पक्ष ऐसा होता है जिसकी सहज रूप में अभिव्यक्ति मित्रों या सहकर्मियों के सामने होती है। रवींद्र कालिया 'गालिब छूटी शराब' में अपने मित्रों के साथ बिताईं उन तमाम स्मृतियों का जिक्र करते हैं जो समाज के नैतिक मूल्यों को चुनौती देती हैं। उनके संस्मरण में शराब पीना, प्रेमी-प्रेमिका का संबंध, नशे में की गई गतिविधियों, दोस्तों को गालियां आदि का जिक्र बहुत सहज और जीवंत रूप में दिखाई देता है। काशीनाथ सिंह द्वारा रामाधार सिंह, धूमिल, रवींद्र कालिया आदि पर लिखे गए संस्मरणों में क्षेत्रीय शब्दों और प्रसंगों का प्रयोग जितनी सहजता से हुआ है वह पारिवारिक व्यक्ति नामवर सिंह पर लिखे गए संस्मरणों में नहीं देखने को मिलता है। मित्रों या सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरण को लेकर काशीनाथ सिंह कहते हैं- "मित्रों, यह संस्मरण वयस्कों के लिए है, बच्चों और बूढ़ों के लिए नहीं; और उनके लिए भी नहीं, जो यह नहीं जानते कि अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है! जो भाषा में गंदगी, गाली, अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मोहल्ले के भाषाविद 'परम' (चूतिया का पर्याय) कहते हैं, वे भी कृपया इसे पढ़कर अपना दिल न दुखाएं..."[64] रामाधार सिंह पर लिखे गए संस्मरण में भाषा का अंदाज बनारसी लहजे में दिखाई देता है जिसमें सम्बोधन के लिए 'साले' 'अबे' जैसे अनेक शब्दों की भरमार है। मनोहर श्याम जोशी का अपने संस्मरण में 'कन्या कष्ट' जैसे शब्दों का इस्तेमाल बहुत स्वाभाविक रूप में हुआ है। यह लेखक के भावों की सहज अभिव्यक्ति, साहित्य पर लादी हुई नैतिकता को तोड़ती है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में मित्रों पर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का मूल्यांकन होता है। इसके माध्यम से स्मृत व्यक्ति का वैयक्तिक पक्ष और अधिक स्पष्टता से उभरकर आता है। राजेन्द्र यादव द्वारा रांगेय राघव, रामविलास शर्मा, मोहन राकेश आदि पर लिखे गए संस्मरण को देखा जाए तो

स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है। वह एक तरफ इन स्मृत व्यक्तियों के साहित्यिक अवदानों और व्यक्तित्व के सकारात्मक पक्षों की प्रसंशा करते हैं वहीं दूसरी तरफ उनके व्यक्तित्व की कमजोरियों को बताना नहीं भूलते हैं। रांगेय राघव जब कैंसर से पीड़ित थे, उस समय तक उनका साहित्यिक अनुराग पहले जैसा बना रहा। कैंसर से लड़ने के दौरान उन्हें कम्प्लीट रेस्ट के लिए बोला गया, लेकिन उनके साहित्यिक लगाव ने इस कंप्लीट रेस्ट में भी मेघदूत, ऋतुसंहार इत्यादि का अंग्रेजी और हिंदी में पद्यबद्ध अनुवाद कर डाला था। उनका साहित्यिक लगाव और भाषा पर जबरदस्त अधिकार देखकर राजेंद्र यादव ने उनकी तुलना गोर्की, मायकोव्स्की से की है। लेखक एक तरफ स्मृत व्यक्ति के साहित्यिक योगदान की ख़ूबियों का प्रसंशक है वहीं दूसरी ओर उनकी व्यक्तिगत कमजोरियों का आलोचक। लेखक कहता है कि रांगेय राघव जब दूसरे के व्यक्तिगत चुनौतियों को अपने 'अहं' से जोड़कर उसमें उलझने लगते हैं तब बहुत छोटे नजर आते हैं। उनका अहं चुनौतियों को स्वीकार करता था। लेखक कहता है- "खंड काव्य 'मेंधावी' में 'कामायनी' की भाषा और परिकल्पना की छाप है तो 'घरौदें' भगवतीचरण वर्मा के 'तीन वर्ष' को 'स्प्रिंग-बोर्ड' की तरह इस्तेमाल करता है। 'आनंद मठ' की धरती को उन्होंने 'विषाद मठ' में अकाल-विपन्न और गत-वैभव दिखाया है तो 'सीधा-सादा रास्ता' में 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के ही पात्र और परिस्थितियाँ लेकर जवाब दिया गया है। 'मुर्दों का टीला' की नायिका निलोफर के सामने यशपाल की 'दिव्या' और 'चित्रलेखा' का वातावरण है।"[65] साहित्यिक मजबूती और व्यक्तिगत कमजोरियां जब चित्रित होने लगती हैं तो स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व और स्पष्ट उभरकर आता है। कृष्णा सोबती अपनी पुस्तक 'हम हशमत-3' में सत्येन, जयदेव, अशोक वाजपेयी के साथ अच्छे अनुभवों को साझा करती हैं वहीं विभूतिनारायण राय, रवीद्र कालिया के साथ अपने बुरे अनुभवों को रेखांकित करने में कोई गुरेज नहीं करती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सहकर्मियों पर लिखे गएसंस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के जीवन का कुछ हिस्सा उभरकर आता है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहराई में गोता लगाता हुआ दिखाई देता है। सहकर्मियों पर लिखे गए संस्मरण में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति से जुड़े अपनी स्मृतियों के महत्त्वपूर्ण हिस्सों को उभारने की कोशिश करता है। इस तरह के संस्मरणों में यह देखने को मिलता है कि स्मृत व्यक्ति के जीवन का सीमित और महत्त्वपूर्ण पहलू ही पाठक के सामने उभर कर आता है। इस तरह के संस्मरण में लेखक के अनुभव की सीमा होती है। वह उसी समय-सीमा की बंधी-बधायी स्मृतियों और अनुभवों से स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश करता है। सहकर्मियों पर लिखे गएसंस्मरणों में यह जरूरी नहीं है कि स्मृत व्यक्ति को जानने के लिए उसके साथ वर्षों रहा जाए। यह उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है कि उसका व्यक्तित्व कितना जल्दी उभरकर सामने आता है। संस्मरणकार उन्हीं पर संस्मरण लिखता है जिनके व्यक्तित्व से वह बखूबी परिचित हो। व्यक्तित्व की परख को लेकर हृदयेश कहते हैं- "संस्मरण लिखने के लिए संबंधित संस्मृत को ठीक से जानने-समझने के लिए उसको समय के विस्तृत फलक पर देखना-परखना एक आदर्श स्थिति है, किन्तु यह एक अनिवार्य शर्त नहीं बन सकती है। कम समय भी अपने संस्मृत को

जानने-समझने में खास बाधा नहीं बनता। कुछ व्यक्ति धीरे-धीरे अनावृत होते हैं, कुछ तेजी से कुछ और भी तेजी यानी इक झपाटे में ही बेपरदा, बिला दरोदीवार वाले। मायने रखता है कि सम्पर्क में आए संस्मृत ने संपर्क के अन्दर कितना स्थान घेरा है, फ़ैल-पसार में नहीं, गहराई में धँसकर भी।”[66]

आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति का चित्रांकन:

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए आत्मकथात्मकता को माध्यम बनाया गया। यह आत्मकथ्य स्मृत व्यक्ति का ही नहीं, बल्कि संस्मरणकार का भी है। इस 'आत्म' में 'पर' की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। लेखक अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों से मिलता है। उसमें से कुछ व्यक्ति और उनसे जुड़ी घटनाएँ, उसकी स्मृति पर अमिट छाप छोड़ देती हैं। उन स्मृतियों को वह आत्मकथ्य के धागे में पिरोता हुआ स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश करता है। संस्मरणकार के इस आत्मकथ्य में सिर्फ वही व्यक्ति आते हैं जिनसे उनका घनिष्ठ संबंध होता है। वह अपने आत्मीय संबंधों की स्मृतियों को शब्दांकित करता है।

आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में रवींद्र कालिया कृत 'गालिब छूटी शराब', मनोहर श्याम जोशी कृत 'लखनऊ मेरा लखनऊ', ममता कालिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार' है। इन संस्मरणों के माध्यम से संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को रेखांकित करता है। इस रेखांकन में स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार के व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति मिलती है। इसमें संस्मरणकार और स्मृत व्यक्तियों के जीवन के विविध रंग उभरकर आते हैं। यह विविधता जीवन की ही नहीं बल्कि व्यक्तित्व की भी होती है। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को लेकर लेखक के अनुभव की गहराई और विस्तार जितना होगा, स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व उतना ही स्पष्ट होगा।

आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों को देखकर ऐसा लगता है कि 'आत्म अर्थात् संस्मरणकार' संस्मरण का केन्द्रीय या आधार बिन्दु हैं लेकिन इस 'आत्म या संस्मरणकार' का उद्देश्य 'पर अर्थात् स्मृत व्यक्ति' के व्यक्तित्व का रेखांकन करना होता है। 'ग़ालिब छूटी शराब' में रवीन्द्र कालिया 'आत्म' के साथ 'पर' को रेखांकित करते हैं। उनके 'आत्म' के साथ 'पर' का जुड़ाव इतना है कि दोनों का व्यक्तित्व एक साथ चित्रित होता है। लेखक इस आत्मकथ्य के माध्यम से अपने और स्मृत व्यक्ति के जीवन के विभिन्न हिस्सों को समेटने की कोशिश करता है। उसके जीवन का लगभग महत्त्वपूर्ण कालखंड इस संस्मरण में आ जाता है जिसमें जवानी से लेकर बुढ़ापें तक का सफ़र दिखाई देता है। किसी व्यक्ति के जीवन का यह कालखंड बहुत महत्त्वपूर्ण होता है जो उसके जीवन के सभी पक्षों से रू-ब-रू कराता है। चाहे वह उसके संघर्ष का समय हो या कामयाबी का। उत्थान का हो अथवा पतन का। रवीद्र कालिया अपने संस्मरण में कॉलेज के दिनों से लेकर जीवन के आखिरी पड़ाव तक (जब वह गम्भीर रूप से बीमार पड़े) अपनी उन स्मृतियों का रेखांकन करते हैं जिनसे उनका गहरा सम्बन्ध था। इस संस्मरण में लेखक और स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व को बड़े स्पष्टता के साथ चित्रित किया गया है। लेखक संस्मरण की शुरुआत में अपनी माँ के व्यक्तित्व को रेखांकित करता है। इसके बाद वह अपने उन तमाम आत्मीय सम्बन्धों की शिनाख्त करता है जिससे उसका जुड़ाव होता है।

आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरण में लेखक केवल व्यक्ति चित्र ही नहीं उभारता, बल्कि उस व्यक्ति चित्र के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक,

साहित्यिक मूल्यों आदि की भी पड़ताल करता है। मनोहर श्याम जोशी कृत 'लखनऊ मेरा लखनऊ' में लेखक लखनऊ के उन व्यक्तियों का चित्र खींचता हैं जिनसे उसकी घनिष्ठता है। संस्मरणकार वहाँ से जुड़ी स्मृतियों, अंतरंग संबंधों के साथ-साथ उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक स्थितियों पर दृष्टि डालता है। 'कितने शहरों में कितनी बार' में ममता कालिया बचपन से लेकर लेखिका बनने तक, जिंदगी के सफर के साथ-साथ अनेक शहरों का सफर किया। उन्होंने कलकत्ता, मुंबई, दिल्ली, इलाहाबाद आदि शहरों में व्यक्ति और समाज के वैविध्य को देखा है और उसकी जीवंतता को संस्मरण में रेखांकित करने की कोशिश की हैं। 'गालिब छूटी शराब' में रवींद्र कालिया ने व्यक्ति चित्र के साथ-साथ जालंधर, दिल्ली, मुंबई और इलाहाबाद आदि शहरों की क्षेत्रीय विविधताओं का चित्र भी उभारा है।

आत्मकथात्मक संस्मरणों में संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का रेखांकन करता है। संस्मरणकार 'आत्मकथ्य' का सहारा लेता है लेकिन व्यक्तित्व 'पर' का उभरता हुआ नजर आता है। रवींद्र कालिया कृत 'गालिब छूटी शराब' में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को बड़ी स्पष्टता से उभारा गया है। कपिल, धनराज, फ़ाकिर के व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए रवींद्र कालिया उनके जीवन की विपरीत परिस्थितियों को रेखांकित करते हैं वहीं सत सोनी और भाटिया के साथ अपने सम्बन्ध की चर्चा करते हुए, उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उभारते हैं। भाटिया के सहज-सरल व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए वे उनसे जुड़े अनेक रोचक प्रसंगों की चर्चा करते हैं। जगदीश चतुर्वेदी का जिक्र करते हुए वे अपने को उनकी कविताओं का प्रत्यक्ष दर्शी बताते हैं। डॉ.धर्मवीर भारती के साथ अपने आत्मीय संबंध की अनेक झाँकिया रवींद्र कलिया प्रस्तुत करते हैं। डॉ. धर्मवीर भारती को लेखक 'धर्मयुग' में काम करने के दौरान और बेहतर ढंग से जानपाता है। एक सम्पादक की हैसियत से धर्मवीर भारती कैसे व्यक्ति हैं? लेखक को यह जानने का अवसर मिला। रवींद्र कालिया कहते हैं कि उनके दफ्तर में किसी भी कर्मचारी को शराब, सिगरेट पीने की इजाजत नहीं थी। इसके अलावा कोई कर्मचारी किसी और से बात करते हुए मिल गया, तो धर्मवीर भारती नाराज होते थे। धर्मवीर भारती के दफ्तर को रवीन्द्र कालिया शुद्ध शाकाहारी कहते है और उसकी तुलना जैन मंदिर से करते हैं। 'धर्मयुग' के दफ्तर का माहौल कैसा था, रवीन्द्र कालिया उसके संदर्भ में विस्तृत चर्चा करते हैं। वह अगल-बगल के सरल-सहज और तनावमुक्त दफ्तरों की प्रशंसा करते हैं। 'धर्मयुग' के तनावपूर्ण माहौल में खुद को ढालना वे नामुमकिन समझते हैं। वहाँ से जुड़ी अपनी उन तमाम स्मृतियों को लिखते हैं जिनसे डॉ.धर्मवीर भारती का व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। धर्मवीर भारती के संदर्भ में वे लिखते हैं- "डॉ.धर्मवीर भारती एक कुशल प्रशासक की तरह 'डिवाइड एंड रूल' में विश्वास रखते थे। उपसंपादकों को एक साथ कहीं देख लेते तो उनकी भृकुटी तन जाती। बहुत जल्द इसके परिणाम दिखाई देने लगते। किसी को अचानक डबल इन्क्रीमेंट मिल जाता। किसी एक से सपारिश्रमिक अधिक लिखवाने लगते। किसी एक का वजन अचानक बढ़ने लगता। एक अचानक देवदास की तरह उदास दिखने लगता। चुगली से बाज रहने वाला आदमी अचानक चुगली में गहरी दिलचस्पी लेने लगता। सम्पादक के कृपापात्र को सब संशय से देखने लगते। वह भरे दफ्तर में अकेला हो जाता।"[67] रवीन्द्र कालिया अपने मित्र स्नेह कुमार चौधरी के सरल-सहज व्यक्तित्व को बताते

हुए उनके जीवन और परिवार की तमाम समस्याओं को रेखांकित करते हैं। स्नेह कुमार चौधरी दब्बू स्वभाव के थे, इससे निकलने के लिए वे संघर्ष भी कर रहे थे। उनके इस स्वभाव का फायदा भी लोग उठाते थे। रवींद्र कालिया फिराक के व्यक्तित्व का रेखांकन करते हैं। फिराक का बेवाक व्यक्तित्व लेखक को आकर्षित करता है। रवींद्र कालिया का कहना है कि फिराक हमेशा बोतल (शराब) को सामने रखते थे। उनके व्यक्तित्व के संदर्भ में वे लिखते हैं- “फिराक साहब की शख्सीयत जितनी बुलंद थी वह उतनी ही बुलंदी से बात करते। एक बार उन्होंने नीलाभ से कहा, तुम्हारा बाप कब तक घटिया अफसाने लिखता रहेगा? फिराक साहब की किसी बात का कोई बुरा नहीं मानता था। उनकी मयनोशी उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बन चुकी थी, वर्ना हिंदी में दारू पीने वाले को आवारा, चरित्रहीन, गैरजिम्मेदार और भ्रष्ट लेखक समझा जाता था। जैसा राजकमल चौधरी के साथ हुआ था।”[68] ‘कितने शहरों में कितनी बार’ में लेखिका तमाम स्मृत व्यक्तियों के साथ अपने अच्छे-बुरे अनुभवों को साझा करती हैं। अश्क के साथ अपने अनुभव को साझा करते हुए, लेखिका उनके साहित्यिक योगदान की सराहना करती हैं तो रिश्तों में मध्यस्थता की आलोचना भी। वे लिखती हैं- “मेरी याददाश्त में कौध गए वे सारे रिश्ते जो अश्क जी की मध्यस्थता से मुंह के बल गिरे थे। अश्क की जितनी ख्याति साहित्य के कारण थी उससे कम साहित्येतर कारणों से न थी। कांता भारती-धर्मवीर भारती, मन्नू भण्डारी-राजेन्द्र यादव, शीला राकेश-मोहन राकेश, कोई कम चमकदार नहीं थे वे जोड़े जिन्हें अश्कजी की सलाह का मौका मिला था। टूटे सितारों की कहकशां में मैं अपना नाम नहीं लिखवाना चाहती”[69]

आत्मकथात्मक संस्मरणों में संस्मरणकार की प्रत्यक्ष उपस्थिति रहती है। इसमें संस्मरणकार का व्यक्तित्व किसी माध्यम से नहीं बल्कि सीधे-सीधे उभरकर आता है। पारिवारिक व्यक्ति तथा मित्रों पर लिखे गए संस्मरणों में देखा गया है कि संस्मरणकार का व्यक्तित्व, स्मृत व्यक्ति के माध्यम से उभरता है। आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार का व्यक्तित्व, व्यक्तिगत संबंध, जीवन की परिस्थितियाँ आदि स्मृत व्यक्ति के माध्यम से नहीं, बल्कि सीधे-सीधे आती हैं। ‘गालिब छूटी शराब’ में संस्मरणकार अपने कॉलेज के दिनों, व्यक्तिगत संबंधों, पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति, जीवन के संघर्षों आदि के यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। रवीन्द्र कालिया के जीवन के संघर्षों का बहुत जीवंत रूप उनके संस्मरणों में दिखाई देता है। संस्मरणकार जब आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा था, तब उन्होंने प्रेस में नौकरी कर ली। उस नौकरी से मिली आय से लेखक और परिवार का गुजारा करना मुश्किल था। रवींद्र कालिया के इस कथन से उनकी आर्थिक स्थिति और जीवन के अभाव को देखा जा सकता है- “सुबह से शाम तक मैं बैल की तरह प्रेस के कोल्हू में जुता रहता, फिर भी पूरा न पड़ता तो बेईमानी पर उतर आता। यह सोच कर आज भी ग्लानि में आकंठ डूब जाता हूँ कि माँ अपनी दवा के लिए पैसे देती तो मैं निःसंकोच ले लेता। वक्त जरूरत उसके हिसाब किताब में गड़बड़ी भी कर लेता...जिन्दगी की गाड़ी सरकती रही, एक पैसेंजर गाड़ी की तरह रफ्त: रफ्त: हर स्टेशन पर रूकते हुए। कई बार तो एहसास होता कि मैं बगैर टिकट के इस गाड़ी में यात्रा कर रहा हूँ।”[70] संस्मरणकार के जीवन के संघर्षों ने, उन्हें जिंदगी के अनेक रंग दिखाएँ। वे लिखती हैं- “जिन्दगी के अनेक रंग देखने को मिले- रंग और बदरंग दोनों। चालीस बरस की लम्बी यात्रा के बाद भी एहसास होता है कि अभी तो

मीलों मुझको चलना है। एक अंतहीन यात्रा है यह। एक ऐसी यात्रा कि पाथेय का भी भरोसा नहीं रहता।"[71] जिन्दगी की धूप-छांही में संस्मरणकार भी डूबता-उतराता रहा है। उसके जीवन में कभी आदतन अथवा कभी परिस्थितिजन्य परेशानियाँ आती रहती थीं। रवीन्द्र कालिया जालन्धर, दिल्ली, मुम्बई रहे, लेकिन इलाहाबाद में उन्हें अपेक्षाकृत ज्यादा संघर्षों का सामना करना पड़ा। इलाहाबाद में प्रेस की जिम्मेदारी लेने के बाद लेखक का कुछ समय तंगी की हालत में बीता। अपनी आर्थिक स्थितियों के बारे में लिखते हैं- "जिन्दगी तमाम लोगों के साथ धूप-छाँव का खेल खेला करती है। मैं भी अपवाद नहीं था। बहुत बार ऐसा हुआ कि जी तोड़ मेहनत करने के बावजूद स्थितियां नहीं बदलीं और ऐसा भी हुआ कि टांग पर टांग धरे रहे और स्थितियां अनुकूल होती चली गयीं। महीने की पहली तारीख मेरे लिए सबसे ज्यादा तंगदस्ती का पैगाम लेकर आती। श्रमिकों का वेतन, प्रेस की किस्तें और दूसरी देनदारियों का इंतजाम करते-करते पसीने छूट जाते। कर्ज का जरा-सा बोझ कम हो जाता, मगर जेब और पेट में चूहे दौड़ते। ऐसी एक शाम चूहों ने इतना उत्पात मचा रखा था कि जेब में मूंगफली खाने तक के लिए पैसे न थे।"[72] रवीन्द्र कालिया की आर्थिक जरूरतें जब नौकरी से नहीं पूरी होती, तब वे कहानी लिखना शुरू कर देते। कहानी लिखने के पैसे मिलते थे, इसलिए संस्मरणकार कुछ समय तक कहानियां लिखकर अपनी जरूरतों को पूरा किया। वे लिखते हैं- "इस ऋण के दबाव में मैं कथा कहानी की दुनिया से भटकने लगा। श्रम, तनाव और कार्यभार से राहत पाने के लिए सूरज डूबते ही गिलास लेकर बैठ जाता। स्टीरियो पर अपनी पसंद का संगीत सुनता। उन दिनों बेगम अख्तर का मैं इतना दीवाना हो गया था कि उनका शायद ही कोई एल.पी होगा जो मेरे पास न हो।"[73] इन तमाम प्रसंगों के माध्यम से संस्मरणकार के जीवन को जाना जा सकता है। 'कितने शहरों में कितनी बार' में ममता कालिया अपने जीवन से जुड़े तमाम प्रसंगों को रेखांकित करती हैं। उन्होंने अपने अविवाहित जीवन के अकेलेपन को भी रेखांकित किया है तो परिवार की झंझावतों को भी । शादी से पहले अपने जीवन साथी को लेकर अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए लेखिका लिखती हैं- "मुझे तो एक दोस्त चाहिए था जो न सिर्फ अविवाहित हो वरन कुंवारा भी। मेरी तरह। जिसके जीवन में किताबों की संपदा हो, कलम की पूंजी; जिसे मैं साँवली नहीं सलोनी नजर आऊँ, जो मुझे ऐसे चाहे जैसे राँझा ने हीर को, मजनूँ ने लैला को और महिवाल ने सोहनी को चाहा। बल्कि उससे भी ज्यादा। जिसके लिए मैं इतने वर्षों का संचित अपना सूखापन खुशी-खुशी समर्पित कर दूँ। मेरे पास पात्र नहीं था, मैं प्रेम के भाव से प्रेम कर रही थी।"[74] शादी से पहले भावों की जिस भावधारा में लेखिका डुबकी लगा रही थीं, वह यथार्थ की धरातल पर कुछ और ही था। वे अपने संबंधों के संदर्भ में लिखती हैं- "लाख प्रेम हो, शादी हमारे मुल्क में आज भी एक असमान संबंध है और रहेगा। पत्नी को शिकायत हो, गुस्सा आए तो पति एक टेक लेकर अड़ जाता है-तुमने गुस्सा किया तो क्यों किया, तुममें धैर्य नहीं, तुममें क्षमा नहीं, तुम कैसी पत्नी हो? हमारी एक सेविका जब भी मुझे गुस्सा होते देखती तो कहती– 'बहन जी, औरतन को मरदन की तरह गुस्सा न करना चाही'"[75] समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरण में संस्मरणकार का व्यक्ति चित्र ही नहीं बल्कि

जीवन की समस्याओं को भरपूर जगह मिलती हैं। आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरण में संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के जीवन को समग्रता से समझा जा सकता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में नैतिक मूल्यों का ढांचा टूटता हुआ नजर आता है। शुरुआती दौर के संस्मरणों में देखा जाए तो उन प्रसंगों का जिक्र नहीं किया जाता था जो समाज के बने-बनाये नैतिक ढांचे को तोड़ता था। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन नैतिकता का नहीं बल्कि यथार्थ का आग्रही है। वह अच्छे-बुरे का चुनाव किये बिना समाज में व्याप्त उन सभी प्रसंगों को संस्मरण का माध्यम बनाता है। आखिर क्या कारण है जो चीज समाज में व्याप्त है, जो व्यक्ति और समाज द्वारा उपयोग में लायी जाती है? उसपर खुलकर बात क्यों नहीं की जा सकती है? क्या कारण है कि समाज में व्यक्ति का शराब पीना नैतिक और चारित्रिक रूप से पतित माना जाता है? या उसके पीछे कोई और वजह है? इन तमाम प्रश्नों का समाधान रवींद्र कालिया का यह कथन है, जब वह शराब को व्यक्ति की स्थिति से जोड़कर देखते हुए लिखते हैं- "गरीबी भी मदिरा के लिए उकसाती है और सम्पन्नता भी। सुख प्रेरित करता है तो दुःख भी पुकारता है। आदमी उल्लास में भी पीता है, विलास में पीता है, शोक में पीता है, संताप में पीता है, परिताप में पीता है। मदिरापान स्टेट्स सिम्बल भी है और तोहमत भी। व्यवसाय के लिए अभिशाप भी है और वरदान भी। कभी-कभी मदिरा के दौरान बड़े-बड़े कांट्रैक भी हो जाते हैं, वारे न्यारे हो जाते हैं, मगर इसी मदिरा से लोगों को कुर्क होते देखा है, दिवालिया होते देखा है, बर्बाद होते देखा है। आसमान छूते देखा है तो धूल चाटते भी देखा है।"[76] संस्मरणकार ने नशे को व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थिति से जोड़कर देखा है। लेखक इस संस्मरण में अपने उन दोस्तों का जिक्र करता है, जिनके लिए नशा शौक नहीं, बल्कि जीवन की प्रतिकूल परिस्थिति को कुछ समय के लिए भूलने का एक माध्यम है। लेखक के लिए शराब ही ऐसा माध्यम है जिससे उनके यहाँ हमप्याला दोस्तों का दायरा बढ़ने लगा। रवींद्र कालिया का मानना है कि शराब व्यक्ति के सामाजिक दायरा को बढ़ाती है। वह व्यक्ति को सामाजिक बनाती हैं। इस संदर्भ में रवींद्र कालिया कहते हैं- "मद्यपान एक सामाजिक कर्म है, समाज से कट कर मद्यपान नहीं किया जा सकता। जो लोग ऐसा करते हैं वह आत्मरति करते हैं। वे पद्य की रचना तो कर सकते हैं, गद्य की नहीं।"[77] पीने वाला व्यक्ति कभी अकेले नहीं रहता है और न ही अकेले शराब पीता है। रवीन्द्र कालिया लिखते हैं- "धीरे-धीरे मेरे हमप्याला हमनिवाला दोस्तों का दायरा इतना वसीह हो गया था कि उसमें वकील थी थे और जज भी। प्रशासनिक अधिकारी थे तो उद्यमी भी, प्रोफ़ेसर थे तो छात्र भी। ये सब दिन ढले के बाद के दोस्त थे।"[78] 'गालिब छूटी शराब' में शराब और उसे पीने वालों का इतना खुला चित्रण, संस्मरण के उस नैतिक ढांचे को तोड़ता है जो शुरुआती दौर के संस्मरणों में दिखाई देता है। जो संस्मरण के पारम्परिक ढांचे को तोड़ता है यह अपने आप में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को रेखांकित करने का एक अलग प्रयोग ही है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन व्यक्तित्व को देखने-परखने का एक खुला प्लेटफ़ॉर्म तैयार किया है। इसके माध्यम से सिर्फ व्यक्ति को ही नहीं बल्कि समाज को भी समझा जा सकता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरण में स्मृत व्यक्ति के जीवन की समस्याओं को रेखांकित संस्मरणकार करता है। स्मृत व्यक्ति के जीवन

की समस्याएं उसके व्यक्तित्व को कितना प्रभावित करती हैं, इसे लेखक ने बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया है। 'गालिब छूटी शराब' में लेखक सुदर्शन फाकिर और कपिला के व्यक्तिगत परिस्थितियों का चित्रण करता है। इनके जीवन की समस्याएं जब नाकाबिले बर्दाश्त हो गयी तब इन्होंने शराब का सहारा लिया। शराब इनके लिए फैशन नहीं थी, बल्कि जीवन के दर्द को भुलाने के लिए सुकून का साधन थी। शराब उनके अकेलेपन को भरने का एकमात्र सहारा थी। सुदर्शन फ़ाकिर और कपिला जीवन का दर्द भुलाने के लिए नशे आगोश में डूबते गए। कपिला की पारिवारिक स्थिति तनाव से भरी थी। जब उन्हें प्रेम हुआ तो उससे भी राहत नहीं मिली। फ़ाकिर, कपिला, धनराज जब समाज और परिवार के दुःख को झेल न सके, तो मदिरा को सुकून का साधन बनाया। शराब का खर्च रोज वहन न कर पाने के कारण, इन्होंने नींद की गोलियों को विकल्प के रूप में चुना। इन गोलीयों ने इन्हें काल के मुंह में झोक दिया। ये गोलियां इन्हें जीवन के अवसाद से दूर ले जाती थीं। ये तीनों जीवन के अवसाद में डूबे थे, उस अवसाद से निकलने का माध्यम नशा को बनाया। रवींद्र कालिया लिखते हैं- "नशे में कोई तो ऐसी विशेषता अथवा शक्ति होगी कि लोग इसके मोहपाश में गिरफ्तार होकर इसके लिए अपना सब कुछ न्योछावर करते देखे गए हैं- घर-परिवार, सुख-चैन, समकालीन और भविष्य। यहाँ तक कि अपने स्वास्थ्य और प्राणों की भी बाजी लगा देते हैं। दोनों जहानहार जाते हैं इसका दीवाना होकर।"[79] शराब के जगह नींद की गोलियों को विकल्प के रूप में चुनना, स्मृत व्यक्ति के आर्थिक स्थिति का बोध कराता है। रवींद्र कालिया के दोस्तों के पास शराब के लिए पैसे नहीं होते थे, इस स्थिति में वे नींद की गोलियों से काम चलाते थे। नींद की गोलिया सस्ती थीं। इसके कम खर्च में शराब जितना नशा मिल जाता था। इन गोलियों का डोज धीरे-धीरे बढ़ता गया जिसने उनके कई दोस्तों को मौत के घाट उतार दिया। इस संदर्भ में वे लिखते हैं- "सन् साठ के आसपास हम लोगों को शराब का एक सस्ता और टिकाऊ विकल्प मिल गया-यानी नींद की गोलियां। इसके दो लाभ थे, एक तो यह नशा बहुत किफायती था। चवन्नी की गोली खाकर अच्छा-खासा नशा हो जाता था और दूसरे साँस में शराब की बदबू नहीं आती थी। आप सीना तानकर समाज का मुकाबला कर सकते थे।...जिन्दगी जब नाकाबिले बर्दाश्त लगती, वह चने की तरह दो एक गोलियां फांक लेता और देखते ही देखते शांत हो जाता। यह एक सस्ता नशा था, देखते-देखते तमाम कवि-कथाकार इसकी चपेट में आते चले गए"[80]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति की समस्याओं के माध्यम से उनके व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश की गई है। रवींद्र कालिया 'ग़ालिब छूटी शराब' में अपने और स्मृत व्यक्ति के जीवन की समस्याओं के माध्यम से व्यक्तित्व का मूल्याङ्कन करते हैं। उन समस्याओं के माध्यम से लेखक ने लड़ते-भिड़ते-डूबते-उतराते व्यक्ति की मनोदशा को पकड़ने की कोशिश की है। इस संस्मरण के माध्यम से लेखक इस बात का बोध कराता है कि जीवन एक संघर्ष है और उस संघर्ष से व्यक्ति अपना दामन बचाकर नहीं निकल सकता। व्यक्ति अपने कर्तव्यों से भाग नहीं सकता। उसको हर परिस्थिति में उसका सामना करना ही पड़ेगा। रवींद्र कालिया इस संस्मरण में विपरीत परिस्थिति से लड़ते हुए अपने और दोस्तों के व्यक्तित्व की सशक्तता का प्रमाण देते हैं। रवींद्र कालिया के दोस्त (जिनमें कपिल, धनराज, फ़ाकिर हैं) अपनी

परिस्थितियों से सामना न कर पाने के कारण, उससे बचने के लिए नींद की गोलियों का सहारा लेते हैं। इसका कारण हैं कि उनके एकाकीपन को भरने वाला कोई नहीं था। उनके जीवन में कोई ऐसा नहीं था जो उनके लड़खड़ाने पर संभालने का काम करे। वह मानसिक रूप से इतने मजबूत नहीं थे और न ही उनके पास कोई वजह थी जो जिसके कारण वे जीवन की समस्याओं का सामना कर सकें। लेकिन मोहन राकेश, रवीद्र कालिया आदि के जीवन में परिवार था। उनकी जिम्मेदारियाँ थीं। इनके पास जीने की वजह और उम्मीद थी, इसलिए यह दिनभर समस्याओं से मुठभेड़ करते थे। जब शाम तक इस मुठभेड़ से थक जाते थे, तब मदिरा को सहारा बनाते थे। अगली सुबह फिर यही प्रक्रिया शुरू हो जाती थी। ये नशा करते हैं लेकिन दिनभर की थकान को मिटाने के लिए, सुबह नई ताजगी से दिन की शुरुआत करने के लिए। वे जीवन की तमाम समस्याओं से हमेशा के लिए नहीं बल्कि कुछ देर के लिए मुक्त हो जाना चाहते थे। इन्हें पीने का सुख इसलिए मिलता था कि थोड़ी देर का सुरूर व्यक्ति को मानसिक शांति प्रदान करता है। वे नशा को सहारा बनाकर थोड़ी देर के लिए अपनी मानसिक परेशानियों को भूले रहते थे। उस नशे के साथ अपने अकेलेपन को भूले रहते थे, जीवन की उदासीनता से खुद को दूर रखते थे। उनके लिए नशे का सुरूर जीवन की संगीत से कम नहीं था। वह संगीत जो व्यक्ति को एक अलग दुनियाँ की सैर कराती है। उसके साहिर में वे अपने को सहज और तनावमुक्त पाते हैं। वे लिखते हैं- “पीने से तन्हाई दूर होती है, मनहूसियत से पिंड छूटता है, रगों में जैसे नया खून दौड़ने लगता है। शरीर की टूटन गायब हो जाती है और नस-नस में स्पूर्ति आ जाती है। एक लंबे अरसे से मैंने जिन्दगी का हर दिन शाम के इंतजार में गुजारा है, भोजन के इन्तजार में नहीं।”[81] रवीन्द्र कालिया के हर मर्ज की दवा शराब थी। लेखक अपने शरीर से जुड़ी हर समस्या का समाधान शराब से निकाल लेता था। इसका यहीं मतलब निकलता है कि शरीर के सभी कष्टों को नशें में झोककर मुक्त हुआ जा सकता है। वे अपने सन्दर्भ में लिखते हैं- “मेरे तमाम रोगों का निदान दारू थी, दवा नहीं।”[82]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक पक्ष ही संस्मरणकार के सामने उभरकर आता है। वह प्रत्येक व्यक्ति के सामने अलग-अलग होता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के कई पहलू होते हैं। जरूरी नहीं है कि संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के सारे पहलुओं से परिचित हो। पारिवारिक व्यक्ति के सामने स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का जो पहलू उभरता है वह दोस्तों के बीच भिन्न होता है। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का पहलू दोस्तों के सामने खुलता है, यह जरूरी नहीं कि वह पारिवारिक व्यक्ति के सामने भी उसी रूप में हो। इससे स्पष्ट है कि संस्मरणकार पारिवारिक व्यक्ति हो या मित्र, इनके संबंधों की घनिष्ठता के आधार पर स्मृत व्यक्ति का व्यक्तिपक्ष उभरकर आता है। संस्मरणकार का अपना अनुभव और नजरिया है, उसी के माध्यम से स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्धारित होता है। संस्मरणकार यह कोशिश करता है कि वह स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को पाठक के सामने ला सके। वह सम्बन्धों को आत्मीयता का आधार बनाकर स्मृत व्यक्ति के जीवन के अच्छे-बुरे पक्षों का निष्पक्ष मूल्यांकन करता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व के निष्पक्ष विवेचन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जो उसे उसके पारम्परिक संस्मरणों से अलग करता है। संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के “सम्बन्धों और

संपर्कों में घुली-मिली आत्मीयता के साथ-साथ व्यक्ति के स्याह-सफेद पक्षों को देखने की तटस्थ एवं विवेकमयी दृष्टि अर्थात् संबंधों के गुणा-भाग में जाना भी उतना ही जरूरी है। ऐसा संस्मरण की सेहत के लिए हितकर होता है।"[83] समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में इस बात की दरकार दिखाई देती है कि कोई भी व्यक्ति देव नहीं होता है। उसमें गुण-अवगुण दोनों होते हैं। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार इस बात को बहुत अच्छे से समझता है कि व्यक्ति के दोनों रूपों के साथ ही व्यक्ति चित्र सही मायने में उभरता है। उस व्यक्ति और विधा के साथ न्याय कर सकेंगें। क्योंकि "कोई भी व्यक्ति सर्वगुण सम्पन्न नहीं होता है यानी देवता न ही इस साहित्यिक व्यक्ति का सृजित एकदम निर्दोष यानी सौ टंच वाला खरा। व्यक्ति के आचरण व व्यवहार में कुछ न कुछ खटकने या किरकिराहट देनेवाला अवश्य रहता है"[84] वर्तमान हिंदी संस्मरण में संस्मरणकार व्यक्ति की खूबी भी देखता है, खामी भी। उसके सफेद पक्ष को देखता है और स्याह पक्ष को भी। इस तरह के तमाम प्रयोग संस्मरण को पारम्परिक संस्मरणों से अलग करता है, साथ ही साथ व्यक्ति चित्र के मूल्यांकन को अलग ढंग से देखने की दृष्टि प्रदान करता है।

संदर्भ सूची:-

1. संपा-माधव हाड़ा, कथेतर, पृष्ठ 42।
2. वही, पृष्ठ 43।
3. वही, पृष्ठ 41।
4. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 28।
5. वही, पृष्ठ 104।
6. औरों के बहाने, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 151।
7. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 94।
8. औरों के बहाने, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 146।
9. आछे दिन पाछे गए, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 15।
10. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 105।
11. वही, पृष्ठ 80।
12. औरों के बहाने, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 72।
13. वही, पृष्ठ 73।
14. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 121।
15. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 84।
16. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 140।
17. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 43।
18. वही, पृष्ठ 10।
19. वही, पृष्ठ 44।
20. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 37।
21. वही, पृष्ठ 37।
22. राजेन्द्र यादव, औरों के बहाने, पृष्ठ 151।
23. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 31।
24. वही, भूमिका।
25. वही, पृष्ठ 21।
26. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 19।
27. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 81।
28. वही, पृष्ठ 46।
29. वही, पृष्ठ 94।
30. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 14।
31. वही, पृष्ठ 16।
32. गालिब छूटी शराब, रवींद्र कालिया, पृष्ठ 11।
33. आछे दिन पाछे गए, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 17।
34. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 31।
35. वही, पृष्ठ 38।
36. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 17।
37. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 70।
38. रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 107।
39. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 17।

40. वही, पृष्ठ 56।
41. रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 62।
42. वही, पृष्ठ 60।
43. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 71।
44. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 25।
45. वही, पृष्ठ 26।
46. रघुवीर सहाय :रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 17।
47. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 34।
48. वही, पृष्ठ 33।
49. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 93।
50. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 11।
51. वही, पृष्ठ 19।
52. वही, पृष्ठ 21।
53. वही, पृष्ठ 21।
54. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 26।
55. वही, पृष्ठ 20।
56. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 71।
57. वही, पृष्ठ 29।
58. वही, पृष्ठ 29।
59. वही, पृष्ठ 115।
60. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 32।
61. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 9-10।
62. रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 107।
63. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 43।
64. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 172।
65. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 26।
66. स्मृतियों के साक्ष्य, हृदयेश, पृष्ठ vii।
67. गालिब छूटी शराब, रवींद्र कालिया, पृष्ठ 128।
68. वही, पृष्ठ 208।
69. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 140।
70. गालिब छूटी शराब, रवींद्र कालिया, पृष्ठ 19।
71. वही, पृष्ठ 94।
72. वही, पृष्ट 204।
73. वही, पृष्ठ 207।
74. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 97।
75. वही, पृष्ठ 140।
76. गालिब छूटी शराब, रवींद्र कालिया, पृष्ठ 21।
77. वही, पृष्ठ 17।
78. वही, पृष्ठ 8।
79. वही, पृष्ठ 21।
80. वही, पृष्ठ 35।

81. वही, पृष्ठ 7 ।
82. वही, पृष्ठ 8 ।
83. स्मृतियों के साक्ष्य, हृदयेश, पृष्ठ viii ।
84. वही ।

चौथा अध्याय

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन : सामाजिक परिप्रेक्ष्य

(i) व्यक्ति और समाज

(ii) परिस्थितियाँ और प्रश्न

(iii) स्त्री-पुरुष संबंध

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन: सामाजिक परिप्रेक्ष्य

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में उभरते सामाजिक परिप्रेक्ष्य की बात करें तो संस्मरण साहित्य व्यक्ति केंद्रित होते हुए भी समाज को अपने में समेटे हुए है। संस्मरण साहित्य के लिए यह कहना गलत न होगा कि व्यक्ति में समाज और समाज में व्यक्ति निहित है। इसमें व्यष्टि-समष्टि का समायोजित रूप देखने को मिलता है। संस्मरणकार व्यक्ति चित्र उभारते हुए सिर्फ स्मृत व्यक्ति की बात नहीं करता है बल्कि उसके परिप्रेक्ष्य में समाज को रेखांकित करता है। व्यक्ति जीवन की समस्याएं समाज से विलग नहीं हैं। इस व्यक्तिरूप में संस्मरणकार, स्मृत व्यक्ति, इनसे जुड़े अन्य व्यक्तियों की व्यक्तिगत समस्याओं में समाज का रूप परिलक्षित होता है।

प्रारम्भिक हिंदी संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के स्वभाव या चरित्र और वैचारिकी को ही उसके व्यक्तित्व का हिस्सा माना जाता था। उसके जीवन के अन्य पक्षों को अनदेखा कर दिया जाता था। इसके साथ उस दौर के संस्मरण साहित्य में समय-समाज के तात्कालिक परिस्थिति की झलक थोड़ी-बहुत मिल ही जाती थी। स्मृत व्यक्ति के साथ बिताये पलों को संस्मरणकार याद कर लेता था लेकिन उसके जीवन की समस्याओं के बहुत थोड़े हिस्से को रेखांकित करता था। आपसी संबंधों को ध्यान में रखते हुए उसके जीवन के अन्य पक्षों को व्यक्तिगत मामला समझकर अनदेखा कर देता था। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इस परिपाटी से खुद को बाहर निकालता है। आज संस्मरण ने स्वयं को विधा के रूप में स्थापित ही नहीं किया है बल्कि साहित्य के उन मानकों को भी पूरा किया है, जिसमें व्यक्ति का ही नहीं, बल्कि उसके माध्यम से समाज का भी यथार्थ बखूबी दिखाई देता है। साहित्य कभी भी व्यक्ति और समाज को एक-दूसरे से अलग करके मूल्यांकन नहीं करता है। उसके लिए दोनों एक-ही सिक्के के दो पहलू हैं। व्यक्ति की सत्ता में समाज की सत्ता निहित है और समाज की सत्ता में व्यक्ति की सत्ता। समाज तो व्यक्ति वैविध्य की सामूहिकता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इन दोनों को अपने में समेटे हुए है। संस्मरणकार व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं को समाज से जोड़कर देखने की कोशिश करता है। इन संस्मरणों में सामाजिक समस्याएं कभी व्यक्ति के माध्यम से, कभी स्मृत व्यक्ति के साहित्य के माध्यम से, तो कभी-कभी समाज से सीधे उठाकर संस्मरण में अभिव्यक्त की जाती हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में सामाजिक परिप्रेक्ष्य के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। सामाजिक समस्याएं व्यक्ति केन्द्रित हो या समाज केन्द्रित, दोनों के रूप संस्मरण में दिखाई देते हैं। इस दौर के संस्मरण साहित्य में सामाजिक समस्याओं के विभिन्न माध्यमों को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया है। पहले रूप में देखा जाय तो लेखक व्यक्ति की वैयक्तिक समस्याओं के माध्यम से समाज के विविध रूप का रेखांकन करता है। वहीं दूसरा माध्यम

स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त समाज को आधार बनाकर सामाजिक समस्याओं को उभारा जाता है। इसके अलावा संस्मरणकार समाज के प्रति उसके नजरिए को उद्धृत करता है। तीसरे माध्यम की बात करें तो संस्मरणकार तात्कालीन परिस्थितियों को ज्यों का त्यों रेखांकित करने की कोशिश करता है। वह अपने आसपास की तात्कालिक घटनाओं को नजर अंदाज नहीं कर पाता है, जिसे वह अपने संस्मरण में सीधे-सीधे दर्ज करता हुआ दिखाई देता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार स्त्री-पुरुष संबंधों का रेखांकन बड़ी बारीकी से करता है। वह इस संबंध के माध्यम से समाज में विद्यमान प्रेम, विवाह, पितृसत्ता के रूप, स्त्री जीवन की तमाम समस्याओं आदि पर हमारा ध्यान केंद्रित करता है। इसमें व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन को आधार बनाकर अथवा उसकी रचनाओं में अभिव्यक्त व्यक्ति और समाज को केंद्र में रखकर या सामाजिक सरोकारों को सीधे संस्मरणों में चित्रित किया जाता है।

उपर्युक्त तमाम प्रसंगों को ध्यान में रखते हुए, इस अध्याय में बात की जाएगी। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन से जुड़े उन संस्मरणों को उद्धृत किया जाएगा जो उपर्युक्त प्रसंगों के मानकों को पूरा करते हैं। इन संस्मरणों में काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' और 'आछे दिन पाछे गए', कान्तिकुमार जैन कृत 'बैकुंठपुर में बचपन' और 'तुम्हारा परसाई', कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत-3', राजेन्द्र यादव कृत 'वे देवता नहीं हैं', रवींद्र कालिया कृत 'गालिब छूटी शराब', ममता कालिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार', मनोहर श्याम जोशी कृत 'रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण', विश्वनाथ त्रिपाठी कृत 'गुरुजी की खेती-बारी', देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'यादों के काफिले' आदि हैं, इसमें व्यक्ति के जीवन के माध्यम से सामाजिक मूल्यों या उसके सामाजिक सरोकारों की पड़ताल गई है। इसमें स्मृत व्यक्ति का जीवन ही केंद्र में नहीं है, बल्कि जो स्मृत व्यक्ति रचनाकार है उसकी रचनाओं में अभिव्यक्त व्यक्ति-समाज के दुख-दर्द को भी संस्मरण में चित्रित किया गया है।

व्यक्ति और समाज

'साहित्य समाज का दर्पण है', यह 'समाज' तमाम व्यक्तियों का समायोजित रूप है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन व्यष्टि और समष्टि के निहितार्थ को अपने में समेटे हुए है। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व में सामाजिक जीवन और सामाजिक जीवन में व्यक्ति के जीवन का भान होता हैं। व्यक्ति-समाज के विभिन्न रूपों को कुछ संस्मरणों के माध्यम से उद्धृत किया जाएगा जिसमें काशीनाथ सिंह कृत 'घर का जोगी जोगड़ा' और 'आछे दिन पाछे गए', कान्तिकुमार जैन कृत 'बैकुंठपुर में बचपन' और 'तुम्हारा परसाई', कृष्णा सोबती कृत 'हम हशमत-3', राजेन्द्र यादव कृत 'वे देवता नहीं हैं', रवींद्र कालिया कृत 'गालिब छूटी शराब', ममता कालिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार', मनोहर श्याम जोशी कृत 'रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण', विश्वनाथ त्रिपाठी कृत 'गुरुजी की खेती-बारी', देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'यादों के काफिले' आदि के संस्मरणों को शामिल किया गया है। ये संस्मरण जहाँ एक तरफ नामवर सिंह, रवींद्र कालिया, ममता कालिया, रघुवीर सहाय के व्यैक्तिक पक्ष को उभारते हैं, वहीँ दूसरी तरफ समाज में व्याप्त सामाजिक मूल्यों की पड़ताल करते हैं। ये संस्मरण व्यक्ति-समाज के यथार्थ को अंकित करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते हैं। इन संस्मरणों में स्मृत व्यक्तियों, संस्मरणकारों के जीवन की समस्याएं सिर्फ उनके जीवन का चित्र प्रस्तुत नहीं करती बल्कि भारत के तमाम परिवारों की सामाजिक संरचना को रेखांकित करती है। ये संस्मरण व्यक्ति के जीवन को सामाजिक धरातल पर लाकर खड़ा कर देते हैं। इन संस्मरणों में सामाजिक परिदृश्य के तीन रूप दिखाई देते हैं। पहला- व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से समाज। दूसरा- स्मृत व्यक्ति के रचनाओं में अभिव्यक्त समाज और तीसरा- सामाजिक सरोकारों का सीधा-सीधा चित्रण दिखाई देता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन के माध्यम से सामाजिक समस्याओं को रेखांकित किया गया है। इसमें पारिवारिक विघटन, बुजुर्गों की स्थिति, व्यक्तिगत संबंधों में अराजकता, पारिवारिक कलह, संयुक्त परिवार में बिखराव, सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव, आर्थिक समस्या आदि को देखा जा सकता है। 'घर का जोगी जोगड़ा', 'कितने शहरों में कितनी बार', 'वे देवता नहीं हैं', 'गालिब छूटी शराब' जैसे संस्मरणों को केंद्र में रखकर देखें तो कहीं टूटते-बिखरते पारिवारिक संबंध कराह रहे हैं, तो कहीं संयुक्त परिवार के बिलगाव में बेचैनी दिखाई दे रही है। एक तरफ नयी पीढ़ियाँ अपने अकेलेपन के त्रास को झेल रही हैं, तो दूसरी तरफ बुजुर्गों की असहाय आँखों में निरीहता दिखाई दे रही है। समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, व्यक्ति के मनोबल को तोड़ रहा है। संस्मरण साहित्य में इसी तरह के अनेक प्रसंग व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक परिदृश्य को समेटे हुए हैं। मनोहर श्याम जोशी कृत 'रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने कुछ स्मरण' में रघुवीर सहाय की पारिवारिक परिस्थितियाँ और संघर्ष, हमारे समाज के अनेकों

परिवारों का उदाहरण पेश करती हैं। ममता कालिया 'कितने शहरों में कितनी बार' में अपने दादी-दादा-बुआ के साथ अपने पिता और चाचा के संबंधों को उभारते हुए पारिवारिक बिखराव, संबंधों की उदासीनता, संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार के संघर्ष आदि का जिक्र करते हुए अपने पारिवारिक समस्याओं के माध्यम से सामाजिक समस्याओं का बोध कराती हैं। उनके दादा-दादी जिस तरह अपने बच्चों के पढ़ाई की जिम्मेदारी से भागे, आज वही बच्चे अपने संघर्षों से सफलता की मुकाम पर पहुँचने के बाद, उनके प्रति अपनी जिम्मेदारी से मुकर जाते हैं। इनके परिवार में संयुक्त परिवार बनाम एकल परिवार का संघर्ष दिखती हैं। उनकी पारिवारिक स्थिति ऐसी थी कि बाहर से सब एक दूसरे के साथ दिखाई देते थे लेकिन आंतरिक मन से कोई किसी के साथ नहीं था। अपने पारिवारिक रिश्तों में बिखराव और संबंधों के प्रति उदासीनता को लेकर लेखिका कहती हैं- "दोनों कामयाब भाई परिवार की अपेक्षाओं का आकलन नहीं कर पाए परिवार ने पढ़ाई का खर्च देना बंद कर रखा था, अपना कब्जा कहाँ छोड़ा था। वस्तुत: यह संयुक्त परिवार का एकल परिवार की इकाई के विरुद्ध संघर्ष था"[1] 'घर का जोगी जोगड़ा' में काशीनाथ सिंह अपने पिता और चाचा के माध्यम से पारिवारिक विघटन, संयुक्त परिवार में बिखराव, पारिवारिक कलह, घर की स्त्रियों का आपसी लड़ाई-झगड़ा आदि का चित्र खींचते हैं। काशीनाथ सिंह के पिता का नौकरी करना और अपने बच्चों का पढ़ाना तथा चाचा और उनके बच्चों का खेती करना, यह असमानता की भागीदारी, घर में कलह का कारण बनती है। इसके साथ ही नामवर सिंह की पारिवारिक उदासीनता, उनके संबंधों को तो प्रभावित करती ही है तथा आने वाली पीढ़ी पर भी कहीं न कहीं अपनी छाप छोड़ती है। नामवर सिंह की पत्नी को जो महत्त्व या सुख, नामवर सिंह से नहीं मिला, वे उस सुख की उम्मीद अपने पुत्र और बहू से लगाए बैठी थीं। जिस पुत्र से वे उम्मीद लगाए बैठी थीं, वहीं पुत्र उन्हें सिर्फ अपनी जरूरतों पर याद करता है। पति और बाद में पुत्र की उदासीनता, उन्हें अंदर तक प्रभावित करती है। पुत्र विजय शादी के बाद उन्हें उस समय अपने पास बुलाया, जब वह पिता बनने वाला था। नामवर सिंह एक संवाद में काशीनाथ सिंह से कहते हैं- "उन्हें अपने बेटे के लिए दादी की नहीं, आया की ज़रूरत थी।"[2] इस कथन के माध्यम से संबंधों के प्रति बढ़ती उदासीनता और उपेक्षा ही नहीं, बल्कि बुजुर्गों की स्थिति का भी अंदाजा लगाया जा सकता है। काशीनाथ सिंह ने समाज में बदलते संबंधों और आने वाली पीढ़ियों में बुजुर्गों की स्थिति की तरफ लक्ष्य करते हुए, इस प्रसंग को उद्धृत किया है। इसमें व्यक्ति के माध्यम से समाज के उस सच को लेखक सामने लाता है जिसपर कथा साहित्य में बहुत पहले लिखा जा रहा था, उसी को संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के यथार्थ जीवन से उठाकर ज्यों का त्यों रखा देता हैं। काशीनाथ सिंह तीन पीढ़ियों के माध्यम से बदलते संबंधों को चित्रित करते हैं। इसमें नामवर सिंह, उनके पिता और पुत्र विजय हैं। नामवर सिंह का संबंध उनके पिता के साथ जिस नैतिकता में

बंधा था, वही पुत्र विजय के साथ उदासीन पाया जाता है। नामवर सिंह के समय में पिता-पुत्र का संबंध बाह्य रूप से औपचारिक दिखाई देता था, लेकिन होता नहीं था। पिता-पुत्र एक दूसरे से न के बराबर संवाद करते थे। यहाँ पिता और पुत्र के संबंधों में समाज द्वारा थोपी हुई, आदर्श-नैतिकता काम करती थी। उस नैतिकता का निर्वाह उस दौर की हर पीढ़ी और हर व्यक्ति करते हुई नज़र आता था। नामवर सिंह के समय तक, पिता पुत्र की जिम्मेदारी उस स्थिति में लेता था जब उसका कोई अन्य भाई न हो। भाई के होने पर पिता अपने पुत्र के हर दायित्वों से मुक्त रहता था। यह परम्परा नामवर सिंह तक दिखाई देती है लेकिन उनके पुत्र की पीढ़ी में नहीं। इसके पीछे कई कारण थे, जिसमें सबसे अहम् कारण यह था कि संयुक्त परिवार के ढांचे को बनाये रखना। नामवर सिंह तक आते-आते यह ढांचा टूटता हुआ नजर आता है। संबंधों का स्वरूप बदल गया था। इसके बाद भी नामवर सिंह अपने पुत्र (विजय) के दायित्व से मुक्त रहें। उनके पुत्र की सारी जिम्मेदारी दादा-दादी और भाईयों पर थी। इसका कारण संयुक्त परिवार को बनाए रखना नहीं, बल्कि उनकी अध्ययनशीलता थी। इस दूरी का असर ऐसा हुआ कि पिता-पुत्र का सम्बन्ध कभी सहज नहीं हुआ। नामवर सिंह के कथन को उद्धृत करते हुए काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "सहते ही बने, कहते न बने, मन ही मन पीर पिरैबो करे। उधर तो महीने में कम से कम एक बार तो चले ही आते थे सपत्नीक। शाम को दुलारे से खबर मिलती थी कि सुबह से ही आये हुए हैं ससुराल में। रात को यहाँ सोने आएंगे लोग। कभी-कभी सुबह आए, सामान फेका और निकल गए नहा-धोकर ससुराल। यह घर नहीं, 'रेस्ट हॉउस' है उन लोगों का। सुबह मेरा नाश्ता हो जाता है तब वे सोकर उठते हैं। मैं उन लोगों को घर में रहते हुए नहीं, आते-जाते ही देखता हूँ..."[3] इस प्रसंग के माध्यम से एकल परिवार की प्रासंगिकता, संबंधों की महत्त्वहीनता और बुजुर्गों के प्रति उपेक्षा भाव दिखाई देता है।

इस दौर के संस्मरणों में व्यक्ति परिस्थिति के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों का बोध होता है। 'गालिब छूटी शराब' में रवींद्र कालिया और उनके दोस्तों के जीवन संघर्ष वही है जो समाज में देखा जा सकता है। ये अपने जीवन की परिस्थितियों से निकलना चाहते हैं लेकिन निकल नहीं पाते हैं। वे अपनी समस्याओं को कुछ समय के लिए भूलना चाहते हैं जिसके विकल्प के रूप में शराब को चुनते हैं। इसकी जद में रवींद्र कालिया, फ़ाकिर, हमदम, कपिल, धनराज जैसे नौजवान शामिल थे।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में व्यक्ति के माध्यम से समाज में व्याप्त जातिगत समस्याओं का रेखांकन देखने को मिलता है। भारत में जाति की समस्या, मनुष्य के विकास और उसकी संस्कृति से जुड़ी हुई हैं। सभ्यता और संस्कृति का विकास ज्यों-ज्यों विस्तृत होता गया, मनुष्य को जातीयता का बोध उसे उतना ही संकुचित करता गया। यह जातीय बोध धीरे-धीरे पूरे समाज को इस तरह जकड़ता गया कि आज हर व्यक्ति कहीं न कहीं इसका

शिकार दिखाई दे रहा है। भारत में इसके कई स्तर हैं। इसे लिंग, वर्ण, धर्म, भाषा आदि रूपों में देखा जा सकता है। यह छोटे स्तर से लेकर बड़े स्तर तक दिखाई देता है। एक जाति के लोग दूसरे जाति के लोगों प्रति तभी तक समान हैं जब तब उनके व्यक्तिगत स्वार्थ और जाति से दिक्कत या खतरा न हो। लेकिन हमेशा से एक जाति दूसरी जाति को दबाकर अपनी सत्ता बनाये रखना चाहती है। कान्तिकुमार जैन अपने शिष्य अहिरवार की पीएचडी मौखिकी के प्रसंग के माध्यम से हमारा ध्यान इसी जातिगत व्यवस्था की तरफ ले जाते हैं। इस मौखिकी की समिति में विभागाध्यक्ष विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को बैठना था। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र मौखिकी के दौरान शोधार्थी का सरनेम पूछते हैं तो वह अपने शोध निर्देशक के निर्देशानुसार साष्टांग उनके चरणों को पकड़ लेता है। कान्तिकुमार जैन उस परिस्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं- “दायें बायें कहीं सुविधा नहीं थी सो सीधे मेज के नीचे से सिर घुसेड़कर अर्ध साष्टांग मुद्रा में उसने विश्वनाथ जी के चरण पकड़ लिए। कसकर। मैं पंडित जी के कानों में फुसफुसाया-पंडित जी, यह अहिरवार है- शिवनारायणी संप्रदाय का-रैदासानुयायी। लगा पंडित जी के कानों में बिच्छू घुस गये हों, वे चिहुँक कर एक झटके से उठ खड़े हुए, अपनी कुर्सी उन्होंने दो कदम पीछे ढकेली और बोले-राम-राम, तूने यह क्या किया? मेरा आज का स्नान व्यर्थ हो गया। राम-राम!”[4] इसी प्रकार ‘घर का जोगी जोगड़ा’ में काशीनाथ सिंह अपने गाँव जीयनपुर पर बात करते हुए वहाँ की सामाजिक विषमता और जातिगत भेदभाव का जिक्र करते हैं। जीयनपुर के दक्षिण में बसे चमटोल के माध्यम से भारत में व्याप्त जाति व्यवस्था को उकेरा गया है। इस चमटोल को कहीं-कहीं चमार टोला भी कहा जाता है। भारत में चमटोल गाँव के दक्षिण में होता है। इसे दक्षिण में बसाये जाने के पीछे यह कारण होता था कि निम्न जाति के लोगों की बस्तियां गन्दी, बदबूदार होती हैं। हवा पूर्व, पश्चिम, उत्तर की ओर से चलती है दक्षिण से नहीं। उनके बस्तियों की गंदगी, हवा के रुख से उच्च जाति के लोगों की तरफ न आये, इसी कारण उनकी बस्तियां दक्षिण की ओर बसायी जाती थीं। लेखक इस चमटोल के माध्यम से भारतीय समाज में विद्यमान जाति व्यवस्था को रेखांकित करता है। लेखक के यहाँ यह चमटोल सिर्फ उनके क्षेत्र से जुड़ा हुआ नहीं है या उस क्षेत्र विशेष की समस्या नहीं है बल्कि देश के लगभग सभी गांवों के दक्षिण में चमटोल का बसाया जाना, यहाँ की जातीय व्यवस्था को प्रमाणित करता है। लेखक अपने संस्मरण में चमटोल को लेकर अलग-अलग गढ़ीं गई किवदन्तियां को लेकर लिखता है- “हमारे हाईस्कूल की छमाही परीक्षा में ‘सामान्य ज्ञान’ के प्रश्न पत्र में एक सवाल पूछा गया था-‘चमटोल गाँव के दक्खिन ही क्यों होती है?’ हम उत्तर नहीं दे सके थे लेकिन सच्चाई थी। उस पूरे इलाके में हर गाँव के दक्खिन चमटोल। मास्टर ने बताया था कि चमारों की बस्तियां गन्दी, बदबूदार और

रोगाणुओं से भरी होती हैं। हवाएं प्रायः पूरब, पश्चिम और उत्तर से ही चलती हैं, दक्खिन से नहीं। इसलिए रोग व्याधि से गाँव की मुक्ति चमटोल के दक्खिन बसने में ही है ! देवी-देवताओं का वास भी उस दिशा में नहीं होता!"[5] कृष्णा सोबती 'हम हशमत-3' में जाति विसंगति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। आज भले ही लोकतंत्र के नाम पर बड़ी-बड़ी बातें हों लेकिन जाति व्यवस्था की जमीनी हकीकत कुछ और ही है। कृष्णा सोबती लिखती हैं- "आज का भारतीय समाज अपने भाव-विस्तार में लोकतन्त्र के नाम पर जातीय संकीर्णता और उससे जुड़े नकारात्मक दबावों से आक्रांत है। ऐसे में अशोक की रचनात्मक सेहत, हमारी साँझी परम्परा से उभरे साहित्यिक और सांस्कृतिक संतुलन उनकी कविता को एक बड़ी भाषा का मुखड़ा प्रदान करते हैं।"[6] कृष्णा सोबती मानवीय संबंधों की अंतरंगता पर जोर देती हैं जिसे वह ऊँच-नीच के विभाजन से अलग करती हैं। वे भारत जैसे लोकतान्त्रिक देश में बराबरी की पक्षधरता पर जोर देती हैं। इस संदर्भ में वे लिखती हैं- "रूढ़िगत मानसिकता से उबरकर हम मानवीय सम्बन्धों की अंतरंगता को परिवर्तन की चौखट से क्यों न देखे। इंसानी नस्ल की घटित होनेवाली उर्जा को, साहित्य के सर्जनात्मक पक्ष को भी दो भागों में, दो फाँकों में क्यों बाँटें। अगर बांटें भी तो एक को 'हाई कास्ट' और दूसरे को 'लोअर कास्ट' डिस्कोर्स में क्यों विभाजित किया जाए? मानवीय लोकतान्त्रिक मूल्यों की भाषिक संरचना और अभिव्यक्ति के लिए जरूरी है कि कथ्य और शिल्प, सेक्स और यौनिकता के परम्परागत सामजिक, संस्कारी और नैतिकता के पैमाने बदलें। विविध कार्यक्षेत्रों, धंधों और अनुशासनों में बराबरी और यकसांपन लागू हो।"[7] कृष्णा सोबती सामजिक रूढ़ियों का विरोध करती हैं जो बेहतर समाज के लिए रूकावट बना हुआ है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में ग्रामीण जीवन की समस्याओं का चित्रण दिखाई देता है। भारत की आज़ादी के बाद जितना तेजी से शहरों का विकास हुआ उसकी तुलना में गाँव आज भी बहुत पीछे है। शहर भिन्न-भिन्न औद्योगिक संसाधनों से लैश हो रहा था, तो गाँव अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए जद्दोजहद कर रहा है। नामवर सिंह एक ऐसे गाँव से थे, जहाँ सुविधाए तो बहुत दूर की चीज है, मूल भूत आवश्यकता की पूर्ति भी करना मुश्किल था। जीयनपुर भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा हुआ था। उस गाँव की भौगोलिक स्थिति को बताते हुए काशीनाथ सिंह कहते हैं- "इस गाँव के पास-पड़ोस के धोबी जानते थे जिन्हें रेह की जरूरत पड़ती थी कपड़े धोने के लिए ! गिद्ध भी जानते थे जिनके बैठने के लिए एक ही कतार में दस-पंद्रह ताड़ के पेड़ थे। दैव भी जानता था। लेकिन जाने क्या था कि जब आस-पास के सारे गाँव पानी में डूबकर 'त्राहि-त्राहि' कर रहे होते थे, यह गाँव प्यासा का प्यासा रह जाता था।"[8] लेखक जिस रूप में गाँव का चित्र खींचता है, उससे गाँव की एक छवि तो उभरती है, इसके साथ ही गाँव की समस्या भी झांक रही होती है। यह उनके बचपन का जीयनपुर है, जो बहुत बाद में विकास की राह पर चला।

आज भी जीयनपुर जैसे तमाम गाँव है जो विकास की राह पर बहुत बाद में चलना शुरू किए। जहाँ आज भी लोग सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक रूप से पिछड़े हैं। वे पानी, बिजली, स्कूल, अस्पताल जैसी तमाम मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित हैं। उनकी जीविका का सहारा गाँव की बहुत सीमित वस्तुएं हैं, जिसके लिए वे अपने में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। उनके पास न तो इतने संसाधन या व्यवस्था है, न शहर की सुविधाओं का लाभ उठा सकने की आर्थिक स्थिति। वे आज भी अपनी पेट की भूख के लिए, पूरा दिन आम के पेड़ के नीचे बिता देते हैं, कभी रात ताड़ों के फल के लिए। गाँव की छवि को प्रस्तुत करते हुए लेखक कहता है- "गाँव के पूरब भीटा था-उत्तर दक्खिन तक फैला हुआ जिस पर एक कतार में ताड़ के पेड़ थे-इसीलिए उसे कुछ लोग ताडगांव भी बोलते थे। ताड़ों पर गिद्धों और चीलों का बसेरा था! उसी पर बैठकर वे सिवान में फेंके हुए या मरे हुए डांगरों का जायजा लेते थे। रातों में अक्सर, उनके उड़ने और पत्तों के खड़खड़ाने की आवाज़े आती थीं। और जाड़ों में भोर के समय ताड़ों के बड़े-बड़े पके फल भद्-भद् गिरते तो हम उठकर नींद में दौड़ते और उठा लाते। उनके लिए लूट मची रहती थी।"[9]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में आदिवासी समाज का चित्रण देखने को मिलता है। उनके श्रम के सौन्दर्य और आत्मनिर्भरता को लेकर कान्तिकुमार जैन 'बैकुंठपुर में बचपन' में लिखते हैं- "जो श्रम से पलायन करेगा, भिक्षा वही मांगेगा न, भिक्षा की संस्कृति श्रम से पलायन की संस्कृति है, वह परजीवी संस्कृति है, प्रकृति पर अविश्वास करने की संस्कृति है। आदिवासी न परजीवी होता है न प्रकृति अविश्वासी। भिक्षा वृत्ति वहीं पनपती है, जहां असमानता हो, विषमता हो, जहां संग्रह की मनोवृत्ति हो। मैं तुम्हें दे रहा हूं, क्योंकि मैं संपन्न हूं, मैं तुम्हें दे रहा हूं, क्योंकि तुम विपन्न हो। शायद आदिवासी समाज स्वाभिमानी समाज है, वह भिक्षा याचना को अपने स्वाभिमान का अपमान मानता है"[10]

रघुवीर सहाय पर संस्मरण लिखते हुए मनोहर श्याम जोशी हिंदी पत्रकारिता में हिंदी की स्थिति को रेखांकित करते हैं। (सरकारी अमलों का भ्रष्टाचार) उन्होंने साहित्य के साथ-साथ पत्रकारिता में नौकरी करते समय, उनके और पत्रकारिता के दौर में आये उतार-चढ़ाव को ईमानदारी से विश्लेषित किया है। रघुवीर सहाय रेडियों लेखन और पत्रकारिता में काम करने के दौरान आकाशवाणी के हिंदी समाचार विभाग के उपसंपादक नियुक्त हुए। उन्होंने वहां हिंदी समाचार विभाग की दुर्दशा, हिंदी पत्रकारिता के प्रति गैर हिंदी पत्रकारों का नजरिया तथा हिंदी पत्रकारिता के उत्थान के नाम पर हिंदी कर्मचारियों के रवैयों को नजदीक से देखा है। हिंदी भाषा के उत्थान के लिए जिन कर्मचारियों की नियुक्ति की गयी थी उनका हिंदी भाषा के प्रति उदासीन भाव, रघुवीर सहाय को दु:खी करता है। रघुवीर सहाय पर लिखी गई इस पुस्तक में हिंदी के आकाओं का हिंदी के प्रति नजरिया और अपने समकक्षों के प्रति द्वेष की भावना का चित्रण बहुत ही स्पष्टता से देखा जा सकता है। मनोहर श्याम

जोशी लिखते हैं- “उसी जमाने में शिवरामन नामक अमेरिका में पढ़े और सुदूर पूर्व में काम कर चुके एक वरिष्ठ पत्रकार को सरकार ने आकाशवाणी के समाचार विभाग का उद्धार करने बुला लिया। शिवरामन साहब की अमेरिकी बेतकल्लुफी सभी लोगों को आश्चर्यजनक तो लगी मगर रघुवीर को अपमानजनक।...हिंदी पर चुटकियाँ लेते और हिंदी वालों पर फब्तियां कसते थे। रघुवीर को छोड़ बाकी कोई उन्हें जवाब देने की हिम्मत नहीं करता था। फिर एक दिन अंग्रेजी से अनुवाद करने के बजाय सीधे हिंदी में ही बुलेटिन तैयार करने के विषय में मंत्रालय के नुमाइन्दे की मौजूदगी में हुई बैठक में शिवरामन ने चुटकी ली कि अगर हिंदी में कोई व्यक्ति बगैर अनुवाद किये समाचार बुलेटिन तैयार करने की क्षमता रखता होता तो क्या वह दिनकर जी की तरह अब तक राज्यसभा में न रखा दिया गया होता। इस पर रघुवीर ने उनसे इतना झगड़ा किया कि उसके बाद बस त्यागपत्र ही दिया जा सकता था।”[11] इसी प्रकार कान्तिकुमार जैन कृत ‘जो कहूँगा सच कहूँगा’ और काशीनाथ सिंह कृत ‘घर का जोगी जोगड़ा’ में क्रमश: कान्तिकुमार जैन और नामवर सिंह के नौकरी का संघर्ष व्यक्तिगत हो सकता है लेकिन उस संघर्ष में उभर रहे शैक्षणिक संस्थाओं के चरित्र को नकारा नहीं जा सकता। नन्ददुलारे वाजपेयी को याद करते हुए कान्तिकुमार जैन ने उच्च शिक्षण संस्थाओं के दाव-पेंच को जिस तरह उभारा है वह आज भी देखा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ, उनकी समस्याओं को भी रेखांकित करता है। उनके व्यक्तिगत जीवन की समस्याएं समाज से अलग नहीं है। इन संस्मरणों के माध्यम से व्यक्ति जीवन की समस्याओं को उठाया गया है वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में देखने को मिलती है। इस दौर के संस्मरणों में ग्रामीण जीवन की विसंगतियों का जो रूप दिखाई देता है वह रूप भारत के विभिन्न गांवों का रूप प्रस्तुत करता है। इन संस्मरणों में आर्थिक समस्याएं भी हैं तो जातिगत विसंगतियाँ भी। जीवन का सुकून भी है तो पाने की जद्दोजहद भी। प्यार भी है तो लड़ाई भी। इसके जीवन-जगत के विविध रंग दिखाई देते हैं।

परिस्थियाँ और प्रश्न

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में ऐसे संस्मरणों की संख्या पर्याप्त है जिसमें संस्मरणकार समय-समाज की तात्कालिक परिस्थितियों को चित्रित करता है। समय-समाज का परिवेश और परिस्थितियाँ, व्यक्ति को बहुत गहरे से प्रभावित करती है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में सामाजिक परिवेश और वातावरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का जो स्वरूप बनता है उसका समाज से बहुत जुड़ाव होता है। इसलिए देखा जाय तो किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में उसके समय-समाज का अक्स दिखाई देता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में तत्कालीन परिस्थितियों का रेखांकन देखने को मिलता है। वे तत्कालीन परिस्थितियाँ व्यक्ति और समाज को कितना और किस स्तर पर जाकर प्रभावित करती हैं, संस्मरणकार उसका बारीकी से चित्रण करता है। कृष्णा सोबती 'हम हशमत भाग-तीन' में भारत-पाक विभाजन का जिक्र करती हैं। यह विभाजन दो भौगोलिक क्षेत्रों का विभाजन नहीं, बल्कि दो-दिलों का विभाजन था। दो रिश्तों का विभाजन था। दो परिवारों का विभाजन था। यह भौगोलिक बंटवारा तो लोगों को दिखाई देता है लेकिन जो दिल में टूट और बँट रहा था, उस अदृश्य बँटवारे का कोई रूप नहीं था, लेकिन यही वास्तविक था जिसे परिलक्षित करना आसान न था। कृष्णा सोबती की लेखकीय संवेदनशीलता देवेन्द्र इस्सर और मंजूर एहतेशाम के टूटे-बँटे दिलों को पहचान लेती हैं। देवेन्द्र इस्सर पर बात करते हुए कृष्णा सोबती भारत-पाक विभाजन का परिदृश्य रेखांकित करती हैं। यह विभाजन स्मृत व्यक्ति के जीवन पर गहराई से अपनी छाप छोड़ता है। इस संदर्भ में कृष्णा सोबती लिखती हैं- "देवेंद्र इस्सर की दास्तान कुछ ऐसी बनी कि पैदा होने से पहले ही फैसला कर रखा हो कि जन्म लेना है तो ठीक पंजाबसाहिब की चट्टान तले और पहली बार आँख खोलनी हैं तो वह भी ऐसे रक्तरंजित इन्कलाबी दिन में जिसके गर्भ में दो मुल्कों के भविष्य का इतिहास लिखा पड़ा हो। 14 अगस्त। उधर जद्दी पुश्ती वतन का नया वजूद, नया नाम पाकिस्तान और इधर आजादी और तिरंगे वाला हिंदुस्तान।"[12] तात्कालिक परिस्थितियाँ देवेन्द्र इस्सर के अंतर्मन में इस कदर बैठ गई थीं कि इसका प्रभाव उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपनों से बिछड़ने का दर्द बयाँ किया गया है। शीर्षक 'याद कीजिये उन दिनों को' जो दो दिलों का नहीं, दो भौगोलिक सीमाओं का का बँटवारा था। उस सीमा ने, आगे के जीवन लिए, बहुत कुछ तय कर दिया था। देवन्द्र इस्सर उसी बँटवारे का परिणाम हैं। अपने मन:स्थिति को संयमित रखते हुए उस रक्तरंजित वातावरण और बिछुड़न के चीख चीत्कार को, शब्दों की अभिव्यक्ति देते हैं। कृष्णा सोबती कहती हैं- "हाड़-मांस का कोई भी इंसान जो उन खौफनाक खूनी रास्तों को लाँघकर जिन्दा

भाग निकला हो, वह कभी भीष्म साहनी बन जाता है, कभी मंटों, कभी देवेन्द्र इस्सर और कभी इन्तजार हुसैन”[13] भारत-पाकिस्तान विभाजन से दोनों देशों की समस्याएं कम नहीं होती हैं। देश का भौगोलिक बँटवारा हो गया लेकिन व्यक्ति के जीवन की समस्याएं ज्यों-की-त्यों बनी रहीं। इसके बाद की परिस्थितियाँ ऐसी बनी कि व्यक्ति की पहचान और वजूद को लेकर जद्दोजहद चलने लगी। देवेन्द्र इस्सर जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय में दाखिला लेने जाते हैं तो उनसे पहचान पत्र माँगा जाता है। वे कहते हैं- “नहीं, मेरे पास कुछ नहीं है। न कागज़, न पत्र, न प्रमाण पत्र और न कोई गवाही, न नाम न घर न देश। मेरा नाम, मेरा चेहरा सब कुछ रेखा के उस पार रह गया है जो सियासतदानों के हाथों कागज़ पर खिंची भूमि पर उतरी और दिल को चीरती हुई निकल गई।”[14] भारत-पाकिस्तान विभाजन का परिणाम जीवन पर कैसे पड़ता है। उससे व्यक्ति कितना प्रभावित होता है। इसका प्रमाण देवेन्द्र इस्सर का जीवन है। उनका संघर्ष है। देवेन्द्र इस्सर सिर्फ अपने मुल्क से अलग होने का दंश नहीं झेल रहे बल्कि नए मुल्क में पहचान पत्र की कमी से शैक्षणिक और आर्थिक तंगी की मार भी झेल रहे हैं। उनका दाखिला इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में नहीं हुआ। वह अपनी आर्थिक समस्या को खत्म करने के लिए एक ढाबे पर काम करने लगे। इसमें उनकी मदद मालिक पांडे ने की। कृष्ण सोबती कहती हैं- “रहने की कोई जगह नहीं थी सो ढाबे में ही रिहाइश भी। रात की बैंच, कुर्सियां इकट्ठी की जातीं और फर्श पर रात कटती।”[15] इसी संदर्भ में लेखिका आगे लिखती हैं- “सियासत, विभाजन, नागरिक और सरकारें, वह जो का जो करें पर जब अपनों की बंदिशें टूटती हैं-दिलों के खाके बदलते हैं तो उसके उजाड़ की दास्तान खुदा जाने।”[16] सटीएन पर लिखे गए संस्मरण का रूप संवादात्मक है इसमें कृष्णा सोबती और मंजूर एहतेशाम से बातचीत के दौरान उस समय के विभाजन की समस्या को उद्धृत करते हुए लिखती हैं- "अपने यहाँ भी बँटवारे की हलचलों के बाद खानदान बँट गए। लाहौर, कराची, पेशावर, बम्बई, कलकत्ता-जो बच गए थे और खैर-खैरियत से नजर आते थे, वहां भी नीचे तहों तले भूकंप-सी दरारें, पर अभी तक जेहन में कोई अक्स नहीं उभरा। ....मंजूर साहिब कुछ देर के लिए भूल जाइए। खुद बौखलाकर कागज पर तैरने लगेगा । हर शै अपने दाम बढ़ाना जानती है। हम दोनों ही इसके शिकंजे से निकलेंगे जरूर। आखिर कलम भी अपना जलवा दिखाएगी। इत्मीनान रहे-आपके हाथों कुछ महत्त्वपूर्ण ही उभर कर आएगा"[17] देश को आज़ाद कराने से पूर्व भारत में जगह-जगह तमाम आन्दोलन हो रहे थे। उन आंदोलनों से प्रभावित होकर क्षेत्रीय लोगों में भी एक जूनून दिखाई देता था। वह जूनून देश की आजादी को लेकर था, गाँधी-नेहरू की राह पर चलने को लेकर था। ‘धानापुर काण्ड’ इन्हीं परिस्थितियों की देन है। काशीनाथ सिंह के संस्मरण में 1942 में घटित ‘धानापुर काण्ड’ का जिक्र है जिसमें थाना फूंका गया था। इस काण्ड में कई लोग शहीद भी हुए थे। इस

घटना के कारण उस क्षेत्र के लोगों पर पुलिस ने जुल्म किया था। इसके साथ ही लेखक बर्मा की लड़ाई के दौरान वायुमंडल को चीरते विमानों की तरफ भी हमारा ध्यान ले जाता है जिसके माध्यम से उस समय की स्थिति को समझा जा सकता है। आजादी के दौर के लगभग सभी लेखकों ने अपने संस्मरण में तात्कालिक परिस्थिति को याद किया है। वे ब्रिटिश राज सत्ता से मुक्ति, भारत-पाकिस्तान विभाजन, भारत-चीन युद्ध आदि के दौरान लोगों में जोश भी देखें थे, वहीं तनाव, दहशत और तकलीफ भी। आजादी के बाद वैचारिक शून्यता को लेकर रवींद्र कालिया 'गालिब छूटी शराब' में लिखते हैं- "स्वाधीनता संघर्ष के दौरान पश्चिमी विचारधारा का सर्वथा निषेध था, सिर्फ देश को आज़ाद कराने की धुन थी। देश आजाद हो गया तो समाज में जैसे शून्यता भर गई। इस शून्यता को पश्चिम की चिंतन पद्धति भरने लगी"[18] कान्तिकुमार जैन ने 'तुम्हारा परसाई' में तात्कालिक प्लेग महामारी की भयावहता को बताये हैं। उस समय की सामाजिक स्थिति ऐसी थी कि गाँव का गाँव छोड़कर लोग जंगलों की तरफ भाग रहे थे।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार द्वारा स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक मूल्यों को रेखांकित कर, तात्कालिक परिस्थिति के परिदृश्य को दिखाने की कोशिश की गई है। साहित्य समाज में विद्यमान अनेक विसंगतियों को समेटे हुए है, जिसे संस्मरणकार कभी-कभी स्मृत व्यक्ति की रचनाओं के माध्यम से चित्रित करता है। कृष्णा सोबती अपने संस्मरण में आजादी से पहले और बाद की विवशता और संभावना को देखते हुए भारतीय साहित्य में उभरते नये तत्वों, सर्जनात्मकता, जीवन्तता और विकसित होते काव्य ढ़ांचे का बारीक मूल्यांकन करती हैं। बदलते समय-समाज की सशक्त और सजग पीढ़ी, जो अपने लोकतांत्रिक मूल्यों को पहचानती हैं। लेखिका लोकतान्त्रिक मूल्य की बात करते हुए अशोक वाजपेयी की कविता 'शहर अब भी सम्भावना है' को उद्धृत करते हुए, उसपर अपना विचार व्यक्त करती हैं- "अपने संदर्भ तक पहुँचने के लिए हशमत स्वतंत्रता प्राप्ति के पिछवाड़े से अपनी विस्थापित पीढ़ी और आजादी के बाद वाली अशोक वाजपेयी साहिब की पीढ़ी के रचनात्मक फर्क का जिक्र करेंगे। पराधीनता की विवशता, इंकलाबी क्रांति, जेल यातनाएँ, बम विस्फोट, साम्राज्यवाद के विरुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद उर्जा, आत्मविश्वास और राष्ट्रीय अस्मिता के नए-पुराने बौद्धिक और सांस्कृतिक रसायनों से उभरते रचनात्मक विवेक की जागृति का वह समय था। नागरिक समाज में नए आत्मविश्वास और आत्मनियंत्रण ने युवा पीढ़ी को नए रचनात्मक विन्यास, शिल्प और शैली की ओर अग्रसर किया था। साहित्य से उभरते जीवंत तत्वों के प्रवाह को सर्जनात्मक पटल पर नित नए रूप में बहते देखा जा सकना संभव हुआ"[19] कृष्णा सोबती अपने संस्मरण में आजादी के पहले और बाद की यात्रा कराती हैं। आजादी के बाद व्यक्ति और समाज के विकास के लिए संभावनाओं को तलाशती हैं लेकिन कुछ चीजें ऐसी विद्यमान

हैं, जो उन्हें निराश और हताश करती हैं। वे लिखती हैं- “दशकों के आरपार क्या यही वह समय नहीं है जिसे हम तब भी जी रहे थे, आज भी जी रहे हैं।”[20] कान्तिकुमार जैन कृत ‘हरिशंकर परसाई’ में प्रेमचंद और हरिशंकर परसाई की रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक मूल्यों की पड़ताल की गई हैं। कान्तिकुमार जैन का मानना है कि जिस प्रकार प्रेमचंद को सामाजिक गैरबराबरी और राजनीतिक दुराचार व्यथित करता था उसी प्रकार हरिशंकर परसाई को भी। हरिशंकर परसाई द्वारा लिखी गई, व्यंग कोई विधा नहीं बल्कि एक सामाजिक चेतना है। यही सामाजिक चेतना प्रेमचंद में थी, इसी कड़ी को आगे बढ़ाने वाले हरिशंकर परसाई हैं। कान्तिकुमार जैन लिखते हैं- “प्रेमचंद जिस तरह अपने समय के आर्थिक शोषण, राजनीतिक अत्याचार और सामाजिक गैर-बराबरी से अपने साहित्य में बराबर विचलित दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार हरिशंकर परसाई भी आजादी के बाद के भारत में मूल्यों के निरंतर ह्रास से दु:खी हैं और समाज में व्याप्त अनाचार, कदाचार, भ्रष्टाचार, दुराचार, अत्याचार से लोगों को आगाह करते हैं। प्रेमचंद और परसाई दोनों मूल्यों के पक्षधर हैं और सदैव उनके साथ खड़े दिखाई पड़ते हैं जो शोषित हैं, अपमानित हैं अथवा मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने के दर्द से गुजर रहे हैं। ये दोनों लेखक जानते हैं कि समाज में शोषण यों ही नहीं होता। किसान की जमीन यों ही नहीं हड़प ली जाती। बेचारे ग्राहक को यों ही नहीं लूटा जाता। गाँव के लड़के यो हो शहर नहीं भाग जाते और नेता के चमचे यों ही अपनी जेबें गरम नहीं करते। प्रेमचंद ने प्रारंभ में यह बात भले ही न समझी हो और उनकी सुमन या उनका अलगू चौधरी या उनका नमक का दरोगा भले ही चीजों के कार्य-कारण सम्बन्धों को न समझ पाते हों, किन्तु धीरे-धीरे प्रेमचंद के माधव अथवा घीसू अथवा गोबर यह बात बखूबी समझ लेते हैं कि आर्थिक विषमता अथवा सामाजिक भेद-भाव भगवान के बनाये हुए नहीं है। ये मनुष्यकृत हैं। इसका आधार शोषण पर आधारित वर्ग-संरचना है। ‘महाजनी सभ्यता' अथवा 'मंगलसूत्र' के प्रेमचंद जहाँ अपनी बात खत्म करते हैं, परसाई वहीं से अपनी बात की शुरुआत करते हैं”[21]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार वैश्विक समस्याओं की ओर हमारा ध्यान केंद्रित करता है। वह पश्चिम के देशों की समस्याओं को उठाते हुए उसकी तुलना भारतीय समस्याओं से करता है। काशीनाथ सिंह अपने संस्मरण में सामाजिक समस्याओं के वैश्विक रूप को रेखांकित करते हैं। उनके संस्मरण में भारत की ही समस्या नहीं बल्कि जापान जैसे विकसित देशों की समस्याओं को देखा जा सकता है। काशीनाथ सिंह अपनी जापान यात्रा को याद करते हुए एक तरफ प्रगतिशीलता और आधुनिकता के रूप को दिखाते हैं तो वहीं दूसरी तरफ मजदूरों की बेहाल जिंदगी का चित्रण करते हैं। एक वर्ग जापान में

जहाँ प्रगति के चरम पर है तो वहीं दूसरा वर्ग एक वक्त की रोटी के लिए खून-खराबे पर उतरा हुआ है। जहाँ एक वर्ग के लिए स्वचालित दरवाजे, कारें, सीढ़ियाँ हैं तो वहीं दूसरा वर्ग दिहाड़ी मजदूरी पाने के लिए संघर्षरत है। लेखक जापान में विजटिंग प्रोफ़ेसर लक्ष्मीधर मालवीय के साथ घूमने जाता है। लक्ष्मीधर मालवीय उन्हें जापान की प्रगतिशीलता नहीं, बल्कि जद्दोजहद कर रहे आम-जन-जीवन से रू-ब-रू कराते हैं, जहां "हर सुबह दिहाड़ी मजदूरों की भीड़ लगती है। सुबह 6 बजे के आसपास। वहीं ठेकेदार आता है। बंधुवर, आपने भारत में कसाइयों को बकरे खरीदते हुए देखा होगा। जिस तरह कसाई बकरे की रानें, पुट्ठे, सीना टोकर, दबाकर, उठाकर, वजन लेकर गोश्त की कीमत लगाता है, उसी तरह ठेकेदार अपनी जरूरत के मजदूर चुनता है। उसकी पसलियों में उंगली कोंचकर, कंधे ठोंककर, हाथ के पंजे और कलाइयाँ मसलकर ! ठेकेदार बुढ़ें, अधेड़, सुकुमार, साफ़-सुथरे और तुंदियल लोगों को अलग छाँटता जाता है और वे काम के लिए घिघियाते हैं, गिड़गिड़ाते है, झगड़ा करते हैं, मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं...।"[22] काशीनाथ सिंह जापान में बुराक जातियों के शोषण पर बात करते हुए भारत, अमेरिका आदि देशों में शोषित वर्गों की तरफ हमारा ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे इस संदर्भ में कहते हैं- "दीर्घकाल से पीड़ित इन भाईयों और बहनों में केवल बुराकु नहीं, भारत के हरिजन, अमेरिका के नीग्रो और यूरोप के रोमा और जिप्सी भी हैं।"[23] प्रकाश मनु और संजीव ठाकुर द्वारा संपादित 'यादों के काफिले', जिसके लेखक देवेन्द्र सत्यार्थी हैं। इसमें वे 'एक निग्रो सैनिक' के हृदय के दुःख को अपने संस्मरण में दर्ज करना नहीं भूलते हैं। वे इस नीग्रो सैनिक के माध्यम से अमेरिका में काले लोगों के साथ भेदभाव और अपमानपूर्ण जीवन की सच्चाई को हमारे सामने बहुत बारीकी से रखते हैं। इसके साथ ही देवेन्द्र सत्यार्थी 'नावागई के हुजरे में' पठान लोगों के गीत-उल्लास को याद करते हुए सांस्कृतिक मूल्य का एहसास कराते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन अपने में भारतीय तात्कालिक परिस्थिति के साथ-साथ वैश्विक परिदृश्य को समेटे हुए हैं। इसमें व्यक्ति और समाज से जुड़ी अनेके परिस्थितियाँ हैं, जो हमारे मन में अनेक सवाल छोड़ती हैं।

स्त्री-पुरुष संबंध

(प्रेम, विवाह और अन्य समस्याओं के संदर्भ में)

हिंदी संस्मरण साहित्य का शुरुआती स्वरूप जिस प्रकार व्यक्ति केन्द्रीयता तक सीमित था आज वह उस दायरे से बाहर खड़ा दिखाई देता है। आज वह व्यक्ति के बाह्य व्यक्तित्व तक सीमित नहीं, बल्कि उसके व्यक्तिगत संबंधों में सेंध लगाते हुए, व्यक्तित्व में स्पष्टता लाने की कोशिश कर रहा है, इसके साथ ही उनके संबंधों के माध्यम से स्त्री-पुरुष के जीवन की अनेक बानगी को प्रस्तुत करता है। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तिगत संबंधों के माध्यम से, उसके व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं के साथ-साथ, आधी आबादी की समाज में क्या स्थिति है? उसका भी चित्रण मिलता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन अपने कथ्य में आधी आबादी के स्वरूप समेटे हुए है तथा उसकी स्थिति-परिस्थिति, दिशा-दशा को एक स्वर दे रहा है। शुरुआती दौर के संस्मरणों को देखा जाए तो संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन पर बात करने से बचता था। वह आपसी संबंध बिगड़ने के कारण, स्त्री-पुरुष संबंधों पर खुलकर बात नहीं करता था। वह इसे उनका व्यक्तिगत मसला समझकर अनदेखा कर देता था। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन इस परंपरा को तोड़ते हुए नजर आता है। वह प्रेम, विवाह में बनते-बिगड़ते, खिलते-मुरझाते रिश्ते पर बेवाकी से अपनी बात रखता है। वह प्रेम में पड़े व्यक्ति की उन्मुक्तता की भी पड़ताल करता है तो सामाजिक दबाव में जबरदस्ती जिए जा रहे वैवाहिक संबंधों की उलझनों को भी रेखांकित करता है। वह सफल वैवाहिक जीवन में हँसते-खिलखिलाते दाम्पत्य जीवन की खूबसूरती को बताता है तो असफल वैवाहिक जीवन में दम तोड़ रहे संबंधों की तरफ भी हमारा ध्यान ले जाता है। इसके साथ ही समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्त्री-पुरूष संबंधों के साथ-साथ पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति का रेखांकन मिलता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्त्री-पुरुष के वैवाहिक जीवन का चित्रण दिखाई देता है। संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के वैवाहिक संबंधों के माध्यम से, लेखक वैवाहिक जीवन की समस्याओं की पड़ताल करता है। इनके वैवाहिक संबंधों के माध्यम से लेखक यह बताने की कोशिश करता है कि कुछ स्त्री-पुरुष के संबंध सामाजिक मान्यताओं के दबाव में बन तो जाते हैं लेकिन कहीं न कहीं भीतर ही भीतर छटपटा रहे होते हैं। राजेन्द्र यादव ने मनमोहन ठाकौर और उनकी पत्नी तथा काशीनाथ सिंह ने नामवर सिंह और उनकी पत्नी के वैवाहिक संबंधों में सामाजिक संरचना की भूमिका को उद्धृत किया है। काशीनाथ सिंह ने 'घर का जोगी जोगड़ा' के माध्यम से वैवाहिक जीवन के सामाजिक ढाँचे और उससे उत्पन्न समस्याओं की तरफ इशारा करते हैं। यह समस्याएं कितनी जटिल और अर्थहीन है, इसे लेखक ने बहुत बारीकी से देखने की कोशिश की है। लेखक ने स्मृत व्यक्ति के जीवन से जुड़े प्रसंगों के माध्यम से भारतीय समाज में स्त्री-पुरूष संबंधों की स्थिति क्या है? उसकी तरफ

इशारा किया है। नामवर सिंह के वैवाहिक जीवन पर बात करते हुए काशीनाथ सिंह उनके संबंधों की असमानता, उदासीनता आदि समस्या को उठाते हैं। इन तमाम समस्याओं का कारण सामाजिक मान्यताएं हैं, जिसके दबाव में शादी तो हो जाती है लेकिन रिश्ता कभी सामान्य नहीं रह पाता है। काशीनाथ सिंह अपने समय में पूर्वांचल की शादियों के बारे में लिखते हैं- “हाईस्कूल तक गनीमत, लेकिन लड़का अगर इंटरमीडिएट से आगे बढ़ गया बगैर विवाह के; इसका मतलब कि या तो लड़के में कोई ऐब है या उसके खानदान में। यह ऐब कोई कोढ़, मिरगी, बरम, जात-कुजात किसी भी तरह का हो सकता था। क्यों? क्योंकि शादी-ब्याह करके नहीं पढ़ते हैं लोग?...इस तरह शादियाँ हो जाती, पढ़ना जारी रहता और लिखाई-पढ़ाई करके निकल जाते नौकरी की तलाश में, बनारस, कलकत्ता, बम्बई। आठ-दस साल बाद बेटी को पता चलता कि वह गाँव के लिए है, शहर में कोई दूसरी है उसके पति के लिए-पढ़ी लिखी और मनमाफिक।”[24] नामवर सिंह शादी करके इन तमाम सवालों से बच तो गए लेकिन उनका रिश्ता कभी सहज-सामान्य नहीं रहा। अपनी पत्नी के प्रति उनकी उदासीनता, उनके रिश्ते को जर्जर कर रही थी। उनकी शादी एक ऐसी लड़की से हुई जो बिल्कुल पढ़ी लिखीं नहीं थी। जिसका असर पूरा जीवन उनके वैवाहिक जीवन पर पड़ा। इन दोनों के सम्बन्ध कभी सहज न हो सके। यह अलग बात है कि उस सम्बन्ध को पूरा जीवन ढ़ोया गया। ‘वे देवता नहीं हैं’ में राजेंद्र यादव का मनमोहन ठाकौर से अंतरंग सबन्ध बहुत घनिष्ठ था। उनका पारिवारिक सम्बन्ध होने के कारण, वे पति-पत्नी के संबन्ध को बहुत नजदीक से देखें थे। भारतीय समाज का ढांचा ऐसा है कि एक बार विवाह हो जाने के बाद पति-पत्नी के रिश्ते को विपरीत परिस्थितियों में निभाना पड़ता है। वह चाहकर भी आसानी से एक दूसरे से अलग नहीं हो पाते हैं। मनमोहन ठाकौर और उनकी पत्नी के संबन्ध को आधार बनाकर, राजेन्द्र यादव भारतीय समाज में स्त्री-पुरूष संबंधों की तरफ हमारा ध्यान केंद्रित करते हैं। स्त्री-पुरुष के जीवन में संबंधों का द्वंद्व हर समय में रहा है। यह द्वंद्व समानधर्मा है। स्त्री-पुरुष दोनों में। पितृसत्तात्मक समाज तमाम बैरिकेट सिर्फ महिलाओं के लिए लगाया गया था, आज उसमें कहीं न कहीं पुरुष भी छटपटा रहा है। वह बंधन में रहना नहीं चाहता है। उस बंधन में वह उसी तरह बेचैन है जैसे वर्षों से महिलाएं रही हैं। उसे भी तमाम परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। मनमोहन ठाकौर का बाह्य जीवन सुखी और खुशहाल दिखाई देता है लेकिन उनका अंतर्मन अंतर्विरोधों से घिरा हुआ है। उन्होंने जीवन से इतना समझौता कर लिया है- "नौकरी, कमला भाभी और मेरे जैसे दो चार मित्रों के सिवा वे मूलतः कहीं नहीं जुड़े। व्यक्ति हो या विचार, स्थान हो या भाषा- वे हर एक के साथ फ्लर्ट करते हैं। चुनाव कहीं नहीं है।"[25] लेखक आगे उनके अतर्विरोधों को रेखांकित करते हुए लिखता है- "वे शायद खुद भी इस द्वंद्व के शिकार थे। जहाँ वे रुकते थे, वहां भाभी जी

थीं, घर-परिवार और मध्यवर्गीय मनोविनोद की मरीचिकाएँ थीं। पता नहीं, वे उस सबसे भागकर 'बाहर' जाते थे या सिर्फ वापस वहीँ आने के लिए निकल जाते थे।"[26]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में संस्मरणकार अपने व्यक्तिगत संबंधों को रेखांकित करता है। वह पति-पत्नी के संबंधों का बारीक चित्रण, अपने संबंधों के माध्यम से करता है। अगर पति द्वारा पत्नी पर संस्मरण लिखा जाता है तो पत्नी दोषी के रूप में दिखाई देती है। अगर पत्नी द्वारा पति पर संस्मरण लिखा जाता है तो पति कटघरे में खड़ा दिखाई देता है। इस बात को ममता कालिया तथा रवींद्र कालिया द्वारा एक-दूसरे पर लिखे गए संस्मरण को पढ़कर समझा जा सकता है। रवींद्र कालिया और ममता कालिया के प्रेम संबंध की परिणति विवाह से होती है। ममता कालिया का अनुभव रवींद्र कालिया से प्रेम और विवाह दोनों का होता है। वे अपने अनुभव से विवाह संबंध में सभी स्त्री की स्थिति एक जैसी बताती हैं। वे लिखती हैं- "लाख प्रेम हो, शादी हमारे मुल्क में आज भी एक असमान संबंध हैं और रहेगा"[27] वहीं रवींद्र कालिया अपने विवाह संबंध में पनप रहे अविश्वास को परिलक्षित करते हैं। वे लिखते हैं- "शादी के तुरंत बाद ममता ने मेरे ऊपर बहुत-सी पाबंदियाँ आयद कर दी थीं। मैं किसी लड़की से हँसकर बात कर लेता, वह दो दिन के लिए रूठ जाती। हम लोग दसियों बरस साथ रह रहे हैं। मगर ममता को मेरे बारे में उल्टे सीधे ख्वाब आते रहते हैं। ज़्यादा दिन नहीं हुए कि उसने सपने में देखा कि मैंने शबाना आज़मी के साथ रहना शुरू कर दिया है। अब इसे भाग्य की विडंबना ही कहा जा सकता है कि जो सपने मैंने भी नहीं लिए, वे ममता को आ रहे हैं"[28] रवींद्र कालिया इलाहाबाद में प्रेस चलाते थे और उसी दौरान ममता कालिया मुंबई में अध्यापिका थीं। रवींद्र कालिया सालगिरह पर ममता कालिया को फोन करना भूल जाते हैं जिसे लेकर वह उनपर नई प्रेमिका के साथ गुरछर्रे उड़ाने का आरोप लगाती हैं। ऐसे तमाम प्रसंग कहीं न कहीं पति-पत्नी के रिश्ते में असमानता और अविश्वास का बोध कराते हैं। ममता कालिया के मन में संबंध को लेकर डर-भय का होना, यह संकेत देता है कि आज भी स्त्री चाहे कितनी पढ़ी-लिखी और सशक्त क्यों न हो? क्या कारण है कि यह संबंध आज भी महिलाओं का विश्वास हासिल नहीं कर पाया है। आज भी भारतीय समाज में दांपत्य जीवन की संरचना और उसमें महिलाओं की स्थिति कहीं न कहीं सोचनीय हैं। मनमोहन ठाकौर की पत्नी एक आयडियल पत्नी हैं जो पढ़ी-लिखी, पति के प्रति समर्पित और गृहस्थ जीवन के सभी कामों में दक्ष हैं। नामवर सिंह की पत्नी बिल्कुल पढ़ी-लिखी नहीं, सरल-सहज स्वभाव की है। ममता कालिया अथवा मन्नू भण्डारी जैसी दुनिया की दाव-पेंच समझने वाली पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर और सशक्त महिलायें हैं। इन सभी का वैवाहिक जीवन कहीं न कहीं एक जैसा ही है, असामान्य और असहज। एक पक्ष मानसिक प्रताड़ना झेलते हुए नजर आ रहा है तो दूसरा पक्ष असन्तुष्ट दिखाई दे रहा है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन वैवाहिक जीवन के अन्य समस्याओं को समेटे हुए नजर आते हैं। इसमें पारिवारिक कलह और दहेज की समस्या मुख्य हैं। दहेज समस्या की शिकार सिर्फ महिलायें हैं। इसके अलावा महिलाओं के अपहरण की समस्या, घरेलू हिस्सा की शिकार महिलाओं की समस्या आदि इस दौर के संस्मरणों के मुखर बिन्दु हैं। ममता कालिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार' को देखें तो उन्होंने सामाजिक समस्याओं के बहुत ही संवेदनशील पहलुओं को दर्शाया है, जिसमें स्त्री जीवन से जुड़ी समस्या प्रमुख है। लेखिका अपने बचपन के गाँव का चित्र उभारती हैं। उनकी स्मृति में गाँव के विविध रंग बसे हुए हैं। लेखिका की संवेदनाएं, उसे ही सजों पाती है जो घटनाएं उनपर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। लेखिका को गाँव आकर्षित नहीं करता बल्कि वहां की समस्याएं उनके ह्रदय को विदीर्ण कर देती हैं। इस संस्मरण में उन्होंने अपने तमाम व्यक्तिगत अनुभवों और सामाजिक विद्रूपता को सँजोया है। ममता कालिया के संस्मरण में व्यक्ति और समाज दोनों की समस्याएं स्पष्ट दिखाई देती हैं। उनका जीवन गाँव-शहर दोनों में बीता है। वे शहर की चकाचौध भी देखीं हैं तो गाँव का अँधेरा भीं। शहर के स्वीमिंग पूल में खेलती –अठलाती, गोते लगाती, महिलाएं भी देखीं हैं तो वहीं दूसरी ओर गाँव में दहेज, प्रताड़ना की शिकार, परिस्थियों की मार झेलती हुई, जीवन से तंग आकर, निराश-असहाय, अपनी तमाम समस्याओं का हल जीवन को ख़त्म करने के लिए कुएं-तलाब में डूबकी लगाती महिलाएं भी। लेखिका जब भी अपने या नानी के घर जाती, गाँव की बारीकियों को देखती हैं। वहां स्त्री का जीवन कैसा होता है उसे समझने की कोशिश करती। लेखिका ग्रामीण जीवन की स्त्री समस्याओं के संदर्भ में कहती हैं- "देखी-सुनी घटनाओं के सम्बन्ध में मुझे कुएं-बावड़ी, ताल-तलैया, नदियाँ-नाले, सागर-महासागर से ज्यादा खतरनाक और रहस्यमय लगते हैं। सागर में निनाद भी है तो प्रमाद भी, उन्माद है तो मर्यादा भी पर कुएं-बावड़ी तो कुछ कहते ही नहीं। इनके पेट इतने गहरे हैं कि साल सत्रह सुहागनें और सत्तर कुमारियाँ पचा जाएँ। इनके तले में जब झाकों, बस अपना ही चेहरा दिखेगा, मजाल है जो मुजरिम की भनक भी मिले। फिर भी लोग दिलेर हैं। ताल-तलैया, नदियाँ-नालों से जरा नहीं डरते। लोक साहित्य ने उन पर गीत रचकर उन्हें रोमांटिक बना डाला है। फिल्मों ने उनमें कुछ और रंग भर कर सारी कसर पूरी कर दी है।"[29] गाँव के लोकगीतों में ही सिर्फ स्त्री के जीवन की झलक नहीं मिलती हैं बल्कि लोक प्रचलित किस्से-कहानियाँ भी स्त्री आह को समेटे हुए हैं। लोक कहानियाँ जीवन की समस्याओं को प्रतिध्वनित करती हैं। लेखिका अपने दादी से कहानियाँ सुनती हैं। उन कहानियों के संदर्भ में वे लिखती हैं- "दादी सुनाती-सैताल की कहानी, मोरा और सारंग नैनी की कहानी, फूलन देई और ओलनदेई बहनों की कहानी। उनकी कहानियों में स्त्रियों के आसूं होते, पुरुषों के पाषाण ह्रदय होते और ऐसे पंछी पखेरू होते जो अचानक मदद को आ जाते"[30] लेखिका अपने दादा-दादी द्वारा सुनाई गयी कहानियों का जिक्र करती हैं। दोनों लोगों की कहानियों के पात्र,

धरातल, वातावरण, स्थितियां, भाव और विषय अलग-अलग होते थे। दादा द्वारा सुनाई गयी कहानियों में जातीय बोध और पितृसत्तात्मक समाज का चित्र दिखाई देता था, वहीं दादी द्वारा सुनाई गयी कहानियों में अबला स्त्री, कठोर हृदय पुरुष और सहयोगी पशु-पक्षी होते थे। पुरुषों द्वारा प्रताड़ित अबला महिलाओं का सहयोग कोई पशु या पक्षी करता। लेखिका इस प्रसंग के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज की जड़े कितनी गहरी हैं उसे रेखांकित करती हैं। दादा की कहानियों में व्यापारी, साहूकार, चोर, छबीली और एक चेतक घोड़ा होता। इस कहानी के अंत में साहूकार कभी हारता नहीं है। लेखिका दादा की कहानियों के माध्यम से जातीय दम्भ की ओर इशारा करती हैं क्योंकि वह भी साहूकार थे। भारतीय समाज में कोई जाति हो, उसके अन्दर अपना जातीय झुकाव दिखाई ही देता है। वे आगे लिखती हैं कि उनके दादा-दादी लड़कियों को यमुना के किनारे नहीं जाने देते थे। स्थानीय लोगों में यमुना को लेकर तमाम किवदंतियां प्रचलित थी। उन किवदंतियों में यह भी प्रचलित था कि यमुना के मगरमच्छ लड़कियों को पूरा साबुत निगल जाते थे। लेखिका कहती हैं- “जमुना जी के कछुए और मगरमच्छ छाँट-छाँट कर लड़कियों को ही क्यों काटते थे। कभी यह नहीं सुना कि फलाने के लड़के को मगरमच्छ उठाकर ले गया।”[31]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में व्यक्ति के प्रेम संबंधों की अभिव्यक्ति भी देखने को मिलती है जिसके कई स्वरूप सामने उभरकर आते हैं। प्रेम संबंध एक ऐसा संबंध है जो आज भी समाज में सहज स्वीकार नहीं है। इसको लेकर आए दिन ‘ऑनर किलिंग’ होती रहती है। यह ‘कानों में फुसफुसाहट’ का रहस्य बना हुआ है। इस तरह के प्रसंगों का समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में खुलकर आना, अपने पारंपरिक संस्मरणों के ढांचे को तोड़ता ही नहीं बल्कि समाज में इसे सहज रूप भी प्रदान करने का एक मुहिम भी है। इस दौर के संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार के प्रेम संबंधों का बहुत सहज रूप देखने को मिलता है। रवींद्र कालिया अपने मित्र कपिल के प्रेम संबंधों पर लिखते हैं- “शर्मिला था उस लड़की का नाम। वह दिलोंजान से फ़िदा हो गया। कपिल की जो स्थिति थी उसमें लड़की को कोई भविष्य नजर नहीं आ रहा था। कपिल पूरी तन्मयता और तीव्रता से उसे चाहने लगा था। प्रेम से उसे राहत न मिली, प्रेम ने उसकी यंत्रणा को और बढ़ा दी, जबकि प्रेम ही उसे यातना, संत्रास और विडंबना के अंधे कुएं से निकाल सकता था। प्रेम में बेरुखी और बेन्याजी उससे बर्दाश्त न होती। वह गोलियां खाकर अर्द्धचेतना में तलत महमूद की गजलें सुनता रहता”[32] मनोहर श्याम जोशी ‘लखनऊ मेरा लखनऊ’ में अपने प्रेम संबंधों का जिक्र करते हैं। उनका प्रेम एकतरफा था, जिसकी परिणति किसी रूप में न होने पर, वह उसे ‘कन्या कष्ट’ का नाम देते हैं। वे अपने प्रेम संबंध को लेकर लिखते हैं- “प्रेम के चक्कर में वह कहानीकार से कवि बन चले। अपने प्रेम में पड़ जाने की बात किसी को पता न चलने देने के लिए उन्होंने अपने लिए एक उपनाम गढ़ डाला ‘कुर्माचलि’। उपनाम गढ़ा और ‘वियोगी होगा पहला कवि’ को

चरितार्थ करते हुए पहली कविता लिख मारी"[33] ममता कालिया अपनी बड़ी बहन के प्रेम का जिक्र करती हैं। इस प्रेम की परिणति विवाह है लेकिन परिवार के अन्य व्यक्तियों की निगाह में उनके प्रेम और व्यक्तित्व का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। इन तमाम प्रसंगों के स्पष्ट होता है कि संस्मरण साहित्य संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के माध्यम से प्रेम संबंधों की बारीकियों को समझाने की कोशिश करता है। आज इस प्रसंग का संस्मरण साहित्य में खुलकर आना। इसकी प्रासंगिकता को बढ़ाता है। इसके विषय वैविध्य की संभावनाओं को और अधिक प्रबल करता है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन स्त्री जीवन की तमाम समस्याओं को समेटे हुए है। इनमें भारतीय समाज में व्याप्त यौनिक समस्या एक बड़ा प्रश्न है जिसका रेखांकन संस्मरण साहित्य में देखने को मिलता है। राजेन्द्र यादव इसे इस दौर की बड़ी समस्या के रूप में देखते हैं जिसपर सिर्फ साहित्य में ही नहीं, बल्कि हर प्लेटफार्म पर खुलकर बात करने का आग्रह करते हैं। वह यशपाल को याद करते हुए उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त यौनिकता की समस्या के आधार पर उन्हें एक सजग साहित्यकार मानते हैं। इस समस्या को यशपाल ने अपनी रचनाओं में बड़ी गंभीरता से उठाया है। भले ही रामविलास शर्मा ने उनके कथा संसार को अश्लील और सेक्स विकृतियों का कहानीकार कहा है लेकिन उन्होंने उस विषय को चुना जिसपर लोग बात करने से बचते हैं। जो समाज को कुंद कर रहा है। जिसका शिकार आधी आबादी आए दिन होती रहती है। उन्होंने सिर्फ यौनिकता पर ही नहीं बल्कि सामाजिक, धार्मिक, राजनीति आदि अहम पहलुओं को भी उठाया है। इस दृष्टि से देखें तो यशपाल के साहित्य का फलक व्यापक है। यौनिकता की समस्या भारत की अन्य समस्याओं की तरह गंभीर और सोचनीय है। यह अपराध के रूप में दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। समाज की कोई भी समस्या समाज को पीछे ही ले जाती है इसलिए समस्याओं की कैटगरी बनाकर उसपर बात न व्यक्ति के लिए सही होती है और न समाज के लिए। भारतीय समाज आज भी यौनिकता पर खुलकर बात नहीं करना चाहता जबकि आज के समय में भारत में यह कोढ़ बन चुका है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "यशपाल अपने सर्वश्रेष्ठ रूपों में सेक्स-सम्बंधों को लेकर ही हैं। उनके लिए सेक्स ऐसी सामाजिक समस्या है जो न जाने कितनी व्यक्तिगत कुंठाओं, विकृतियों और भटकनों को जन्म देती हैं। इस सन्दर्भ में सामंती जड़ मान्यताएं, दुहरे मूल्य, स्त्री को भोग्या, दासी मानने की मानसिकता, विवाह-संस्था की निर्भरता, आम मध्यवर्गीय परिवार के ढोंग, आडम्बर और झूठ में जीने को मजबूर करते हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की शोषण-निर्मित नैतिकता के सर्वाधिक सचेत चित्र शायद यशपाल ने ही दिए हैं।"[34] इस अपराध की शिकार महिलाएं रोज हो रही हैं। यौनिक कुंठा समाज को दिन-प्रतिदिन विकृत कर रही हैं तो क्या इसपर खुलकर बात नहीं करनी चाहिए? समकालीन

हिंदी संस्मरण में यौनिकता की समस्या के साथ-साथ अन्य समस्याओं का चित्रण मिलता है। राजेन्द्र यादव उन समस्याओं को यशपाल की 'भैरवी' और 'डायन' कहानी के माध्यम से उठाते हैं। किस तरह हमारे समाज में जो स्त्री ग्राह्य नहीं हैं उसे कभी 'भैरवी' तो कभी 'डायन' बना दिया जाता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को अपनी संपत्ति समझा जाता है। उसे आश्यकतानुसार ही दर्जा दिया जाता है। किसी रूप में वह माँ, बहन, पत्नी आदि है तो वहीं दूसरे रूप मे भोग्या, मनोरंजन आदि का साधन भी होती है। कृष्णा सोबती अपने संस्मरण में स्त्री को सिर्फ भोग्या की वस्तु समझने वालों पर टिप्पणी करते हुए लिखती हैं- “जिस पुरुष के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति और आय के स्रोत हैं वह औरतों को नचाकर आनन्द ले सकता है। उन्हें रखैल बना सकता है। बेवफा के तौर पर उन्हें अपनी फैंटेसी में शामिल कर सकता है।”[35] इसी संदर्भ में वे आगे लिखती हैं- “बिस्तर को केवल स्त्री का परमधाम समझकर उसका और ‘सेक्स’ का अपमान न हो”[36]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन सशक्त और आत्मनिर्भर स्त्री की समाज में क्या स्थिति है? उसका रेखांकन देखने को मिलता है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत बेहतर नहीं थी, चाहे वह किसी वर्ग की महिलाएं हो। पितृसत्तात्मक समाज में उन्हे हमेशा हाशिये पर रखा गया, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो अथवा रोजगार का। गाँव या शहर की महिलाओं को लेकर कुछ मामले में समाज का नजरिया एक जैसा होता है। उनकी आत्मनिर्भरता और सशक्तता समाज को आसानी से ग्राह्य नहीं होती हैं जिसके कारण उन्हें तमाम भद्दी टिप्पणी का सामना करना पड़ता है। कृष्णा सोबती ‘हम हशमत-3’ में विभूतिनरायण राय पर संस्मरण लिखते हुए इसी तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। विभूतिनारायण राय द्वारा हिंदी लेखिकाओं पर की गई ‘छिनाल’ शब्द की टिप्पणी को लेकर कृष्णा सोबती बड़ी बेवाकी से कहती हैं- “आप जैसा सुशिक्षित नागरिक अगर स्त्री-लेखन समूह को पुराने जमानों की जनाना ड्योढ़ी की तरह संबोधित करता है तो उसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया होनी लाजमी क्यों न होती? आप जैसे नागरिक अधिकारों से लैस स्त्री नागरिक के ‘स्व’ को चुनौती देना अनजाने ही पुरुष पक्ष के मनोवेगों की गुत्थियों और ग्रंथियों को ही प्रकट करता है। पुरानी ऊँची भंगिमाओं से उन्हें दलित समझकर उनका अपमान ही करता है।”[37] वीभूतिनरायण राय के माध्यम से कृष्णा सोबती पितृसत्तात्मक समाज में स्वावलंबी और सशक्त महिलाओं की स्थिति और स्त्री को लेकर पुरुष समाज के पूर्वाग्रह को बताना नहीं भूलती। वह दर्शकदीर्घा से अलग हटकर विभूतिनारायण राय द्वारा महिला लेखिकाओं पर टिप्पणी को लेकर अपना विरोध दर्ज करती हैं। उनका यह विरोध अपने अधिकारों के प्रति सजगता को दिखाता है। इस भेद-भाव पूर्ण सोच के खिलाफ बेवाकी से अपनी कलम चलाती हैं। जाति भेद, लिंग भेद और वर्ग भेद को बढ़ावा देने वालों की अवमानना करते हुए वे

कहती हैं- “साहित्य संसार का विरोध मात्र ‘छिनाल’ शब्द से नहीं- उसके संदर्भ से था जिसको लेकर वह इस्तेमाल किया गया था। इस नीम-समाजशास्त्रीय चिंतन को क्या कहें जहाँ आज भी भारतीय स्त्री को गर्म चूल्हे और गर्म बिस्तर का प्रतीक मान लिया गया हो। क्लासिक नजरिया।...यह विरोध आपके दकियानूसी वैचारिक प्रतिमानों के खिलाफ था जो आज भी लिगंभेद, जातिभेद और वर्गभेद को ऐसी रणनीतियों से बढ़ावा दे रहे हैं।”[38] कान्तिकुमार जैन अपने संस्मरण में हमारा ध्यान इस तरफ ले जाते हुए लिखते हैं- “नागपुर की इन शिक्षित लड़कियों में से बहुतों को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ। इनमें से बहुतेरी लड़कियाँ, भाइयों की शिक्षा के लिए और बूढ़े माँ-बाप के संरक्षण के लिए नौकरियाँ कर रही हैं। अपने विवाह का प्रस्ताव उन्होंने ठुकरा दिया है। नागपुर की ये लड़कियाँ अपने बिना कमाने वाले भाइयों और बूढ़े माँ-बाप के पेट में दो कौर पहुँचाने के लिए छोटी-छोटी नौकरियाँ कर रही हैं। कई बार उनके चरित्र पर आक्षेप किया जाता है। संभव है कि उनके चरित्र पर कोई दाग़ हो लेकिन जो लोग निष्कलंक हैं, उनके जीवन का कोई ध्रुव बिंदु नहीं है, उनके पास कोई सर्वाश्लेषी, सर्वग्राही लक्ष्य नहीं है। ऐसी भयानक और दुष्ट निष्कलंकता किस काम की?"[39] विश्वनाथ त्रिपाठी कृत ‘गुरु जी की खेती बाड़ी’ में गाँव की संघर्षशील उषा और दयावती के संघर्ष अलग नहीं है। वह तमाम विपरीत परिस्थितियों से लड़ने के लिए तैयार हैं फिर भी उन्हें न परिवार का सहयोग मिल पाता हैं और न ही समाज का। लेखक दयावती के संदर्भ में लिखता है- “महिला पत्रकार शिक्षा संस्थान नान कॉलेजिएट में दयावती इतवार और अन्य छुट्टियों में क्लास करती। माँ नहीं थी, पिता ज्यादातर नशे में रहते। लड़की पढ़ने जाती है, काफी खोज-खबर रखते थे। दयावती हाथ-पैर जोड़कर पढ़ाई चालू रखती। चार बहनें थीं, छोटी-छोटी। घर में बर्तन माँजती, खाना बनाकर बहनों और बाप को खिलाती। पढ़ाई चालू रखने के लिए ट्यूशन करती, कपड़े धोती और पढ़ने आती। ... वह ठीक से बाल भी नहीं सँवारती थी, लेकिन क्लास में कभी-कभी इतना खुश होती कि उसकी आँखें चमकने लगतीं। एक बार क्लास कर रही थी कि उसके बाप क्लास में घुस आए। किताब-कॉपी-कलम सब बटोर लिया, बीच क्लास में से उठा ले गए, फिर वह पढ़ने नहीं आई”[40] इसी प्रकार उषा भी अपनी पढ़ाई को लेकर तत्पर और संघर्षशील है। उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि उनके पास शोध प्रबंध को टाइप कराने के पैसे नहीं थे। वह अपना पूरा शोध प्रबंध हाथ से लिखती है। महिलायें आर्थिक समस्या, जीवन के अभावों आदि संघर्षों को झेलने के लिए तैयार हैं लेकिन उन्हें परिवार और समाज का दोहरा संघर्ष उनके पाँव की जंजीर साबित हो रहा है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्त्री स्थिति का वैश्विक परिदृश्य देखने को मिलता है। काशीनाथ सिंह ने जापान में स्त्रियों की स्थिति और उनके साथ हो रहे अमानवीयता व्यवहार का रेखांकन करते हैं। उनकी जापान यात्रा के दौरान मित्र वातानाबे उन्हें जापान के पोस्ट माडर्न स्थानों को दिखाने के लिए ले जाते हैं। वह उन्हें वहां के वयस्क सिनेमाघर में ले गये जहाँ दर्शक अधेड़ या विद्यार्थी थे। यहाँ फिल्म में न कोई कहानी, न संवाद, न अभिनय, न छायांकन, न कुछ। परदे पर केवल नंगी औरतें और उनपर पुरुषों का पशुवत अत्याचार और अप्राकृतिक यौन-सम्बन्ध। जापान की स्त्रियों की स्थिति को लेकर काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "दो नंगी औरतों को सिरके बल उल्टा लटका दिया गया है और पुरुषों का एक गिरोह उनके जिस्म के साथ खिलवाड़ कर रहा है। यही नहीं, उनके शरीर के संवेदनशील हिस्सों और गुप्तांगों पर जलती हुयी मोमबत्तियां टपकाते हुए उन्हें चीखते-चिल्लाते छटपटाते हुए देखकर तालियाँ भी बजा रहा है।"[41] यहाँ प्रश्न उठता है कि अगर किसी विकसित देश की आधुनिकता का यह रूप है तो क्या वह आधुनिकता ग्राह्य है? क्या भारत जैसे विकासशील देश में इस अमानवीय आधुनिकता की दरकार है? यह सोचनीय विषय है। जापान के इस रूप को देखकर लेखक असहज हो जाता है। एक विकसित देश में मानवीयता का ऐसा अमानवीय प्रदर्शन और मनोरंजन कितना घृणास्पद है। लेखक सिनेमाघर से बाहर निकल जाता है और वातानाबे से कहता है- "यह जंगलीपन है। इंसानियत का अपमान। समूची मानवीय संस्कृति का मजाक। क्या प्रेम और सेक्स इतना भद्दा और घृणास्पद होता है? जापान कहाँ जा रहा है?"[42] लेखक जापान की कॉफी हाउस में जाता है जहाँ पारदर्शी शीशे के अन्दर नंगी औरतें हैं जो ग्राहकों को आकर्षित करती हैं। इन लड़कियों की उम्र बीस-बाईस के आसपास है। लेखक कहता है- "उनके नंगेपन को कहीं से भी देखा जा सकता है। चारों दीवारें और छत, चाहे वे जहाँ और जैसे खड़ी या बैठी हों, उनके उभार और रेखाओं के बारे में बोलती रहती हैं। प्राय: हर मेज पर लोग हैं और कॉफीयां हैं। हर मेज पर पोर्नोग्राफी की पत्रिकाएं हैं।"[43] यह जापान का वह रूप हैं जहाँ स्त्रियों की स्थिति बाजार की एक 'वस्तु' के रूप में हैं। वह इस आधुनिकता के दौर में पुरुषों के हाथ की कठपुतली बनकर रह गयी है। जिसे अपने आवश्कतानुसार कहीं पत्नी, प्रेमिका, माता, बहन आदि रूपों में, तो कहीं अपने मनोरंजन के साधन के रूप में उपयोग किया जाता है।

हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श आदि की प्रासंगिकता जिस तरह बढ़ी है उसके सकारात्मक प्रभाव के साथ-साथ नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिलते हैं। किसी भी कानून और आंदोलन का ढांचा बदलाव के लिए होता है। स्त्री-विमर्श उसी बदलाव का परिणाम है। इस विमर्श का उद्देश्य वर्षों से हो रहे, स्त्री के साथ अत्याचार, लिंगभेद और भेदभावपूर्ण रवैये को रोकना है और उन्हें बराबरी का हक देना है। स्त्री को पुरुषों के बरक्स समानता का अधिकार देना है। स्त्री विमर्श महिलाओं के हित के उद्देश्य से

शुरू किया गया था लेकिन आज यह अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक गया है। इसके तमाम अंतर्विरोध परिलक्षित होने लगे हैं। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन भी इस बहस को अपना हिस्सा बनाया है। कृष्णा सोबती अपनी पुस्तक 'हम हशमत-3' में स्त्री विमर्श से जुड़े तमाम प्रश्नों की तरफ हमारा ध्यान ले जाती हैं। वे स्त्री विमर्श के सकारात्मक पहलू के साथ-साथ उसके अंतर्विरोधों को भी रेखांकित करती हैं। वे जयदेव पर लिखे गये संस्मरण में स्त्री विमर्श की खामियों को रेखांकित करती हैं। स्त्री विमर्श के नाम पर तमाम शोषण की तल्खियों की तरफ हमारा ध्यान ले जाते हुए लिखती हैं- "स्त्री-पुरुष की अलग-अलग सीमाओं-संस्कारों का अतिक्रमण हो रहा है, किया जा रहा है। ऐसे में स्त्री-पुरुष दोनों के अपनत्व और सामूहिक पहचान में भावात्मक ताल-मेल बिठाने को एक नई भाषा ईजाद करनी होगी जो मानवीय सम्बन्धों की फिर से पड़ताल करेगी।"[44] भौतिक सुख-सुविधाओं से पिछड़े समाज में स्त्री के लिए विमर्श जैसे आंदोलन की जरूरत नहीं। निम्न मध्यवर्ग की स्त्री पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती हैं। वह आर्थिक सहयोग में समान की भागीदार होती हैं। जितना अंतर्विरोध और पितृसत्ता का रूप मध्यवर्ग में देखा जाता है अपेक्षाकृत निम्न वर्ग में स्थिति बेहतर है। इस संदर्भ में कान्तिकुमार जैन छत्तीसगढ़ जैसे राज्य में महिलाओं की स्थिति को रेखांकित करते हुए लिखते हैं- "असल में छत्तीसगढ़ में स्त्री देह के प्रति कोई कुण्ठा, कोई विकृति छत्तीसगढ़ी पुरुष के मन में होती ही नहीं। स्त्री और पुरुष देह की स्वीकृति और उपस्थिति वहां इतनी सहज है कि प्रकृति विकृति नहीं बनती। खेत में, खलिहान में, हाट में, बाट में एक स्त्री की उपस्थिति बचपन से ही हमारी चेतना का अंग बन जाती है। तो हम लोग बाई सागर से गुज़रते, स्त्रियाँ नहातीं रहतीं वहीं कपड़े भी बदल लेतीं। न उनको संकोच होता, न हमको। यह तो छत्तीसगढ़ में बाहर से आने वाले ठेकेदारों, अधिकारियों और पत्रकारों ने छत्तीसगढ़ की छवि बना दी है जैसे वह सेक्स का अभयारण्य हो"[45]

पितृसत्तात्मक समाज में मध्यवर्ग की अपेक्षा निम्नवर्ग की स्त्रियाँ ज्यादा स्वतंत्र और सशक्त दिखाई देती हैं। उनके अंदर अंतर्विरोध कम देखने को मिलते हैं। उनकी सशक्तता कान्तिकुमार जैन के इस कथन से स्पष्ट हो जाती है- "आदिवासी स्त्रियां, एक वस्त्रा स्त्रियां, सांचे में ढली हुई स्त्रियां। दमकता हुआ काला रंग, खोंपा वाला केश विन्यास। खोंपे में ककई फंसी रहती। शरीर मांसल। 'निराला' ने जब 'पंचवटी प्रसंग' लिखा-'देख यह कपोत कंठ, बाहुबल्ली, कर सरोज, उन्नत उरोज पीन, नितम्ब भार' तो निश्चय ही उनके सौंदर्य का मॉडल कोरिया की कोई आदिवासी महिला रही होगी। उन्हें अपने शरीर का कोई बोध नहीं होता। उनमें अपने शरीर को लेकर क्षमायाचना जैसा कोई भाव कभी पैदा ही नहीं होता। शरीर है तो है। प्रकृति का दिया हुआ है। जैसे जंगल में महुए का पेड़ होता है या खरहा होता

है या तेंदू का फल होता है, वैसा ही उनका शरीर भी होता है। जब शरीर की प्रतीति ही नहीं है तो शरीर की लज्जा कहां से होगी?”[46]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री जीवन की अन्य समस्याओं का रेखांकन मिलता है। नामवर सिंह की पत्नी के माध्यम से काशीनाथ सिंह स्त्री जीवन की तमाम समस्याओं की ओर इशारा करते हैं। नामवर सिंह और उनकी पत्नी के सम्बन्धों की असहजता का कारण, पत्नी का बिल्कुल पढ़ा-लिखा न होना। नामवर सिंह बाद में उन्हें पढ़ाने की कोशिश भी करते हैं लेकिन वह पढ़ न सकी। उस समय लड़कियों के लिए शादी की योग्यता पढ़ाई-लिखाई नहीं, बल्कि घर के काम-काज की निपुणता थी। नामवर सिंह की पत्नी उसमें निपुण थी। उनका जीवन परिवार के प्रति समर्पित था। वह अपनी इच्छाओं-महत्वाकांक्षाओं को दरकिनार कर सिर्फ परिवार के लिए जीती थी। अगर किसी से थोड़ी बहुत उम्मीद थी तो अपने पति से, लेकिन जब उन्होंने देखा कि पति उदासीन ही नहीं बल्कि उनकी प्राथमिकता में वह कहीं नहीं है। वे इससे निराश ही नहीं होती बल्कि उनके स्वभाव पर इसका असर भी पड़ता है। वे चिड़चिड़ापन आदि का शिकार भी होती हैं। पति द्वारा उपेक्षित, रिश्तों की महत्त्वहीनता की शिकार आज की तमाम महिलाएं हैं। उनका जीवन पति-परिवार तक सीमित है। उससे बाहर न उनकी दुनिया है और न ही उम्मीद। उन्हें बचपन से एक ही संस्कार दिया जाता है, उसके बाहर जाकर वे न सोच सकती हैं, न जानती ही हैं। उन्हें बचपन से सिखाया जाता है कि पति ही उनका परमेश्वर है। उसके इच्छा की पूर्ति ही स्त्री धर्म है। उनके अन्दर यह संस्कार इतनी गहराई से भर दिया जाता है कि वे इसे ही अपना जीवन मान लेती है। पति धर्म को वह ख़ुशी-ख़ुशी निभाती हैं। नामवर सिंह की पत्नी के माध्यम से काशीनाथ सिंह भारतीय स्त्रियों की स्थिति पर लिखते हैं- “वे भारत की उन नारियों में से रही हैं, जो कभी नहीं जान पातीं कि पैदा होने और मरने के बीच जीवन भी होता है।”[47] ग्रामीण स्त्री के जीवन की झांकी काशीनाथ सिंह के इस वक्तव्य में प्रस्तुत होती है- “वे आजादी से पहले के अपने मुल्क की उन बेटियों में से एक थीं जो जानती थीं कि जिस घर में पैदा हुई हैं, वह उनका घर नहीं है। उनका अपना घर कहाँ है, किधर है, कब होगा-इसे न उनकी माँ जानती थी, न बाप। वे सिर्फ इतना जानते थे कि बेटी को चूल्हा चक्की, झाड़ू बुहारू करना जानना चाहिए, बर्तन भांडा मांजना आना चाहिए, गोबर पाथना और आँगन पोतना आना चाहिए, सेर, अढैया पौवा आना चाहिए। यह अनिवार्य योग्यता थी शादी की। बाकी सिलाई-तंगाई और चिट्ठी-पत्री बांचना भी जानती हो तो सोने पर सुहागा। वर की खोज करते समय ध्यान इतना ही रखा जाता था कि वह निरा बौड़म न हो। विशेष ध्यान दिया जाता था विरासत में मिलने वाली उसकी जगह-जमीन, हल-बैल, खेती-बारी पर। अगर दूध-दही भी ऊपर से साल भर मिलता रहे तो क्या कहने...?”[48]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्त्री-पुरुष संबंधों की स्थिति के साथ-साथ उसने जीवन के विविध पहलुओं पर अपनी दृष्टि डालता है। इसमें प्रेम-वैवाहिक जीवन की समस्या, पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति आदि की तरफ इशारा किया गया है। इन संबंधों के सकरात्मकता-नकारात्मकता की बारीकियों को पकड़ने की कोशिश करता है। इसके साथ ही समाज में स्त्री की स्थिति और पितृसत्ता के ढांचे की तरफ भी हमारा ध्यान ले जाने की कोशिश करता है। आज स्मृत व्यक्ति के वैयक्तिक दायरे से बाहर निकलकर, संस्मरणकार अपनी दृष्टि को विस्तार दिया है। वह अपने चतुर्दिक फैले सामाजिक मूल्यों की पड़ताल करता है। यही कारण है कि संस्मरण आज अपनी लोकप्रियता के शिखर पर है। आज पाठक को एक ही विधा के वैविध्यपूर्ण धरातल पर वह सब मिल रहा है जिसकी उसे दरकार थी। वह रोचक कथात्मकता का रसास्वाद भी कर रहा है तो व्यक्ति और समाज का यथार्थ रूप भी देख रहा है। संस्मरण के माध्यम से जो वैविध्यपूर्ण जीवन की झलक एक ही विधा में देखने को मिल रही है वह अन्यत्र संभव नहीं है।

संदर्भ सूची :-

1. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 14 ।
2. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 98 ।
3. वही ।
4. जो कहूँगा सच कहूँगा, कान्तिकुमार जैन , पृष्ठ 209 ।
5. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 16-17 ।
6. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 77।
7. वही, पृष्ठ 100 ।
8. वही, पृष्ठ 15 ।
9. वही, पृष्ठ 10 ।
10. बैकुंठपुर में बचपन, कान्तिकुमार जैन, पृष्ठ 150 ।
11. रघुवीर सहाय:रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 14 ।
12. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 106 ।
13. वही, पृष्ठ 106 ।
14. वही ।
15. वही ।
16. वही।
17. वही, पृष्ठ 19 ।
18. गालिब छूटी शराब, रवींद्र कालिया, पृष्ठ 38 ।
19. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 75 ।
20. वही, पृष्ठ 76 ।
21. हरिशंकर परसाई, कान्तिकुमार जैन, पृष्ठ 266-267 ।
22. आछे दिन पाछे गए, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 97 ।
23. वही ।
24. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 71-72 ।
25. वे देवता नहीं है, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 70 ।
26. वही, पृष्ठ 71-72 ।
27. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 140।
28. गालिब छूटी शराब, रवींद्र कालिया, पृष्ठ 285 ।
29. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 6 ।
30. वही, पृष्ठ 13 ।
31. वही, पृष्ठ 12 ।
32. गालिब छूटी शराब, रवींद्र कालिया, पृष्ठ 37 ।

33. लखनऊ मेरा लखनऊ, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 85 ।
34. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 36-37 ।
35. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती पृष्ठ 97 ।
36. वही, पृष्ठ 100 ।
37. वही, पृष्ठ 98 ।
38. वही, पृष्ठ 97-98 ।
39. जो कहूँगा सच कहूँगा, कान्तिकुमार जैन , पृष्ठ 96 ।
40. गुरुजी की खेती बाड़ी, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 83 ।
41. आछे दिन पाछे गए, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 95 ।
42. वही, पृष्ठ 95 ।
43. वही, पृष्ठ 96 ।
44. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 38 ।
45. जो कहूँगा सच कहूँगा, कान्तिकुमार जैन, पृष्ठ 266 ।
46. बैकुंठपुर में बचपन, कान्तिकुमार जैन, 104 ।
47. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 71।
48. वही, पृष्ठ 71 ।

पाँचवा अध्याय

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन के अन्य बहुधर्मी आयाम

(i) सांस्कृतिक और धार्मिक आयाम

(ii) स्थान केंद्रित संस्मरण : व्यक्ति, समाज, परिवेश और अन्य आयाम

(iii) आर्थिक आयाम

(iv) स्मृत व्यक्ति की रचनाएं : व्यक्ति और समाज का मूल्यांकन

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन के अन्य बहुधर्मी आयाम

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन के अन्य बहुधर्मी आयाम में संस्मरण साहित्य के उन बिंदुओं को रेखांकित किया गया है जो इसे वैविध्यपूर्ण बनाते हैं। यह विविधता व्यक्ति के जीवन की ही नहीं बल्कि समाज की भी होती है। संस्मरण साहित्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के कोने-कोने को तो तलाशता ही है इसके साथ वह समाज के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल भी करता है। इस अध्याय में समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में अभिव्यक्त सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और अन्य प्रसंगों पर बात की जाएगी। यह ऐसे कारक है जो व्यक्ति और समाज को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन के अन्य बहुधर्मी आयाम' को तीन उपशीर्षकों में बाँटा गया है जो इस प्रकार हैं- (i) सांस्कृतिक आयाम और धार्मिक (ii) आर्थिक स्थिति (iii) स्थान अथवा शहर केंद्रित संस्मरण : व्यक्ति, समाज, परिवेश और अन्य आयाम (iv) संस्मरण द्वारा स्मृत व्यक्ति की रचनाओं के आधार पर व्यक्ति और समाज का मूल्यांकन ।

इस अध्याय का पहला उपशीर्षक 'सांस्कृतिक और धार्मिक आयाम' हैं। मानव उत्पत्ति के साथ ही उसकी अपनी धर्म और संस्कृति रही है। सबका अपना-अपना धर्म और संस्कृति होती है। यह कहना गलत न होगा कि 'धर्म और संस्कृति' तथा 'व्यक्ति' दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए को छोड़कर व्यक्ति का मूल्यांकन करना, उसका अधूरा मूल्यांकन होगा। संस्मरण साहित्य व्यक्ति के साथ ही उसके जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण हिस्से को समेटे हुए है जिससे उनका जुड़ाव है।

इस अध्याय का दूसरा उपशीर्षक 'आर्थिक स्थिति' को आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें स्मृति व्यक्ति, संस्मरणकार और अन्य व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति को रेखांकित किया गया है। समकालीन संसमरणकार द्वारा अपने संस्मरण साहित्य में आर्थिक विषमता कभी व्यक्ति के माध्यम से, तो कभी समाज से सीधे-सीधे उठा ली जाती हैं। आर्थिक विषमता व्यक्ति और समाज के जीवन को किस हद तक प्रभावित करती है इस पर विस्तार से विचार किया गया है।

तीसरा उपशीर्षक 'स्थान अथवा शहर केंद्रित संस्मरण: व्यक्ति, समाज, परिवेश और अन्य आयाम' है। इसमें संस्मरणकार स्थान विशेष को पृष्ठभूमि बनाकर, उस जगह से जुड़े व्यक्ति और समाज के माध्यम से तमाम प्रसंगों को रेखांकित करता है। उसकी स्मृतियों में उस स्थान विशेष से जुड़े विविध रंग समाहित हैं जिसे संस्मरणकार चित्रित करता है। उसकी स्मृतियों में व्यक्ति की ही नहीं, बल्कि परिवेश की अहम भूमिका होती है। परिवेश से वहाँ की परिस्थितियों का बोध होता है। स्थान विशेष केंद्रित संस्मरण व्यक्ति और समाज के जीवन वैविध्य को समेटे हुए होते हैं।

चौथा उपशीर्षक 'स्मृत व्यक्ति की रचनाएं : व्यक्ति और समाज का मूल्यांकन' है। इसमें स्मृत व्यक्ति की रचनाओं के माध्यम से उसके व्यक्तित्व और सामाजिक स्थिति की शिनाख्त की जाती है। इसे दो परिप्रेक्ष्य से देखने की कोशिश की गई है- पहला 'स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त उसका व्यक्ति रूप' और दूसरा 'स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक पहलू'।

सांस्कृतिक और धार्मिक आयाम

(क) सांस्कृतिक आयाम

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में लोक संस्कृति का परिदृश्य दिखाई देता है। ममता कालिया का पैतृक घर मथुरा में था। वे मथुरा की संस्कृति से प्रभावित थीं। ममता कालिया कहती हैं कि मथुरा उनके साहित्य का परिवेश ही नहीं, आवेश भी है। मथुरा की संस्कृति उनके संस्मरणों में परिवेश बनकर आई है। इसमें यमुना की छवि और नदी के किनारे बसे हुए शहर की रम्यता, वहाँ के निवासियों को रोमांचित करती है। यमुना को वहां के लोग, नदी के इस नाम से न बुलाकर 'जमुना जी' से सम्बोधित करते थे, जो प्रकृति के प्रति पूज्यभाव को दर्शाता है। पेड़-पौधों, नदी, अन्न आदि को पूजने की परम्परा मानव संस्कृति के साथ विकसित हुयी। भले ही आज हम प्रकृति का दोहन कर रहे हैं लेकिन ग्रामीण संस्कृति में प्रकृति के प्रति प्रेम-भाव आज भी लोगों में बचा हुआ है। वहां आज भी तुलसी पूजा, गंगा पूजा, अन्न पूजा आदि होती हैं। लेखिका सावन महीने की एक बानगी प्रस्तुत करते हुए लिखती हैं- "होली दरवज्जे से कोई गली दाईं ऊँची चढ़ान चढ़ती चली जाती थी जिसे शायद सतघड़ा कहते थे। पहली मंजिल का मकान। सावन में कमरे में झूला डलता। हरियाली तीज पर बाबा हरे रंग की छोटी-छोटी धोतियाँ लाते हमारे लिए। झूले के गीत, सावन के लोकगीत आज भी अपनी धुन सहित मेरे कानों में गूंज उठते हैं।

'बाग़ में पपीहा बोले मैं जानूं कोई आया रे,
झूला झूले रे कदम तलेराधे भीगें संग नन्दलाल।"[1]

काशीनाथ सिंह का गाँव के प्रति लगाव था। यह लगाव उनके संस्मरणों में भी दिखाई देता है। इन्होंने अपने संस्मरणों में गाँव का जो रूप प्रस्तुत किया है उससे स्पष्ट होता है कि लेखक की आत्मा गांव में ही बसती हैं। गाँव का इतना जीवंत और यथार्थ रूप वही प्रस्तुत कर सकता है जो उसकी मूल संवेदना को पकड़ता हो। 'घर का जोगी जोगड़ा' में लेखक ने ग्रामीण जीवन से जुड़े अनेक रूपों को रेखांकित किया है जिसके केंद्र में उनका गाँव जीयनपुर है। लेखक जीयनपुर के माध्यम से भारत के गांवों की छवि प्रस्तुत की है। वह गाँव से जुड़ी तमाम सांस्कृतिक विविधताओं को कुरेदा है, जहां आधुनिकता का नामोनिशान नहीं हैं, इसलिए लेखक कुछ रूढ़ियों और परंपराओं का मिला-जुला रूप हमारे सामने उभारता है। लेखक जीयनपुर की सांस्कृतिक विविधता के माध्यम से बताना चाहता है कि जहाँ शहर आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की होड़ में है वहीं गाँव आज भी अपनी परंपराओं, संस्कृति और सभ्यता को समेटे हुए आगे बढ़ रहा है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में लोक में व्याप्त पौराणिक कथाओं की झलक देखने को मिलती है। ममता कलिया 'कितने शहरों में कितनी बार' में मथुरा की सांस्कृतिक विविधता और पौराणिक कथाओं के महत्त्व को रेखांकित करती हैं। लेखिका मथुरा के वैविध्यपूर्ण जीवन के संदर्भ में कहती हैं- "मथुरा में रहने वाले जानते हैं कि उस मिट्टी के कण-कण में साहित्य बसा है, कहीं कथा कहानी तो कहीं कविता है। मथुरा के लोग बातों के रसिया हैं। कृष्ण काव्य में सूरदास के अलावा मथुरा के जन-जन ने अपनी कल्पना का जो रस उसमें उंडेला है उसी पर यह काव्य टिका हुआ है। मथुरा-वृन्दावन के मंदिरों में सगुणभक्ति का अतिरेक बालकृष्ण और छैल बिहारी की ऐसी लीलाएं रचता है कि वे एक नहीं अनेक शताब्दियों के महानायक कहे जा सकते हैं। मथुरा जनपद में धर्म, भक्ति, इतिहास, किंवदन्ती और कल्पना इस तरह घुल-मिल गयी हैं कि जब आप किसी से बात करते हैं तो यह नहीं पता चल सकता कि उसमें यथार्थ, श्रुति और स्मृति की हकदार क्या है।"[2]

कान्तिकुमार जैन कृत 'बैकुंठपुर में बचपन' में 'गेदी के गोदने' शीर्षक से लिखे गए संस्मरण में गेदी के विवाह के दौरान, वैवाहिक अनुष्ठानों के माध्यम से लोक संस्कृति का बड़ा रोचक वर्णन किया गया है। ग्रामीण संस्कृति में लड़की के विवाह के समय गोदने को महत्त्वपूर्ण माना जाता था। उस गोदने में वह अपने मायके की प्रकृति और संस्कृति को समेटकर ले जाती थी। गोदने को लेकर हर क्षेत्र की अपनी-अपनी मान्यता है। बैकुंठपुर के लोगों का मानना है कि बेटी परलोक जाएगी, तो उसके गोदने ही उसके साथ जाएंगे। गेदी आदिवासी लड़की थी, उसके गोदने में सौर्यमंडल से सूरज-चाँद, प्रकृति से विभिन्न वनस्पतियां, आदिवासी समुदाय की कुछ ज्यामितिक आकृतियाँ आदि सम्मिलित थीं। गोदनहारी गोदने के दौरान जिस लोकगीत को गाती है उसको लेखक अपने संस्मरण में रेखांकित करता है-

"का गोंदना ला गोदों मंय, का गोदना ला गोदों,
मोर दुलैरिन बेटी मंय, का गोदना ला गोदों ।
नाक गोदा ले नाक मां फूली, माथ गोदा ले बिन्दिया,
बांह गोदा ले बांह बहुंटवा, हाथ गोदा ले कंगनी।
मांग ऊपर छै बुदिया गोदा ले, पांव गोदा ले बिछिया,
हिरदे में तैं राम गोदा ले, दाग लगा ले चेंलिया ।"[3]

कान्तिकुमार जैन ने 'क्रिकेट के जन्म की लोककथा' शीर्षक से संस्मरण लिखा है। क्रिकेट को बैकुंठपुर में 'रामरस' के नाम से बुलाते हैं। बैकुंठपुर में रामरस को लेकर एक लोककथा प्रचलित है कि चित्रकूट जाते समय छत्तीसगढ़ के खरबत झील के पास खरबत

पहाड़ पर राम रुके थे वहाँ के लाल पत्थरों से उन्होंने गेंद बनाई, दोनों भाई रामरस खेले। यही से रामरस पूरे दुनियाँ में क्रिकेट के नाम से प्रचलित है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में क्षेत्रीय और भाषाई परिदृश्य का वैविध्य दिखाई देता है। ममता कालिया विभिन्न शहरों जैसे- दिल्ली, नागपुर, इलाहाबाद, मुंबई में रहीं हैं। वे कलकत्ता से जुड़े अपने अनुभव को साझा करते हुए वहाँ की तमाम खूबियों और विविधता को अपने संस्मरण में रेखांकित करती हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर और शरतचंद्र जैसे महान व्यक्तियों की भूमि कलकत्ता रही हैं। वहाँ का भौगोलिक ढ्रांचा सैलानियों को आकर्षित करता है। कला और साहित्य का वैविध्यपूर्ण जीवन लोगों की चेतना को जागृत करता है। वहाँ नाट्यकर्म नियमित चलता है। उसका मंचन सिर्फ बंगला में ही नहीं, बल्कि हिंदी में भी होता है। बंगला और हिंदी दोनों भाषाओँ में लोग रूचि लेते हैं। कलकत्ता में बंगालियों के साथ-साथ हिंदी भाषियों की संख्या कम नहीं है। कलकत्ता में यू.पी और बिहार के लोगों से हो रही जनसंख्या बृद्धि को लेकर ममता कालिया कहती हैं- “टैगोर और शरतबाबू के समय जो यू.पी., बिहार के भैया लोग अकेले कोलकाता आते थे, अब बीबी-बच्चों समेंत आते हैं और यहीं रहकर और बच्चे पैदा करते जाते हैं। अपनी बात की पुष्टि में वह कहता है, जितना चायवाल, पानवाला, पानवाला, सिंघाड़ेवाला, पुचकावाला, टैक्सी, ड्राईवर, रिक्शावाला, चौकीदार, वेटर लोग हैं सब यू.पी., बिहार का है।”[4]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन विभिन्न शहरों का परिवेश समेटे हुए हैं। संस्मरणकार का जिन शहरों से साबका रहा है उसका चित्रण उसके संस्मरणों में दिखाई देता है। वह उस शहर की खूबियों-खामियों का बड़ी सजगता से समेटने की कोशिश करता है। संस्मरणकार इन शहरों के माध्यम से वहाँ की सांस्कृतिक समृद्धि की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। ममता कालिया अपने संस्मरण में नागपुर शहर के लोगों की संगीत के प्रति रूचि को रेखांकित करती हैं। वे नागपुर के लोगों के बारे में कहती हैं कि यहाँ के लोग संगीत प्रिय और प्रायः शांत स्वभाव के होते हैं, ये शांति पसन्द करते हैं। नागपुर में गणेश चतुर्थी से अनंत चतुर्दशी तक, दस दिन जगह-जगह संगीत, साहित्य कला और नाटक के कार्यक्रम का आयोजन होता है। उन आयोजनों के प्रतिभागियों की उत्सुकता और उत्साह लेखिका की स्मृति में कौंधती हैं। लेखिका नागपुर की सांस्कृतिक विविधता का चित्रण करते हुए लिखती हैं- "नागपुर एक शांत शहर था। शास्त्रीय संगीत सभाओं में वहां सैकड़ों की संख्या में श्रोता आते। आकाशवाणी से इन सभाओं का सजीव प्रसारण होता। श्रोताओं को इस बात का एहसास रहता। वे बड़े शउर से बैठते। जो सेवक पान और जल की ट्रे घुमाता वह भी बेआवाज अपना काम करता। वे संगीत सभाएँ मेरे सांस्कृतिक जीवन की पाठशाला जैसी थीं।"[5]

काशीनाथ सिंह स्थान विशेष को केंद बिन्दु बनाकर भले ही संस्मरण न लिखे हो लेकिन उनके संस्मरण बनारस का परिवेश समेटे हुए हैं। उनके संस्मरणों में बनारस का सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश, किसी न किसी बहाने उभरकर आ ही जाता है। काशीनाथ सिंह अपने संस्मरण 'आछे दिन पाछे गए' में बनारस की छवि को रेखांकित करते हुए लिखते हैं- "अखंड हरिकीर्तनों का शहर! रात-रात कव्वालियों और विरहा-दंगलों का शहर! कंधे पर लंगोट या लंगोट की पगड़ी बांधे सिर का शहर! पान की दुकानों के आगे सुबह-शाम गप्पें मारता और ठहाके लगाता शहर! गलियों और गलियों, घाटों और मालियों, 'हर हर महादेव' के नारों और तालियों का शहर! प्राणों का शहर...'हाय-हाय' इसलिए कि यह शहर भी था और एक भारी-भरकम ओखल भी, जिसमें अपनी मर्जी से अपना सिर डाले हुए सारा जीवन पड़ा रहा! वह हमेशा मुझे अपने उस पिता की याद दिलाता रहा जो अपना प्यार 'थप्पड़ों' की भाषा में व्यक्त करते थे। जितना ही अधिक प्यार, उतने ही अधिक थप्पड़ ।"[6]

कृष्णा सोबती 'हम हशमत-3' में निर्मला जैन को याद करते हुए 'शहर-दर-शहर के बहाने' दिल्ली की वैविध्यपूर्ण जीवन शैली, सांस्कृतिक सपन्नता और इसके अंतरराष्ट्रीय संपर्क को बताना नहीं भूलती। दिल्ली में अलग-अलग जगहों से लोग आए और यही रच-बस गये। दिल्ली ने उन्हें अपना बना लिया और वे दिल्ली को अपना बना लिए। दिल्ली का अस्तित्व अगर है तो अलग-अलग जगहों से आये लोगों से है। कहा जाता है कि दिल्ली का कुछ अपना नहीं है। वह विभिन्न जगहों से आए हुए लोगों और उनकी संस्कृतियों से समृद्ध है। यह सच भी है। लेखिका लिखती हैं- "दिल्लीवाले बाहर से आनेवालों को अपनी ख़ामोशी से यही कहते हैं कि आइए दिल्ली शहर जितना हमारा है, उतना ही हर भारतवासी का। आज की सियासत बाकायदा इसके खिलाफ मुहिम चला रही है कि यह उत्तर भारतीय हैं, वह दक्षिण भारतीय हैं। यह मराठी मानुष हैं, मध्यदेशी हैं, बंगला हैं, बिहारी हैं, हम अपने यहाँ न आने देंगे। हमारे रिजक का क्या होगा! दिल्ली वाला बाहर से आनेवालों को कभी इनकार नहीं करता। पुरानी दिल्ली के मुहल्ले कभी बाहरवालों के लिए मुकाबले वाली दबंगई खुरचन खिलाने के लिए जरूर मशहूर थे जो दरअसल अपने मुहल्ले की कुव्वत, ताकत दिखाने की ही पेशकश हुआ करती थी।"[7] विभिन्न जगहों जैसे- गाँव, देहात, कस्बों, नगरों, शहरों, महानगरों आदि से आये लोग अपनी संस्कृति, भाषा, त्यौहार, खान-पान आदि से दिल्ली को समृद्ध किए हैं। आज दिल्ली भले ही भाग दौड़, अकेलापन, त्रास जैसी जीवन की तमाम समस्याओं से कराह रही है लेकिन इसके सांस्कृतिक विविधता को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। लेखिका लिखती हैं- "खूबी तो यह भी कि अपने छोटे-बड़े गली-मोहल्ले में रहते हुए भी दिल्ली का शहरी राजधानी के रूप में एक बड़ी दुनिया से जुड़ा रहता है जो उसकी आंतरिक स्थानीयता को गूढ़ ढंग से विभिन्न प्रदेशों में भी बड़ा विस्तार देती है। दिल्ली का शहरी

जानता है कि उसका शहर देश, राष्ट्र की प्रभुसत्ता का प्रतीक है। वह राजधानी से जुड़े बड़ी दुनिया को अपने अंदर खींचता है और जाने-अनजाने उसकी सामाजिकता को अपने भीतर सींचता है। इस शहर की बौद्धिक जलवायु यहां के हर नागरिक के दिल-दिमाग में जाने-अनजाने व्याप्त रहती है।"[8] दिल्ली के रहन-सहन में ही नहीं, बल्कि खान-पान में भी सांस्कृतिक विविधता दिखाई देती हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में साहित्यिक वैविध्य का चित्रण देखने को मिलता है। कृष्णा सोबती अपने संस्मरण में दिल्ली शहर के साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्त्व को बताते हुए लिखती हैं- "दिल्ली का साझापन जमानों से कवियों, शायरों और लेखकों को आकर्षित करता रहा है पुराने दस्तावेजों की तरह बने इसके गली-कूचे-कटरे ऐतिहासिक इमारतों के आसपास फैले किस्से, कहानियां हर पीढ़ी द्वारा दोहराए जाते हैं रचनात्मक स्तर पर जब दिल्ली जैसे ऐतिहासिक शहर कालखंड के नियामक की तरह स्थित हो तो उसके पाठ की बुनत और बनावट की ऐतिहासिकता और सामाजिकता ताने-बाने में गूँथ कर अनोखी हो उठती है।"[9]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में प्राकृतिक परिदृश्य को रेखांकित किया गया है। प्रकृति मानव जीवन की अमूल्य धरोहर है। इससे विलग होकर मानव जीवन की कल्पना असंभव है। राजेन्द्र यादव 'वे देवता नहीं है' में रामविलास शर्मा और अमृतलाल नागर के साथ की गई कन्याकुमारी की यात्रा का जिक्र करते हैं। दक्षिण भारत अपनी प्राकृतिक समृद्धता के लिए जाना जाता है। वहां की प्राकृतिक विविधता लोगों को मोहित करती है। इसके साथ ही वहां की स्थापत्य कला पर्यटकों को आकर्षित करती हैं। संस्मरणकार दक्षिण भारत की प्राकृतिक सुंदरता और स्थापत्य कला की समृद्धि को लेकर बहुत खुश है लेकिन आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव ने प्रकृति को प्रभावित किया है इससे काफी दुःखी भी है। आधुनिकता मानव जीवन को सुलभ तो बनाती है लेकिन हमारी प्राकृतिक संपदा के लिए नुकशानदायक भी हैं। लेखक को कन्याकुमारी का आधुनिकीकरण अपनाना पसन्द नहीं हैं। वे पुरानी कन्याकुमारी की प्राकृतिक सुंदरता को अपने मन-मस्तिष्क में सँजोये हुए हैं, उसका बदला हुआ रूप उनकी भावनाओं को आहत करता है। वे लिखते हैं- "चारों तरफ रेतीला विस्तार, लाल-सफेद धारियों वाला परकोटा और मंदिर- सामने बनैले समुद्र के बीच विवेकानंद-शिला, तेज समुद्री हवाओं में उड़ती रेट, तीनों तरफ फैले सागर की गरज... पंद्रह बरस से मन में बैठी इस 'कन्याकुमारी' को आज के आधुनिक मेकअप वाले पिकनिक स्पॉट में बदले हुए देखना शायद एक भावनात्मक धक्का होगा।"[10] कन्याकुमारी का यह बदलाव देखकर, उन्हें यशपाल की कहानी 'प्यार का मोल' याद आती है। इस कहानी का नायक गांव

का छैला-छबीला रहता है। वह शहर जाकर वहां के रहन-सहन को अपनाता है। जब नायक गांव वापस आता है तो गाँव में रह रही उसकी प्रेमिका को, अपने प्रेमी का यह शहरी रूप पसंद नहीं आता है। वह जिस नायक से प्यार करती थी, उसमें गाँव का भोलापन दिखाई देता था। उसके नायक का वह भोलापन इस शहरी बनावटीपन में ओझल हो गया है। लेखक को यह आधुनिक कन्याकुमारी, उसी शहरी नायक की तरह लगती है जो शहर की आधुनिकता को अपना तो लेता है लेकिन उसके ग्रामीण स्वभाव पर फबता नहीं हैं। कृष्णा सोबती अपने संस्मरण में जयदेव के साथ शिमला की वादियों का अनुभव साझा करती हैं। वे वहाँ की संस्कृति के बदलते स्वरूप को परिलक्षित करती हैं। एक शाम को याद करते हुए समय के साथ बदलते खान-पान और पसन्द के बदलाव पर पैनी दृष्टि डालते हुए वे लिखती हैं- "दुकान, बेकरी-कैमिस्ट-हलवाई। दशकों-दशकों पहले यह सजीली सड़क गोरों का रिक्शा खींचनेवालों की गर्म वर्दियों से चमचमाती थी, वहीँ आज सजे हैं समोसे, जलेबी, गुलाब जामुन। अंगीठियाँ लहक रही हैं भक्ख-भक्ख, कड़ाहिया चढ़ी हैं और तली जा रही हैं जलेबियाँ।"[11]

देवेन्द्र सत्यार्थी को प्रकृति इतनी आकर्षित करती है कि वे अपने संस्मरण में उसे एक नायिका की उपमा देते हैं। वे अपनी पुस्तक 'यादों के काफिले' में लिखते हैं- "प्रकृति भी किसी लोकगीत की हँसती-नाचती तथा सौन्दर्याभीरुचि सम्पन्न छबीली नायिका की तरह हमारे सामने उपस्थित हो जाती है।"[12] देवेन्द्र सत्यार्थी का शांतिनिकेतन से गहरा लगाव था। वे शांतिनिकेतन के ऋतु उत्सवों पर होने वाले नाटकों, संगीत और नृत्य कार्यक्रमों को याद करते हुए वहाँ की प्राकृतिक सुंदरता का वर्णन करते हैं। वे इस संदर्भ में लिखते हैं- "शांतिनिकेतन में कचनार के पेड़ भी खिलते होंगे। पलास भी। अपने-अपने खोपे पर कोई-न-कोई फूल सजाये संथाल युवतियाँ अब भी शांतिनिकेतन के बीच में से गुजरने वाली सड़क पर चलती होंगी ।"[13]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में व्यक्ति और समाज को सिर्फ भारतीय परिप्रेक्ष्य से नहीं बल्कि वैश्विक परिप्रेक्ष्य से देखने की कोशिश की गई है। काशीनाथ सिंह 'आछे दिन पाछे गए' में अपनी एक जापान यात्रा को याद करते हैं। वे उस यात्रा से मिले अनुभव को अपने संस्मरण में रेखांकित करते हैं। जापान की परम्परा और संस्कृति भारत से भिन्न थी। वहां का रहन-सहन, खान-पान, तौर-तरीके, संस्कृति आदि की भिन्नता को लेखक देखता है। वहां की कुछ चीजें उन्हें प्रभावित करती हैं तो कुछ के प्रति वे क्षोभ व्यक्त करते हैं। लेखक वहां पहुँचकर दो विदेशी मित्रों के साथ रहता है उनका नाम आराकि और तकाको है। जापान में लेखक एक आनजान महिला से मिलता है। उस महिला द्वारा काशीनाथ सिंह से एक प्रश्न पूछा गया कि 'जापान कैसा लगा आपको?' इसका उत्तर काशीनाथ सिंह देते हुए कहते हैं कि यहाँ के प्यार और आत्मीयता को देखकर ऐसा लगता है कि जापान इतना आधुनिक होते हुए

भी, मशीनी जीवन का आदि होने पर भी, इंसानी गुण प्यार और आत्मीयता को सहेजे हुए है। यह सुनकर वह जापानी महिला अपने कानों पर हाथ रखकर कहती है- "आप क्षमा करें, जापान को नहीं जानते। यहाँ रहना मुश्किल हो रहा है। लोग एक-दूसरे के दुश्मन होते जा रहे हैं। कोई किसी की नहीं सुनता। न प्यार है, न इंसानियत। रात-दिन भाग-दौड़। न मिलने की फुरसत, न बात करने की। सामने कुछ है, पीठ पीछे कुछ। आदमी क्या था क्या हो रहा है? केवल पैसा, पैसा, पैसा! फिर भी आप कह रहे हैं-चमत्कार।"[14] इस संस्मरण में लेखक ने दो तरह के लोगों का जिक्र किया है- एक वह जो जीवन की तमाम विलासता में मानवीय मूल्यों को भूले हुए हैं वहीँ दूसरे तरह वे लोग जो परिस्थियों के शिकार होकर जीवन की विद्रूपता को झेल रहे हैं। एक तरफ आधुनिकता की चकाचौध में खोये हुए लोग जिनके लिए उनकी जरूरतें ही सब कुछ है वे मानवीय संवेदनाओं का अतिक्रमण करते हुए नजर आते हैं।

(क) धार्मिक आयाम

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में धार्मिक परिदृश्य दिखाई देता है। इसमें धर्म कभी उत्सव के रूप में, तो कभी सांप्रदायिक दंगें या खून-खराबे के रूप में दिखाई देता है। वे धर्म के नाम पर कभी भाई-चारे के सद्भाव से सराबोर एक-दूसरे को गले लगाए नजर आते हैं, तो वहीं दूसरे क्षण एक-दूसरे के खून के प्यासे भी दिखाई देते हैं। इसमें धार्मिक रूढ़िया भी दिखाई देती हैं तो परंपराओं का निर्वाह के साथ आधुनिकता भी। इस तरह के तमाम धार्मिक वैविध्य को संस्मरणकारों ने अपने संस्मरण में समेटा हुआ है।

कान्तिकुमार जैन कृत 'बैकुंठपुर में बचपन' में 'टोनाहिन की झाड़ू' और 'उढ़का की रात' शीर्षक से लिखे गये संस्मरण में समाज में विद्यमान धार्मिक रूढ़ियों को देखा जा सकता है। 'टोनाहिन की झाड़ू' में कांतिकुमार जैन यह बताते हैं कि कैसे समाज में विद्यमान रूढ़ियाँ बालमन को प्रभावित करती है। वह धीरे-धीरे हमारे संस्कार के रूप में परिणति हो जाती है। कांतिकुमार जैन और उनके दोस्त जीतू द्वारा अमावस्या की एक रात में टोनाहिन (जादू, टोना करने वाली) का इंतजार करना, जो सिर पर दीपक रखे बरगद के पेड़ के नीचे आती है। यह सामाजिक रूढ़ियों की तरफ इशारा करती है जिसका प्रभाव इस बालमन पर दिखाई देता है। टोनाहिन के संदर्भ में कान्तिकुमार लिखते हैं- "जब तक दीया जलता रहता है, तब तक वह भूत-प्रेतों के साथ नाचती रहती है। दीपक बुझा कि उसका नाच भी खत्म। उसका नाच देखने का मेरा मन बहुत हुआ, पर जीतू ने मना कर दिया। उसका नाच जो भी देखेगा, उसे भूत पकड़ लेगा और अपना बट्टू बना लेगा- बट्टू यानी भेड़ा। फिर जिंदगी भर भूतों की

सेवा करते रहो, उनके साथ पीपल पर रहो, हवा पियो। अगले दिन मैं डर के मारे स्कूल नहीं गया ।"[15] कान्तिकुमार जैन 'उढ़का की रात' संस्मरण के माध्यम से धार्मिक अंधविश्वास की बानगी प्रस्तुत करते हैं। छत्तीसगढ़ में मातृ शक्ति पीठों की कमी नहीं थी, जिसमें दँतेश्वरी माई, बमलेश्वरी देवी, महमाई आदि का मंदिर था। इन्हीं शक्तिपीठों में नरबलि का प्रावधान था। उढ़का तांत्रिक होते थे, जो छोटे बच्चों की कनिष्ठ अँगुली काटते थे। बैकुंठपुर में नरबलि का स्थान पर कनिष्ठ अँगुली के बलि की प्रथा का प्रारंभ हो गया था। इस संदर्भ में कान्तिकुमार जैन लिखते हैं- "छत्तीसगढ़ की मातृपीठों में बकरा, भैंसा पूजने का विधान था। मातृ मंदिर के सामने एक यूप होता था, उसके बलि पशु बाँध दिया जाता था और तबल से खचाक। बहुत पहले पशुबलि के स्थान पर नरबलि का जो प्रारूप था, माँ की लपलपाती जिह्वा के सम्मुख कनीनिका अंगुलि की भेंट उसी प्रारूप का परिवर्तित रूप था ।"[16]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में सांप्रदायिकता का चित्रण मिलता है। रवीद्र कालिया 'गालिब छूटी शराब' में इलाहाबाद के सांप्रदायिक दंगों के साथ-साथ वहाँ के भाई-चारे का भी चित्रण करते हैं। वे इलाहाबाद के रानी मंडी के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम के साथ भाई-चारा के साथ-साथ धार्मिक कट्टरता को भी दिखाने की कोशिश करते हैं। रवींद्र कालिया रानी मंडी में हिन्दू-मुस्लिम भाई-चारा भी देखें हैं, तो एक-दूसरे के खून के प्यासे जैसी धार्मिक कट्टरता भी। उन्होंने गंगा-जमुनी तहजीब भी देखी है तो पत्थर, बम और कट्टों का आतंक भी। रवीन्द्र कालिया रानी मंडी को ज्वलन बिंदु (इग्नीशन प्वाईन्ट) की संज्ञा देते हैं। वे लिखते हैं- "यह बिंदु किसी भी समय गंगा-जमुनी संस्कृति का उत्कृष्टतम और निकृष्टतम उदाहरण पेश कर सकता है। विजयादशमी पर मुसलमान पौराणिक चौकियों की झांकी देखने के लिए पंक्तिबद्ध खड़ें नजर आएंगें, भगवान राम के रथ का श्रृंगार भी मुसलमान कारीगर ही करेंगे तो हिन्दू परिवार भी उसी निष्ठा से अलम और दुलदुल पर श्रद्धा सुमन चढ़ाते देखे जा सकते हैं। मुहर्रम पर मंदिर के आकार के ताजिये उठेंगे साल में दो बार रानी मंडी की नालियों का रंग सुर्ख हो जाता है- बकरीद पर, जब घर-घर कुर्बानी के बकरों की बलि दी जाती है या फागुन में, जब होली की बहार पर मर्सियाख्यानी, सोजाख्यानी, नौहाख्यानी और मातम के बीच जुलूस उठते हैं।"[17] उनके बीच भाई-चारा होते हुए, कभी-कभी स्थितियां ऐसी बनती या बनायीं जाती थीं कि दंगें का भी सामना करना पड़ता था। रानी मंडी में देखते ही देखते भाई-चारा का प्रेम कब खून का प्यासा हो जाता, इस तनावपूर्ण स्थिति का पता ही नहीं चलता। रवींद्र कालिया जब इलाहाबाद के रानी मंडी में रहते थे तो उस समय कभी-कभी हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो जाते थे। उस दंगें के कारण पूरे शहर को कर्फ्यू का सामना करना पड़ता। इलाहाबाद में जब भी कर्फ्यू लगता तो वह लम्बे समय के लिए लगता। रवीन्द्र कालिया रानी मंडी के साम्प्रदायिक वातावरण को देखें ही नहीं, बल्कि 30 साल तक वहां की बदलती सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों को जिया भी है। वे लिखते

हैं- “रानी मंडी में तमाम असंगतियों और अंतर्विरोधों के बीच गंगा-जमुनी संस्कृति विकसित और संकुचित होती रहती है। एक ओर हर-हर महादेव का सिंहनाद और दूसरी तरह अल्लाह ओ अकबर का गर्जन। एक ओर स्लीवलेस ब्लाउज और दूसरी तरफ बुर्के ही बुर्के।”[18]

राजेन्द्र यादव अपने संस्मरण में नजीर अकबराबादी के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हैं। उनका सहज और साधारण व्यक्तित्व लेखक को प्रभावित करता है। वे नजीर अकबराबादी को एक जनकवि के रूप में देखते हैं। वह नजीर अकबराबादी पर बात करते हुए उनकी शायरी की तुलना कभी तुलसीदास के 'लोक' से करते हैं तो कभी कबीर के अंदाजे-बयां से। उनकी नज्मों का केंद्र बिंदु समाज है। नजीर के यहाँ तुलसीदास का लोक तो है लेकिन उस लोक की स्थापना करने वाले पुरुषोत्तम राम नहीं हैं। वहीं कबीर की तरह समाज को देखने का नज़रिया तो है लेकिन निर्गुण-निराकार ईश्वर के रूप की कल्पना नहीं। नजीर अकबराबादी की रचनाओं में मंदिर, मठ, निर्गुण-सगुन, अल्लाह-अकबर आदि का कोई स्थान नहीं है। वह भगवान, ईश्वर, अल्लाह को संबोधित करते हुए कोई गायन नहीं करते हैं। राजेंद्र यादव कहते हैं- "वे उत्सव बनकर समाज में झांकियां पेश नहीं करते बल्कि समाज की हर गतिविधि को उत्सव की तरह गाते हैं- उस अर्थ में वे व्यक्तिगत दृष्टि के कवि हैं।"[19] नजीर अकबराबादी किसी धर्म अथवा मजहब में उलझना नहीं चाहते थे। उनके लिए धर्म, जाति, मजहब आदि मायने नहीं रखता। वे मनुष्यता को सर्वोपरी मानते थे। नजीर अकबराबादी अपने को धर्मनिरपेक्ष मानते हैं। राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "नजीर के यहाँ धर्म-निरपेक्ष शब्द छोटा पड़ जाता है, वहां गणेश, भैरों और दुर्गा की वन्दनाएँ ही नहीं, हर देवी-देवता की तारीफ में शायरी है। मगर नजीर कृष्ण लीलाओं का दीवाना है। होली का मस्ताना है।"[20] संस्मरणकार उन्हें जनता का कवि मानता है। इसका कारण यह है कि वह लोगों के बीच और उनके दुखों से जुड़े रहें। उनका जीवन आम-जन की तरह साधारण था। उनके लिए व्यक्ति और समाज की समस्याएं अहम हैं जिसके लिए वह जागरूक दिखाई देते हैं। राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "न उसे भाषा और व्याकरण की चिंता है, न कथ्य और विषय की, न धार्मिक-मान्यताएं उसे रोकती हैं, न शिष्ट समाज के आदाब-अल्काब...वह तो मस्ती में सिर्फ गाता है, जो देखता है उसे शायरी बना देता है। जाहिर है इतना भदेस, रोजमर्रापन (मंडेन) कविता के पारखियों को रास नहीं आता। वह उन सबके लिए ‘कुजात’ और अनपहचाना कवि है...उधर उन्होंने हबीब तनवीर का ‘आगरा-बाजार’ नाटक देखा है वे जानते हैं कि वह सिर्फ जनता का कवि है।"[21]

इस प्रकार देखा जाए तो समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में ग्रामीण संस्कृति, शहरी संस्कृति, सांप्रदायिकता, रूढ़ियाँ, परंपरा और प्राकृतिक परिदृश्य आदि को अपने में समेटे हुए हैं। इसमें संस्कृति और धर्म का वैविध्य दिखाई देता है जो संस्मरण साहित्य की को दर्शाता है।

स्थान विशेष केंद्रित संस्मरण : व्यक्ति, समाज, परिवेश और अन्य आयाम

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में यह देखने को मिलता है कि संस्मरणकार स्थान विशेष को आधार बनाकर संस्मरण लिखा है। उस संस्मरण के केंद्र में संस्मरणकार के वे अनुभव होते हैं जिस शहर में वह रहता है। उसके संस्मरण में शहर की भूमिका एक पृष्ठभूमि/धरातल का काम करती है। स्थानीयता को आधार बनाकर अनेक संस्मरण लिखे गए हैं। इन संस्मरणों में कान्तिकुमार जैन कृत 'बैकुंठपुर में बचपन', मनोहर श्याम जोशी कृत 'लखनऊ मेरा लखनऊ', ममता कालिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार' आदि हैं। काशीनाथ सिंह कृत 'आछे दिन पाछे गए' में संकलित जापान से जुड़ी स्मृतियाँ है। किसी स्थान का मानवीकरण कर, उसपर संस्मरण लिखा नहीं जा सकता। इन संस्मरणों में स्थान का मानवीकरण रूप नहीं है बल्कि ये शहर संस्मरण में पृष्ठभूमि का कार्य करते हैं जिस पर लेखक अपनी स्मृतियों की बुनावट करता है। काशीनाथ सिंह अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि काशी से मुझे बहुत लगाव था। सिर्फ काशी (बनारस) पर मैं संस्मरण लिखना चाहता था और लिखने की कोशिश भी की। जिसका परिणाम 'काशी का अस्सी' है जो संस्मरण न होकर संस्मरणात्मक उपन्यास बन गया। वे अपने उपन्यास 'काशी का अस्सी' को शुरू में संस्मरण का रूप देना चाहते थे, लेकिन तमाम संस्मरणात्मक चुनौतियों ने उसे उपन्यास की तरफ मोड़ दिया। 'स्थान विशेष' को लेकर लेखकीय अनुभव ने उन्हें संस्मरण की स्थानीय चुनौतियों का भान करा दिया, फिर भी बनारस उनके उपन्यासों में नहीं, बल्कि संस्मरणों में भी रचा-बसा है। इसके साथ जब भी किसी स्थान विशेष पर संस्मरण लिखा जायेगा वहां से जुड़ें अपने अन्तरंग सम्बन्धों को संस्मरणकार नकार नहीं सकेगाऔर न ही अपने अनुभवों को। यह उसके लिए चुनौतियों से भरा है कि वह किसे चुने और किसे छोड़े, इसलिए इन संस्मरणों में देखा गया है कि स्थानीयता मानवीकरण रूप में नहीं बल्कि पृष्ठभूमि के रूप में दिखाई देती हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में जिस प्रकार संस्मरणकार का किसी स्मृत व्यक्ति से रागात्मक सम्बन्ध होने पर, वह उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करता है उसी तरह स्थान विशेष पर लिखे गए संस्मरणों में लेखक उस शहर से जुड़ी हुई रागात्मक स्मृतियों का रेखांकन करता है। इस रेखांकन में सिर्फ व्यक्ति ही नहीं बल्कि समाज, परिवेश और संस्कार भी उद्धृत होते हैं। संस्मरणकार उस शहर से जुड़े व्यक्तियों (जिससे उसका अन्तरंग सम्बन्ध हो) और प्रसंगों को ही उद्घाटित करता है जो उसकी स्मृतियों में बनी रहती है। स्थान विशेष केंद्रित संस्मरणों की यह विशेषता होती है कि उसकी स्मृतियाँ उसी शहर के इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं, जिस शहर से उसका गहरा जुड़ाव होता है। संस्मरणकार उस शहर

में बिताएं अपने तमाम अनुभवों को साझा करता है। वह उस शहर के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि मूल्यों की पड़ताल करता है। उसके व्यक्तित्व के विकास में उस शहर की क्या भूमिका रही, इन चीजों को ध्यान में रखते हुए उसकी उपयोगिता और खूबियों को रेखांकित करता है। किसी व्यक्ति के विकास में स्थान या जगह के परिवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, वह व्यक्ति के व्यक्तित्व पर अपनी छाप छोड़ता है।

स्थान विशेष केंद्रित संस्मरणों में कान्तिकुमार जैन कृत 'बैकुंठपुर में बचपन' है जिसमें लेखक छत्तीसगढ़ के कोरिया जिले से जुड़े अनुभव को साझा करता है। मनोहर श्याम जोशी 'लखनऊ मेरा लखनऊ' में लखनऊ से जुड़े प्रसंगों का चित्रण किया गया है, वहाँ के वैविध्यपूर्ण जीवन पर दृष्टि डाली गई है। ममता कलिया कृत 'कितने शहरों में कितनी बार', जैसा की शीर्षक से स्पष्ट है कि उनके अनुभव किसी एक शहर से जुड़े नहीं बल्कि विभिन्न शहरों से जुड़े हैं।

कांतिकुमार जैन ने अपने संस्मरण लेखन के माध्यम से साहित्य में पहचान बनाई है। 'बैकुंठपुर में बचपन' छत्तीसगढ़ राज्य के कोरिया जिले के बैकुंठपुर शहर को केंद्र में रखकर लिखा गया है। कांतिकुमार जैन का मानना है कि इस संस्मरण में उनके जीवन का बहुत थोड़ा हिस्सा चित्रित हुआ है। इस इसमें 'मैं' महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि समय और स्थान महत्त्वपूर्ण है। वे अपने संस्मरणों के बारे में लिखते हैं- "मैं अपने संस्मरणों में केवल व्यक्ति को ही केंद्र नहीं बनाता, व्यक्ति के बहाने समूचे समाज, परिवेश एवं संस्कारों को भी खंगालता चलता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि संस्मरणकार को किसी का कांवड़िया या धोबी नहीं होना चाहिए। जो संस्मरण लेखक अपने संस्मरणों से निरमा सुपर का काम लेना चाहते हैं, वे अपने संस्मृत को धुला-निथरा और इस्तरी किया दिखाते हैं, पर जो समाज के अंतर्विरोधों को समझना चाहते हैं, उसके 'डिजोनेंस' की तह तक पहुंचना चाहते हैं, वे संस्मृत को केवल ऐसी खूंटी मानते हैं, जिस पर सारा समाज और समाज में प्रचलित मूल्य टाँगे जा सकें।"[22] यानी कांतिकुमार जैन के लिए स्मृत साध्य नहीं बल्कि साधन है। उसके माध्यम से सामाजिक संरचना की जटिलता, अन्तर्विरोध और समसामयिक राजनीति के अन्तर्विरोध को दर्शाना है। कांतिकुमार जैन ने अपने संस्मरणों के माध्यम से यही किया है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्थानीयता का प्रभाव संस्मरणकार के जीवन पर अमिट छाप छोड़ता है। उस स्थान से जुड़े तमाम अनुभव व्यक्ति में समाहित होता है जिसका प्रभाव आजीवन उसके व्यक्तित्व पर दिखाई देता है। कान्तिकुमार जैन पर बैकुंठपुर का, मनोहर श्याम जोशी के जीवन में लखनऊ तथा ममता कालिया विभिन्न शहरों के अनुभव को

अपने व्यक्तित्व मे समेटे हुए हैं। 'बैकुंठपुर में बचपन' में कान्तिकुमार जैन 7 साल से लेकर 16 साल तक बैकुंठपुर में बिताए हुए हैं जो उनके व्यक्तित्व पर अपनी अमिट छाप छोड़ता है। बैकुंठपुर उनकी स्मृतियों में नहीं, बल्कि व्यक्तित्व में समाहित है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं- "बैकुंठपुर मेरी रगों में आज भी प्रवाहित है। यह न रोमांटिक उच्छ्वास है, न कविता जैसा कुछ।... बैकुंठपुर पिछले पैंसठ-सत्तर वर्षों से निरंतर मेरे साथ है, वह जीवन के अंतिम क्षण तक मेरे साथ रहा आए, यही मेरी कामना है"[23]

ममता कालिया 'कितने शहरों में कितनी बार' आत्मकथात्मक संस्मरण है। इसमें उन्होंने अपने जीवन से जुड़ी अनेक स्मृतियों को रेखांकित किया है। ममता कालिया के पिता नौकरी पेशा व्यक्ति थे जिनका ट्रांसफर अलग-अलग शहरों में होता रहता था। चूँकि लेखिका अपने माता-पिता के साथ रहती थी इसलिए शहर-दर-शहर का अनुभव उनके जीवन की स्मृतियों का एक भाग बन गया। वे कहती हैं- "जब भी कोई मुझसे पूछता है तुम किस शहर की हो, मैं बड़े चक्कर में पड़ जाती हूँ। क्या कहूँ ! कहाँ की बताऊ अपने को। क्या लोगों को नहीं मालूम कि सरकारी नौकरी करने वाले बाप के बच्चे किसी एक जगह के नहीं होते। वे डेढ़-दो साल के लिए शहर में डेरा डालते हैं। तबादले का कागज़ आते ही वे ट्रक में सामान डाल अगले अनजान शहर की तरह निकल पड़ते हैं। दस दिन में उनके स्कूल बदल जाते हैं, बीस दिन में बोली बानी। सरकारी बंजारे।"[24] मनोहर श्याम जोशी लखनऊ शहर को अपने संस्मरण का आधार बनाये हैं। इस शहर से जुड़ी हुई तमाम स्मृतियाँ लेखक के पास है जो उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक रही है। इस संस्मरण में लेखक बताता है कि लखनऊ शहर ने लेखक को सिर्फ दिया। उन्हें लखनऊ ने बनाया ही नहीं बल्कि तरासा भी है।

स्थान विशेष पर आधारित संस्मरणों में जीवन का वैविध्य दिखाई देता है। इसमें व्यक्ति के जीवन का ही नहीं, बल्कि स्थान विशेष का भी वैविध्य दिखाई देता है। वहाँ के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पहलू भी दिखाई देते हैं। उस जगह से जुड़े लोगों के रहन-सहन, खान-पान, तीज-त्यौहार आदि उभरकर आते हैं। निर्मला जैन कृत 'शहर-दर-शहर' में दिल्ली शहर से जीवन के अनेक पहलू उभरकर आते हैं। निर्मला जैन इस पुस्तक के माध्यम से दिल्ली में समाहित अनेक जाति-धर्म-समुदाय की विविधताओं को रेखांकित करती हैं। उनकी स्मृतियों में दिल्ली शहर का वैविध्यपूर्ण जीवन और संस्कृतियों का रंग समाहित है जिसकी तमाम खोहों में, वे धमाचौकड़ी करते हुए नजर आती हैं। वे कहती हैं कि दिल्ली का अपना कुछ भी नहीं है। वह विभिन्न जगहों से आकर बसे हुए लोगों के भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का मेल स्थल है। इस पुस्तक में शहर के साथ-साथ निर्मला जैन का व्यक्ति रूप उभरकर आता है यही कारण है कि कृष्णा सोबती जब निर्मला जैन पर संस्मरण लिखती हैं तो वह अपने अनुभवों के आधार पर तथा 'शहर-दर-शहर' में उभर रहे व्यक्तित्व को पहचान लेती हैं। कृष्णा सोबती कहती हैं- "शहर-दर-शहर' की दिल्ली-गाथा में आत्मकथ्य, वृत्तान्त, विवरण,

आख्यान सब एक-दूसरे में घुले-मिले हैं। मान लेना होगा कि राजधानी के परिदृश्य को खुली आँख से पढ़ने की तालीम निर्मला साहिब के पास सुरक्षित है।”[25]

राजेश जोशी कृत 'किस्सा कोताह' के केंद्र में मध्यप्रदेश के कुछ शहर हैं। नरसिंहगढ़ उसमें से एक है। लेखक का बचपन भी नरसिंहगढ़ में बीता है। नरसिंहगढ़ में लेखक का ननिहाल है। नरसिंहगढ़ में लेखक के जीवन से जुड़ी बहुत सी स्मृतियाँ हैं, जो वहां बिताये गए समय की साक्षी हैं। हर शहर और नगर का अपना चरित्र होता है। नरसिंहगढ़ का भी है। सामंती ज़माने की बात है। महंगाई से त्रस्त जनता ने अपने राजा के विरोध का एक अनूठा तरीका निकाला। पहले तीज-त्यौहार पर देशी घी में मिठाइयाँ और पुये-पकवान बनते थे। लेकिन जब से महंगाई हुई है लोगों ने डालडा में बनाना शुरू कर दिया है। अब वह खुलकर राजा का विरोध भी नहीं कर सकते। तो उन्होंने विरोध का एक ऐसा तरीका अपनाया जो इतिहास और किस्सा बन गया। राजा हर दशहरे को रावण मारने बाज़ार जाते थे, जहाँ मेला लगता था। जब वह दशहरे का रावण मारने के लिए बाज़ार में निकले और देखा, “नरसिंहगढ़ के लोगों ने सारे तोरण द्वारों पर डालडा के डिब्बे लटका दिए थे। डालडा नकली घी माना जाता था। मध्यवर्गीय परिवारों में वार-त्यौहार पर छिपा-छिपा कर डालडा लाया जाता था। बांटने के लिए बनाई जाने वाली गुझियाँ उसी से बनाई जाती थी। जब ज्यादा लोगों को जिमाना होता तो पूरियां ज्यादा डालडा में थोड़ा शुद्ध घी मिलाकर तली जातीं। तोरणद्वार पर डालडा के डिब्बे लटकाकर लिख दिया गया था डालडा सरकार। भानुप्रताप बहुत गुस्सा हुए और बिना रावण मारे वापस लौट गए। लोगों को मजा आ गया कि महाराज को भगा दिया।”[26] जनता द्वारा महंगाई और सत्ता विरोध का यह नायब किस्सा नरसिंहगढ़ की स्मृति से जुड़ गया है।

स्थान विशेष पर आधारित संस्मरणों में परिवेश की भूमिका अहम होती है। किसी शहर का परिवेश, वहाँ के व्यक्तियों के व्यक्तित्व को गहराई से प्रभावित करता है। उसपर अपनी गहरी छाप छोड़ता है। उसकी भाषा, बोली, रहन-सहन, खान-पान आदि तक प्रभावित होते हैं। कान्तिकुमार जैन पर बैकुंठपुर, मनोहर श्याम जोशी पर लखनऊ, निर्मला जैन पर दिल्ली, ममता कालिया पर मुंबई, दिल्ली, इलाहाबाद, नागपुर आदि का प्रभाव दिखाई देता है। ममता कालिया 'कितने शहरों में कितनी बार' में लिखती हैं- “जितने शहरों पर लिखा उतने से भी ज्यादा अभी मेरे अन्दर कसमसा रहे है, अपनी हरी-पीली-लाल बत्तियों के साथ जल बुझ रहे हैं। कभी लखनऊ का गौतामपल्ली और हजरतगंज यादों में कौंध जाता है, कभी काठगोदाम का डाकबंगला। यकायक ध्यान आ जाता है भिलाई का साफ़-सुथरा परिसर कि उसके ऊपर सुपर इम्पोज हो जाती हैं भोपाल की ऊँची-नीची

सड़कें।"[27] ममता कालिया के पिता का बार-बार तबादला होना, नए शहरों में जाना, पुराने लोगों को छोड़ना, लेखिका के लिए दुखदायी होता था, लेकिन दूसरे शहर में जाकर नई चीजों को सीखना रोमांचक होता था। नये शहरों में जाकर, नई चीजों के सीखने के विभिन्न रास्ते भी खुलते थे। एक शहर से जाकर दूसरे शहर की भाषा-बोली, परिवेश, संस्कृति, व्यक्ति आदि सब बदल जाते थे। नए शहर के साथ नए सम्बन्ध भी बनते थे। यहीं कारण हैं कि उनके संस्मरणों में अंतरंग संबंधों की संख्या काफी है जिसपर उन्होंने खुलकर लिखा है। विभिन्न शहरों के अनुभव ने लेखिका की स्मृतियों को वैविध्यपूर्ण बनाया है। वे इस संदर्भ में लिखती हैं- "शहर बदलने पर एक अच्छी बात यह होती है कि हम वही होते हुए भी नए हो जाते हैं। हमारे लत्ते, लतीफे और लन्त रानियां नई हो जाती हैं। हम ऐसे हो जाते जैसे दीये में नई बत्ती डाल दी गयी हो या तेल टपका दिया हो। उसी घिसे-पिटे समस्याग्रस्त जीवन का मुकाबला हम नए नगर में नए सिरे से करते हैं। हमारी उत्कंठा और विस्मय हमें वापस मिल जाते हैं। हम अपने जीवन के बल्ब को कपड़े से पोंछकर जैसे वापस लगाते हैं तो वह थोड़ी और तेज रोशनी देने लगता हैं। नए शहर के पेड़ कुछ ज्यादा हरे, सड़कें कुछ ज्यादा चौड़ी और गालियाँ कुछ ज्यादा दिलचस्प नजर आती हैं। शहर की भाषा यदि अलग हुई तो हर एक शब्द नई साक्षरता का सुख देता चलता है। उच्चारण अलग हो तो भी नए सिरे से समझना पड़ता है।"[28] ममता कालिया नागपुर शहर के लोगों की शास्त्रीय संगीत के प्रति रुचि और गंभीरता को लेकर अनेक स्मृतियों का चित्र खींचती हैं। वहां के पटवर्धन पार्क में एक शाम संगीत सभा में लता मंगेशकर की सिरकत को लेकर अपने अनुभव को साझा करती हैं।

मनोहर श्याम जोशी के संस्मरण 'लखनऊ मेरा लखनऊ' में लखनऊ शहर के हिन्दू-मुसलमान के रहन-सहन, धार्मिक पहचान को लेकर, वहाँ की संस्कृति की तरफ हमारा ध्यान ले जाने की कोशिश करते हैं। वे लिखते हैं- "देश में चोटियों और दाढ़ियों वालों की भरमार थी, लेकिन किसी चोटीप्रसाद और दढ़मुल्ले को साहित्य में स्थान मिलने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। घरेलू और पारिवारिक परिवेश में रचनाकार जिस परम्परागत धर्म, संस्कृति और कर्मकांड से जुड़ा हुआ रहता था उसकी वह अपनी रचनाओं में छाया भी नहीं पड़ने देना चाहता था। सार्वजानिक जीवन में वह यह मानने को भी तैयार नहीं होता था कि मेरे घर में वे सब चीजें होती हैं और मैं उनसे जुड़ा रहता हूँ। उनका भाव कुछ ऐसा रहता था कि घर में वह सब भी होता है तो औरतों की जिद से।"[29]

ममता कालिया दिल्ली के साहित्यिक परिवेश को उद्धृत करते हुए लिखती हैं- "उस समय के दिल्ली के प्रमुख साहित्यकार, कलाकार बड़े सहज भाव से कूचा पातीराम की उस संकरी गली से हमारे यहाँ आये। इंद्र विद्यावाचस्पति, प्रभाकर माचवे, रेवतीरमण शर्मा,

विजेंद्र स्नातक, अमरनाथ सरस, विष्णु प्रभाकर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार और अन्य अनेक कुछ ही देर बाद जैनेन्द्र आ पहुंचे।...जैनेन्द्र ने अपनी कविता का पाठ किया उस पर परिचर्चा रही।...जैनेन्द्र की अस्फुट आवाज, दार्शनिक अंदाज और दिव्य रहस्यवाद का जादू कई दिनों तक मेरे मन पर तारी रहा।"[30] मनोहर श्याम जोशी लखनऊ में साहित्यिक गतिविधियों के प्रति तत्परता और लगाव को देखकर, उसे रहने का उचित स्थान मानते हैं। उस दौर में अपने से जुड़े लिखकों की चर्चा करते हुए लिखते हैं- "लेखक बनने के लिए लखनऊ एक आदर्श नगर था। यशपाल, भगवती बाबू और नागर जी ये तीन-तीन उपन्यासकार वहां रहा करते थे। तीनों का जोशी जी से अच्छा परिचय हो सका।"[31]

स्थानीयता को आधार बनाकर लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का रेखांकन मिलता है। संस्मरणकार उन स्मृत व्यक्तियों के व्यक्तित्व का रेखांकन करता है जिससे उसकी घनिष्ठता होती है। ममता कालिया अपने संस्मरण में उन स्मृत व्यक्तियों को याद करती हैं जिनके व्यक्तित्व से वह बखूबी परिचित हैं। उन स्मृत व्यक्तियों का प्रभावशाली व्यक्तित्व लेखिका की स्मृतियों में कौंधता रहता है। लेखिका का विभिन्न शहरों से अनुभव है। वह उन शहरों में मिले उन व्यक्तियों को याद करती है जिससे उनका अन्तरंग सम्बन्ध है। उनके पिता का तबादला जहाँ-जहाँ होता था वहां से जुड़े साहित्यकारों को लेखिका अपने संस्मरण में शामिल करती हैं। वह दिल्ली, मथुरा, पूना, इंदौर, मुम्बई, इलाहाबाद, कलकत्ता आदि जगहों के अनुभव को लिखती हैं। उन्होंने अपने संस्मरण में अलग-अलग व्यक्तियों से हुई मुलाकातों और उनके अनुभवों को शामिल किया है। इन स्मृत व्यक्तित्वों का लेखिका के घर से पारिवारिक सम्बन्ध था। इन्होंने जैनेन्द्र, अश्क, मुक्तिबोध, चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, कौशल्या अश्क, नेमिचंद्रजैन, भारत भूषन अग्रवाल, श्री लाल शुक्ल, कुर्रतुल-एन-हैदर, शैलेश मटियानी, शिवानी, अमरकांत, मार्कण्डेय, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, चित्रा मुद्गल, विष्णुकांत शास्त्री, गुलजार आदि पर संस्मरण लिखा है। लेखिका इन स्मृतियों में किसी के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं तो किसी के साहित्य से। उनसे इनका अन्तरंग या पारिवारिक सम्बन्ध हैं। मुक्तिबोध का ममता कालिया के परिवार से पुराना संबंध था। उनसे लेखिका की पहली मुलाकात नागपुर में हुई थी। मुक्तिबोध की शारीरिक हुलिया का चित्रण लेखिका इस प्रकार करती हैं- "अरे बाप रे! इतना लम्बा पंजा था। उनके गालों की हड्डियाँ उभरी हुई थीं, आँखे फटी-फटी। वे बीड़ी पीते थे और मुट्ठी बाँधकर कश लगाते।...रात में अपनी गहरी भारी आवाज में उन्होंने अपनी कवितायेँ सुनायी थीं।"[32] कमलेश्वर रेडियों में काम करते थे। उनका उपन्यास 'डाक बंगला' और 'एक सड़क सत्तावन गलियां' आकाशवाणी से प्रसारित हुआ जो हजारों पाठकों और श्रोताओं की पसंद बन चुका था। उनका साहित्यिक और खुशमिजाज व्यक्तित्व लेखिका को प्रभावित करता था। उनके खुशमिजाज व्यक्तित्व को लेकर कहती हैं- "वे आवाज की दुनिया के जादूगर थे। स्टूडियों में वे लोगों से घिरे खड़े होते,

ठहाके लगाते होते, चुटकियाँ लेते होते। आलम यह था कि बाकी आकशवाणी भवन में कर्मचारी और अधिकारी लाल फीते में बंधे कसमसाते रहते, कमलेश्वर सरकारी तंत्र की सारी मनहूसियत को धता बताते हुए दनदनाते रहते।"[33] एक बार लेखिका के घर पर साहित्यिक परिचर्चा हो रही थी जिसमें शामिल लेखकों द्वारा जैनेन्द्र की कहानियों पर दार्शनिकता, अनिश्चयवाद, क्षणवाद आदि तमाम आरोप लगाया जा रहा था। जैनेन्द्र उन आरोपों का प्रतिवाद बिना आक्रोश से दिए, गंभीरता से सुनते रहे। उनके शालीन व्यक्तित्व का रेखांकन करते हुए ममता कालिया लिखती हैं- "जिस गंभीरता और शालीनता से जैनेन्द्र जी अपने ऊपर लगे आरोपों का प्रतिकार करते, वह स्वयं में साहित्य विवाद का एक अनुपम उदाहरण था। वे हर आरोप का दार्शनिक उत्तर दे डालते जो प्रत्युत्तर के स्थान पर प्रतिप्रश्न होता। जो उनके चेहरे पर क्रोध दिखाई देता न आवेश।"[34]

मनोहर श्याम जोशी द्वारा लिखा गया संस्मरण 'लखनऊ मेरा लखनऊ' में लेखक अपने जीवन की घटनाओं, प्रसंगों, सम्बन्धों आदि का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। लेखक लखनऊ शहर से जुड़ी हुई किशोरावस्था की तमाम गतिविधियों का विश्लेषण करता है। एक व्यक्ति की किशोरावस्था में क्या मनोदशाएँ होती हैं। वह किस तरह उस अवस्था की तमाम मनोग्रन्थियों का शिकार होता है और उसे सुलझाता है? उसे किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है? जैसे तमाम प्रश्नों का समाधान यह संस्मरण करता ही है, इसके साथ ही किशोरावस्था व्यक्ति के विकास का चरम रूप होती है उस विकास प्रक्रिया में लेखक के जीवन पर किन व्यक्तियों का प्रभाव पड़ा, उन व्यक्तित्वों को इस संस्मरण में रेखांकित किया गया है। लेखक तात्कालिक समय में लिख रहे लेखकों की चर्चा करते हुए (जिनसे उनका सबाका था) अपने लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी जीवन, किशोरावस्था के प्रेम सम्बन्धों और नारी आशक्ति, प्रेरणादायक व्यक्तियों तथा उस समय के राजनीतिक गतिविधियों को बहुत ही सहजता से रखने की कोशिश करता है।

रवींद्र कालिया कृत 'गालिब छूटी शराब' में लेखक ने इलाहाबाद का चित्र उभारा है। हिंदी संस्मरणों में स्थानीयता की विशेषता को दर्शाया गया है। यह विशेषता उस स्थान की जानकारी ही नहीं देती बल्कि वहां के समय-समाज-परिवेश से परिचय कराती है। महादेवी वर्मा, निराला, पन्त के समय में इलाहाबाद साहित्य का केंद्र था। इनके साथ तमाम साहित्यकार अपनी प्रतिभा से साहित्य को लाभान्वित कर रहे थे। लेखक इस संदर्भ में कहता है- "इलाहाबाद का आक्रामक तेवर सभी को झेलना पड़ता है-आप जवाहरलाल नेहरू या इंदिरा गाँधी ही क्यों न हो। अपने को सुमित्रानंदन पन्त या उपेन्द्रनाथ अश्क ही क्यों न समझते हों। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित नरेश मेहता इलाहाबाद की इन्हीं सड़कों पर अपनी आधा दर्जन अप्रकाशित पुस्तकें लिए दर-दर भटका करते थे। यह इलाहाबाद में ही सम्भव था कि कोई विजयदेव नारायण साही भरी महफ़िल में पन्त जी की उपस्थिति में

ताल ठोंककर घोषणा कर दे कि उसने पंतजी का 'लोकायतन' न तो पढ़ा है और न पढ़ेगा। साही जैसे 'चैक पोस्ट' इलाहाबाद के हर प्रवेश-द्वार पर स्थापित हैं।"[35] लेखक इलाहाबाद आने से पहले मुम्बई और दिल्ली में रह चुका था। वह हर शहर में किसी न किसी चुनौतियों का सामना कर चुका था लेकिन इलाहाबाद उन्हें इन तमाम शहरों से अलग अनुभव देता है। इलाहाबाद की एक अलग रवानगी और तेवर है, यहाँ जीवन सहज-सरल भी है तो चुनौतिपूर्ण भी। उत्थान भी है तो पतन भी। रवींद्र कालिया इस शहर को लेकर अपने अनुभव बताते हैं- "इलाहाबाद अपेक्षाकृत एक कठिन और बददिमाग शहर हैं। यहाँ जड़ें ज़माना बहुत मुश्किल काम है, लेखक के लिए ही नहीं, प्रकाशक के लिए भी। पत्र-पत्रिकाओं के लिए तो और भी चुनौतीपूर्ण। जिस लेखक, प्रकाशक, वकील, राजनेता और पत्र-पत्रिका को इलाहाबाद ने स्वीकार कर लिया, उसे पूरे देश की स्वीकृति मिल जाती है।"[36]

राजेश जोशी कृत 'किस्सा कोताह' किश्तों में लिखा गया है। इन किश्तों की संख्या कुल छः है। हर एक किश्त एक दूसरे से जुड़ते हुए भी भिन्न है। पहली किश्त में लेखक के बचपन और नरसिंहगढ़ की स्मृतियाँ निबद्ध हैं। दूसरी किश्त में भोपाल शहर के किस्से-कहानियाँ केंद्र में हैं। इसमें भोपाल के 'भोपाल' बनने की रोचक कहानियां हैं। भोपाल शहर पर लेखक का अतिरिक्त जोर रहा है क्योंकि लेखक के जीवन में भोपाल की बड़ी भूमिका रही है। राजेश जोशी को राजेश जोशी इसी शहर ने बनाया है। इस किश्त में किस्सा कब कहानी में बदल जाता है और कहानी कब यथार्थ में, पता ही नहीं चलता ! हर शहर की अपनी एक अलग पहचान होती है। उसकी कुछ विशेषताएं होती हैं जो उसे अन्य शहरों से अलग करती हैं। भोपाल भी एक ऐसा ही शहर है। भोपाल की पहचान के बारे में वे बताते हैं- "भोपाल की चार चीजें मशहूर थीं - ज़र्दा, गर्दा, पर्दा और नामर्दा। भोपाल में मोहल्लों के नाम दिनों के नाम पर थे। इतवार, सोमवार, मंगलवारा, बुधवारा। गुरुवारा की जगह जुमेराती था। शुक्रवारा और शनिवारा नहीं था। चारों दिशाओं में छः दरवाजे थे।"[37] यह प्रसंग पढ़ते हुए किसी को काशीनाथ सिंह के संस्मरण का बनारस याद आ जाये तो कोई आश्चर्य नहीं ! बनारस भी अपने तरह का अलग शहर है, मस्त, अल्हड़, अपने में रमा हुआ।

आर्थिक आयाम

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में व्यक्ति का व्यक्तित्व ही उसके अहम पक्ष नहीं होता है बल्कि उसके जीवन की स्थितियों भी बहुत मायने रखती हैं। यह कहना गलत न होगा कि इसका प्रभाव उसके जीवन पर इतना है कि उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध होती हैं। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियों के साथ-साथ व्यक्तित्व निर्माण में आर्थिक स्थिति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसका जुड़ाव व्यक्ति के जीवन गहरा होता है इसलिए इसके बिना व्यक्ति का मूल्यांकन अधूरा होगा। संस्मरण साहित्य में अभिव्यक्त व्यक्ति की स्थिति के साथ उसकी आर्थिक स्थिति भी उभरकर आती है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में सिर्फ स्मृत व्यक्ति के आर्थिक स्थिति का रेखांकन ही नहीं मिलता है बल्कि उसके साथ-साथ संस्मरणकार और अन्य व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति पर दृष्टि डाली गई है। अगर हम स्मृत व्यक्तियों की बात करें तो नामवर सिंह, हरिशंकर परसाई, रघुवीर सहाय आदि के जीवन का अभाव उनके मनोबल को तोड़ता नहीं, बल्कि दुगुनी शक्ति के साथ वर्तमान परिस्थिति से लड़ने का साहस देता है। संस्मरणकारों में काशीनाथ सिंह, कान्तिकुमार जैन, रवींद्र कालिया, मनोहर श्याम जोशी, विश्वनाथ त्रिपाठी आदि को इस स्थिति का सामना करना पड़ता है। इनके द्वारा लिखे गए संस्मरणों में एक चीज दिखाई देती है कि व्यक्ति के जीवन की आर्थिक समस्याएं कैसी भी हो लेकिन वह उन्हें कुछ समय के लिए प्रभावित करती हैं, व्यक्ति उससे लड़ता-भिड़ाता बाहर निकल जाता है।

मनोहर श्याम जोशी कृत 'रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण' में रघुवीर सहाय के साथ-साथ मनोहर श्याम जोशी के जीवन की आर्थिक समस्याओं का रेखांकन देखने को मिलता है। इन्होंने अपनी इस आर्थिक समस्या का समाधान एक जैसा ही निकाला, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में लेख या कहानी लिखकर। इनके जीवन की आर्थिक समस्या, इन्हें लेखन की तरफ झुकाती है। जीवन की परिस्थितियाँ इनके मनोबल को तोड़ती नहीं है बल्कि इन्हें एक अच्छे लेखक के मुकाम पर पहुंचाती है। यह अपनी विपरीत परिस्थियों में तपते तो है, लेकिन नष्ट नहीं होते, बल्कि नया आकार ग्रहण करते हैं। रघुवीर सहाय की आर्थिक जरूरतों ने उनके लेखन की क्षमता को विकसित किया। इनकी लगातार लेखनी का परिणाम यह हुआ कि गद्य-पद्य दोनों भाषाओं की रचनाओं में अपना समान अधिकार बना। इन्होंने अपनी लेखनी की शुरुआत कविता से की थी लेकिन कविता का मेहताना न मिलने के कारण, इन्हें कहानी लिखना पड़ा। रघुवीर सहाय सिर्फ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, बल्कि रेडियो और अखबार में भी काम करते थे। मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं- "उसने शुरू में ज्यादातर कहानियां तब-तब लिखी है जब-जब उसे लिखकर पैसा कमाने की जरूरत पड़ी है। तब पत्र-पत्रिकाएं कहानियां छापने पर ही पैसे देती थीं, कविताएं छापने पर नहीं। उदाहरण

के लिए उसने शुरू की ज्यादातर कहानियां 1952 में लिखी थीं और फिर बीच के दौर की सभी कहानियां सन 57 और सन 59 में लिखी थीं"[38] रघुवीर सहाय के जीवन में एक समय ऐसा भी आया जब वह अपने स्वभाव की विपरीत जाकर समझौते किए। उनकी परिस्थियाँ उन्हें मजबूत भी करती हैं और मजबूर भी। अपने आदर्शवादी विचारों के कारण उन्होंने आकशवाणी की जिस नौकरी को ठुकराई थी, जीवन की परिस्थितियां उन्हें वहीं ले जाकर खड़ा कर देती हैं। रघुवीर सहाय की परिस्थिति के संदर्भ में मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं- "रघुवीर राजधानी दिल्ली की महंगाई की मार सहता हुआ एक अदद ऐसा लगभग बेरोजगार कवि बन चला था जिसकी एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। भयंकर भग्नाशाप्रद इन परिस्थितियों में किसी का भी मनोबल टूट सकता था। जाहिर तौर पर रघुवीर पहले जैसा लग रहा था लेकिन निश्चय ही उसके भीतर कुछ उथल-पुथल मची हुई थी। फिर भी मैं यह सुनकर चौंका कि जिस रघुवीर ने एक आदर्शवादी के रूप में आकाशवाणी की पक्की नौकरी ठुकराई थी वह उसी आकाशवाणी में और उसी समाचार विभाग में बहैसियत संवाददाता वार्षिक अनुबंध पर काम करने आ गया है।"[39]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार के जीवन की आर्थिक समस्याओं का चित्रण मिलता है। मनोहर श्याम जोशी के पिता की असमय मृत्यु और रघुवीर सहाय की माता की मृत्यु, उनकी आर्थिक समस्याओं का सबब बनती है। मनोहर श्याम जोशी के इस कथन से इन दोनों के आर्थिक कष्टों का अंदाजा लगाया जा सकता है – "उसे पता चला मुझे अपनी माँ के आर्थिक कष्टों की चिंता उसी तरह सालती रहती है जिस तरह उसे पिता के आर्थिक कष्टों की। उसे यह देखकर ख़ुशी हुई कि मैं भी उसकी तरह परिवार पर बोझ नहीं बनना चाहता। तो उसने मुझे लिखकर कमाने की नेक सलाह दी। वह स्वयं विश्वविद्यालय में पढ़ने के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं और रेडियों के लिए बराबर कुछ न कुछ लिखता रहता था। और 'नवजीवन' में तो बाकायदा काम करता था। इस तरह पापड़ बेलने के चक्कर में 1949 में हाजिरी कम होने की वजह से वह एम.ए की फाइनल परीक्षा नहीं दे पाया था।"[40] किसी व्यक्ति के जीवन में जिम्मेदारियों का बोझ उसे वक्त से पहले समझदार बना देता है। ऐसी स्थिति में उसकी इच्छाएं और पसंद-नापसंद मायने नहीं रखती है। व्यक्ति का जीवन जरूरतों को पूरा करने में सीमित हो जाता है। परिवार की प्रति बढ़ी हुई जिम्मेदारी उसे जीवन के तमाम कुतूहल से दूर कर देती है। वह जीवन को उमंग की तरह नहीं, बल्कि जिम्मेदारी की तरह ढ़ोने लगता है। रघुवीर सहाय के माँ की मृत्यु ने उन्हें परिवारिक जिम्मेदारियों के बोझ तले दबा दिया। पिता के प्रति उनके मन में सम्मान और परिवार के प्रति जिम्मेदारी का भाव, उन्हें वक्त से पहले समझदार बना देता है।

कान्तिकुमार जैन कृत 'तुम्हारा परसाई' में हरिशंकर परसाई के जीवन की आर्थिक स्थिति का चित्रण हुआ है। हरिशंकर परसाई का जन्म संभ्रांत परिवार में हुआ था लेकिन

उनके परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता स्थाई नहीं रही। हरिशंकर परसाई के परिवार की आर्थिक स्थिति एक व्यक्त में ऐसी हो जाती हैं कि उन्हें आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है। हरिशंकर परसाई अपनी परिस्थिति का सामना मजबूती से करते हैं। इस संदर्भ में कान्तिकुमार जैन लिखते हैं- "जिंदगी उसे खरल में पीसती रही है, सिलबट्टे पर घिसती रही है, पैरों तले रौदती रही है पर यार के चेहरे पर शिकन नहीं।... वह दूब की जाति का आदमी था- दूर्वा घाम सह जाती है, सूख भी जाती है, सूख भी जाए तो मरती नहीं"41

रवीद्र कालिया कृत 'ग़ालिब छूटी शराब' में व्यक्ति जीवन की समस्याओं में छिपें समाज के दर्द को देखा हैं। वे अपने साथ-साथ अपने मित्रों, सहकर्मियों और तात्कालिक साहित्यकारों की आर्थिक तंगी की तरफ हमारा ध्यान ले जाते हैं। लेखक अपने समकालीन साहित्यकारों की आर्थिक तंगी के माध्यम से तात्कालिक समय की आर्थिक विषमता को रेखांकित करता हैं। वह उस परिवेश को हमारे सामने लाता है जिससे एक जगह, एक स्थान, एक शहर, एक महानगर का वास्तविक रूप, उसका एक पक्ष, हमारे सामने उभरता है। इस संस्मरण में दिल्ली जैसे महानगर में साहित्यकारों की क्या स्थिति थी उसका रेखांकन मिलता है। लेखक जब दिल्ली में कार्यरत था। उस समय दिल्ली में संघर्षशील साहित्यकारों की संख्या ज्यादा थी। हालांकि, कुछ हिंदी साहित्यकार ऐसे थे, जो खुद को स्थापित कर, फल-फूल रहे थे, लेकिन उनकी उन साहित्यकारों की संख्या बहुत ज्यादा थी जो मूलभूत जरूरतों अथवा जीविका के लिए संघर्षरत थे। इस संदर्भ में रवींद्र कलिया लिखते हैं- "उन दिनों दिल्ली में संघर्षशील लेखकों की लम्बी जमात थी। उस जमात के लेखक अपने को 'फ्री लांसर' कहते थे। ये लोग ऐसी पत्रिकाओं के कार्यालयों का चक्कर काटते रहते, जिनसे पारिश्रमिक मिलने की गुंजाईश रहती। जगदीश चतुर्वेदी की कोशिश होती थी 'फ्री लांसर' लेखकों की मदद होती रहे। सरकार ने जैसे जरूरतमंद लेखकों की आमदनी का एक स्रोत खोल दिया था। मगर यह एक ऐसा स्रोत था जहाँ अक्सर सूखा पड़ा रहता।"42

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में आमजन जीवन की आर्थिक स्थिति का रेखांकन मिलता है। ममता कालिया अपने संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' में जबलपुर के धुआधार जलप्रपात का जिक्र करती हैं। धुआधार जलप्रपात में स्थानीय बच्चे अपना करतब दिखाकर जीविका का निर्वाह करते हैं। उन बच्चों को देखकर लगता है कि इनकी उम्र से ज्यादा इन पर जिम्मेदारियों का बोझ है। जीवन की जिजीविषा और पेट की आग ऐसी चीज होती है जो किसी भी व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों में जीवन का निर्वाह करना सिखा देती है। यह पहाड़ी बच्चे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि जीने के लिए कुछ करना पड़ेगा। अत: जीविका का साधन जलप्रपातों से करतब दिखाकर जुटाते हैं। उनका यह अदम्य साहस और स्थिति, लेखिका के हृदय पर सहज ही अपनी छाप छोड़ देता है। वे लिखती हैं- "वे बच्चे इतनी ऊँची चट्टान से पट्ट से छलांग लगा डालते। बर्फीले जलप्रपात के प्रचंड प्रवेग को

वे अपनी नन्हीं बाँहों से झेलते, खेलते, काटते, बाटते और रास्ता खोजते चट्टान का दूसरा कोना पकड़ ऊपर पहुँच जाते। सिर्फ दस रूपये में अपनी जान जोखिम में डाल वे क्या कमाना चाहते- नाम या काम या दोनों। पता चला यही इन बच्चों की जीविका है, यही इनका जीवन। सर्दी हो या गर्मी हर मौसम में बिना नागा ये यहाँ मिलते हैं। एक दिन में कम से कम बीस बार कूदकर करतब दिखाते हैं।"[43]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन व्यक्ति और समाज की आर्थिक स्थिति अपने में समेटे हुए हैं। यह स्थिति आर्थिक विषमता का बोध कराती हैं। यह विषमता सिर्फ व्यक्ति के जीवन तक सीमित नहीं, बल्कि समाज का यथार्थ रूप है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्मरण साहित्य अपने कथ्य के दायरे को विस्तार देता हुआ सिर्फ व्यक्ति के ही नहीं बल्कि समाज की स्थिति को आत्मसात किए हुए है। भले ही आर्थिक स्थितियाँ व्यक्ति के जीवन को गहराई से प्रभावित करती हैं लेकिन वे उन स्थितियों का मजबूती से सामना करते हैं। हरिशंकर परसाई, नामवर सिंह, रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी आदि का आर्थिक संघर्ष उनके जीवन को मजबूती प्रदान करता है। वह इसमें तपते तो है लेकिन गलते नहीं हैं बल्कि निखरते हैं।

स्मृत व्यक्ति की रचनाएं : व्यक्ति और समाज मूल्यांकन

(क) वैयक्तिक पक्ष

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में एक नया प्रयोग देखने को मिलता है जिसमें स्मृत व्यक्ति द्वारा लिखी गई रचनाओं के आधार पर उसके व्यक्तित्व और सामाजिक समस्याओं का मूल्यांकन किया जाता है। स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को संस्मरणकार बखूबी जानता है। वह अपने इस अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त उसके वैयक्तिक पक्ष को पहचान लेता है। प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं में अपने समय-समाज का रेखांकन करता है। स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त उसके विचार के आधार पर स्मृत व्यक्ति का वैयक्तिक पक्ष, उसका नजरिया और समाज के प्रति उसके विचार आदि पहलुओं का रेखांकन मिलता है। मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन' और 'आधे अधूरे' के आधार पर राजेन्द्र यादव उसके वैयक्तिक पक्ष की पड़ताल करते हैं, वहीं निर्मल वर्मा की रचना 'शरह दर शहर' को केंद्र में रखकर, कृष्णा सोबती उनसे जुड़े अपने अनुभव और रचना में अभिव्यक्त हो रहे, उनके व्यक्तित्व का तुलनात्मक विश्लेषण करती है। मनोहर श्याम जोशी ने रघुवीर सहाय की रचनाओं में अभिव्यक्त उनके जीवन की समस्याओं को बड़ी बारीकी से पकड़ने की कोशिश की है। स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक मूल्यों की परख की बात करें तो यशपाल कृत 'डायन', 'भैरवी' के माध्यम से राजेन्द्र यादव सामाजिक विसंगति का रेखांकन करते हैं। वहीं अशोक वाजपेयी कृत 'शहर अब भी संभावना है' के माध्यम से सामाजिक और लोकतान्त्रिक मूल्यों के प्रश्न को कृष्णा सोबती चित्रित करती हैं।

स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त उसके वैयक्तिक पक्ष पर बात करें तो राजेंद्र यादव 'वे देवता नहीं हैं' में मोहन राकेश के साथ अपने अनुभव और स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त उसके रूप के आधार पर, वैयक्तिक पक्ष मूल्यांकन करते हैं। राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश बहुत लम्बा समय एक-दूसरे के साथ बिताये हैं। स्मृत व्यक्ति की कुछ रचनाओं का लेखक प्रथम श्रोता भी रहा है। इस संस्मरण में राजेन्द्र यादव स्वीकार करते हैं कि उनके जीवन में मोहन राकेश का स्थान एक गार्जियन के रूप में रहा है। ऐसे में मोहन राकेश के व्यक्तित्व को लेखक का बहुत गहराई से जानना लाजमी है। इस संस्मरण में राजेन्द्र यादव उनके साथ अपने अंतरंग सम्बन्ध की चर्चा करते हैं। उस संबन्ध के माध्यम से उनके व्यक्तित्व को जितना समझे, उसे वे इस संस्मरण में स्पष्ट करते हैं। वे उनके जीवन के अनेक हिस्सों से परिचित है। उनकी समस्याओं को नजदीक से देखा है। उनके स्वभाव को जानते हैं। वह क्या और कैसे सोचते हैं? वे इसकी गहराई को भी जानते हैं। यही कारण है कि स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त पात्रों के जीवन की समस्याएं और स्मृत व्यक्ति के जीवन की समस्याओं की साम्यता को, संस्मरणकार आसानी से पकड़ लेता है। मोहन राकेश के व्यक्तित्व

के साथ-साथ राजेन्द्र यादव उसके साहित्य में अभिव्यक्त साहित्यकार मन को पकड़ने की कोशिश करते हैं। उन्हें मोहन राकेश की रचनाओं में अभिव्यक्त पात्रों के जीवन मूल्य में, उनके जीवन की झलक मिलती है। मोहन राकेश के व्यक्तित्व को समग्रता से समझने के लिए राजेन्द्र यादव अपने आत्मीय सम्बन्ध को ही काफ़ी नहीं समझते, बल्कि उनके साहित्य में अभिव्यक्त व्यक्तित्व को ज्यादा स्पष्ट करने के लिए जरूरी मानते हैं। उनका मानना है कि मोहन राकेश के व्यक्तित्व को सम्पूर्णता से समझने के लिए व्यक्तिगत संबंधों की घनिष्ठता को ही नहीं, बल्कि उनकी रचनाओं से भी घनिष्ठता बनाने की जरूरत है। इन दोनों को मिलाकर उनके व्यक्तित्व के लगभग सभी पक्ष को समझा जा सकता है। 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास का व्यक्तित्व, मोहन राकेश से मिलता-जुलता है। कालिदास के जीवन का अंतर्द्वंद्व, असल जीवन में मोहन राकेश के अंतर्द्वंद्व का प्रतिकृत रूप है। कालिदास की रचनात्मकता और सत्ता के बीच का द्वन्द्व, मोहन राकेश के जीवन से अलग नहीं है। कालिदास रचनात्मकता को आधार बनाकर, सत्ता में जाते हैं लेकिन वहां उन्हें आत्मतुष्टि नहीं मिलती है। कालिदास के जीवन का यह भटकाव, मोहन राकेश के जीवन से अलग नहीं है। इसी तरह 'आधे-अधूरे' पर बात करते हुए लेख़क पारिवारिक जीवन की विसंगतियों को खंगालता है। संस्मरणकार का स्मृत व्यक्ति से पारिवारिक संबन्ध था। वे मोहन राकेश के परिवार से जुड़े तमाम प्रसंगों के साक्षातदर्शी रहे हैं। मोहन राकेश की तीन पत्नियां थी। अंतिम पत्नी अनिता राकेश थी। मोहन राकेश के मन में एक घर बनाने की लालसा थी, जो सिर्फ उनके हिसाब से चले। वे घर बनाए, लेकिन उन्हें उसमें बँधकर रहना रूचिकर न था। मोहन राकेश का घर बना, लेकिन आधे-अधूरे के महेन्द्रनाथ की तरह उस घर में उनकी भूमिका रही। जिस प्रकार महेन्द्रनाथ पारिवारिक द्वंद्व और तनाव से निकलकर कुछ समय के लिए बाहर जाता तो है लेकिन पुनः परिस्थितियों से समझौता करने के लिए वापस आता है। जहां वह सुकून से रह भी नहीं पा रहा है और न ही उसको छोड़ पा रहा है। इसी प्रकार कालिदास जिस चीज से निकल भागता है उसे मुड़कर देखता नहीं है। वह चलता चला जाता है। वह अपने प्रवृति की विशेष परिस्थितियों से समझौता नहीं करता है लेकिन महेंद्रनाथ अपनी परिस्थितियों से निकलकर भागता तो है लेकिन वापस उसी नरक में लौट आता है। मोहन राकेश महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति थे लेकिन लेखकीय जीवन में कालिदास और पारिवारिक जीवन में महेन्द्रनाथ की भूमिका में दिखाई देते हैं। संस्मरणकार उनके पात्रों में मोहन राकेश का व्यक्तित्व ढूंढ़ लेते हैं। ऐसा तब होता है जब व्यक्ति किसी को बहुत गहराई से समझ लिया हो। उसके व्यक्तित्व की तमाम पक्ष का बोध संस्मरणकार को हो गया हो। ऐसी स्थिति में स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व की झलक संस्मरणकार को जहां भी मिलती है वह उसकी पैनी नजरों से ओझल होना संभव नहीं है।

कृष्णा सोबती 'हम हशमत-3' में निर्मल वर्मा को याद करती है, लेकिन उनके साथ अपने व्यक्तिगत अनुभव को साझा न करते हुए उनकी रचनाओं के माध्यम से उनके व्यक्तित्व का रेखांकन करती हैं। ऐसा तब होता है जब स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का कोई कोना संस्मरणकार से छुपा नहीं होता है। कृष्णा सोबती उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व का सत्य ढूढ़ती है। कृष्णा सोबती कहती हैं- "आज की शाम निर्मल के गहन गूँथ वाली रचनात्मकता को समर्पित है। निर्मल जैसे लेखक के 'आत्मसत्य' की खोज के लिए हम कृतज्ञ हैं।"[44] उनकी रचनाओं में समाज, संस्कृति, भाषा, साहित्य, राजनीति, राष्ट्रीयता, जाति आदि को लेकर स्मृति व्यक्त का क्या विचार हैं उसे कृष्णा सोबती स्पष्ट करने की कोशिश करती हैं। स्मृत व्यक्ति की रचनाओं की गहराईयों को समझते हुए लेखिका उसमें उनके व्यक्ति मन की गहराइयों को देखती हैं। वे रचना के मनोविज्ञान को समझते हुए स्मृत व्यक्ति के मनोभावों को पकड़ने की कोशिश करती हैं। वे कहती हैं निर्मल वर्मा को सहज-सरल वही कह सकता है जो उनकी रचनाओं की आंतरिक जटिलता को समझता है। इस आंतरिक जटिलता का कारण लेखक की आत्मकेन्द्रीयता है, जो व्यक्ति मन की खोह के इर्द –गिर्द ही केन्द्रित है। उस खोह में वही जा सकता है जो समाज से दूर हो। उनकी साहित्यिक दृष्टि पर टिप्पणी करते हुए कृष्णा सोबती कहती हैं- "पंक्तियों में सिमटी प्रकृति की नैसर्गिक तन्मयता निर्मल को समाज के शोर और यथार्थ से दूर ले जाती है।"[45] उनके साहित्य में अभिव्यक्त आत्मकेन्द्रीयता, उन्हें समाज के यथार्थ से दूर ले जाता है। वे व्यक्ति मन में उलझते नजर आते हैं जो समाज की सपाट समस्याओं से दूर है। उन्हें प्रकृति की नीरवता भाती हैं लेकिन समाज का शोर नहीं। इस संदर्भ में लेखिका लिखती हैं- "जहाँ पहाड़ों और सागर का एकांत है। हवाएं हैं। आकाश का विस्तार है और हवा में तिरोहित होता वह व्यक्ति मन की गुपचुप आहटों का संसार है। निर्मल मर्मज्ञता से इन आवाजों के मौन को फैलाते हैं। उनके सहारे अपना मंथन करते हैं और लगभग आत्मकेंद्रित हो जाते हैं।"[46] लेखिका निर्मल वर्मा के साहित्यिक अवदान को माध्यम बनाकर उनके लेखकीय व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश करती हैं।

स्मृत व्यक्ति की रचनाओं को आधार बनाकर लिखे गए संस्मरण में एक प्रयोग यह भी देखने को मिलता है कि संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति की एक भी मुलाकात नहीं हुई हो, लेकिन संस्मरणकार उसकी रचनाओं का विस्तृत अध्ययन कर, उसके वैयक्तिक पक्ष का रेखांकन करता है। राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने' में 'एक सपने की कथा-यात्रा' शीर्षक से प्रेमचंद पर लिखा गया संस्मरण इसी प्रकार का है। राजेन्द्र यादव और प्रेमचंद की प्रत्यक्ष मुलाकात कभी नहीं हुई है लेकिन संस्मरणकार उनकी और उन पर लिखी गई रचनाओं का अध्ययन कर, स्मृत व्यक्ति के वैयक्तिक पक्ष और समाज के प्रति उसके नजरिए को उद्धृत करता है।

मनोहर श्याम जोशी द्वारा लिखित 'रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण' में रघुवीर सहाय की रचनाओं में अभिव्यक्त उसके व्यक्तित्व के साथ-साथ पारिवारिक परिस्थितियों का भी रेखांकन करते हैं। यह पुस्तक रघुवीर सहाय के व्यक्तिगत जीवन के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत तो करती ही है, साथ ही साथ उनके पारिवारिक स्थिति का भी बोध कराती है। रघुवीर सहाय की तमाम कविताएं ऐसी हैं जिसमें उन्होंने अपनी और अपने

पारिवारिक परिस्थिति का सीधा चित्रण किया गया है। उनके द्वारा अपने पिता के संघर्षों को लेकर लिखी गई कविता को मनोहर श्याम जोशी अपने संस्मरण में उद्धृत करते हैं- "यही मैं हूँ/और जब मैं यही होता हूँ/ थका, या उन्हीं के-से वस्त्र पहने, जो मुझे प्रिय हैं/दुखी मन में उतर आती है पिता की छवि/अभी तक जिन्हें कष्टों से नहीं निष्कृति/उन्हीं अपने पिता की मैं अनुकृति हूँ/यही मैं हूँ...शक्ति दो, बल दो, हे पिता/ जब दुःख के भार से मन थकने आये/पैरों में कुली की-सी लपकती चाल छटपटाए/इतना सौजन्य दो कि दूसरों के बक्स-बिस्तर घर तक पहुँचा आयें/कोट की पीठ मैली न हो, ऐसी व्यथा-/शक्ति दो।"[47] कविता की इन पक्तियों से ही स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय के जीवन में माँ का अभाव और पिता पर तमाम जिम्मेदारियों का बोझ, उन्हें दुखी करता है। उनका यह दुःख मनोहर श्याम जोशी से छिपा नहीं है। रघुवीर सहाय की ऐसी कई कविताओं को मनोहर श्याम जोशी उद्धृत करते हैं जिसमें उनकी मन:स्थिति को देखा जा सकता है। रघुवीर सहाय परिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए अपनी पत्नी के साथ सुकून के दो पल कभी नहीं बिता पाए। वे इस दुःख को अपनी कविता में व्यक्त करते हैं। मनोहर श्याम जोशी उस कविता को उद्धृत करते हैं जिसमें पत्नी के साथ दो पल सुकून से न बिताने का क्षोभ दिखाई देता है- "एक दिन जल्दी ही हम दोनों में/कोई एक चला जाएगा/मैं अगर गया तो बहुत कागज छोड़ जाऊंगा/तुम अगर गयी तो कुछ नहीं छोड़ जाओगी/तुम एक जिन्दगी आधी-अधूरी हो/ जो लिखी नहीं गयी/ जो अभी जीई नहीं गयी/जिसकी अभी बातें हुई नहीं/ हम दोनों के बीच।"[48] रघुवीर सहाय की अंतिम दौर की कविताओं में मृत्यु का भय दिखाई देता हैं। उनकी कविताओं में बुढ़ापे, मरघट, शोकसभा, बीमारी, लाश, मृत्यु आदि का जिक्र बहुत आया है। इससे उनकी आत्मकरूणा का अंदाजा लगाया जा सकता है। मनोहर श्याम जोशी बुढ़ापे पर लिखी गई उनकी एक कविता को उद्धृत करते हैं- "मैं अभी कल तक मानता ही नहीं था/कि मैं बूढ़ा हो रहा हूँ/ यह क्या हुआ कि दो ही चार दिन में बुढा गया ।"[49] एक कविता में मरघट का जिक्र आया है- "आज यह, कल वह छह बरस में मैं इस मरघट में बीस बार आया हूँ/ इस तरह हमने उस बस्ती के एस निर्जन द्वीप का भूगोल पहचाना।"[50] रचनाकार जिन परिस्थितियों का सामना करता है, उसकी रचनाएँ भी उसी परिस्थिति की ओर झुकी रहती हैं। रघुवीर सहाय के मन का भाव, उनके जीवन का संघर्ष, उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त होता है। रघुवीर सहाय की रचनाएं उनके जीवन की दास्ताँ को अपने में समेटे हुए हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में यह भी देखने को मिलता है कि स्मृत व्यक्ति और उसकी रचनाओं को आधार बनाकर संस्मरणकार उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है। इस तरह के संस्मरण तभी संभव है जब संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति का आत्मीय सम्बन्ध बहुत गहरा हो। लेखक उसके जीवन के विभिन्न पक्षों को जानता हो। लेखक स्मृत व्यक्ति की रचनाओं का जब गहन अध्ययन करता है तो उसकी रचनाओं में आए पात्रों के जीवन और

प्रसंगों को देखकर बड़ी आसानी से पहचान लेता है कि यह पात्र केवल काल्पनिक है लेकिन इसके जीवन की स्थिति-परिस्थिति, उलझन, समस्याएं आदि स्मृत व्यक्ति के जीवन से जुड़ी हुई हैं। इन पात्रों के जीवन का अंतर्विरोध, स्मृत व्यक्ति के जीवन का अंतर्विरोध है। उसके जीवन की तमाम समस्याएं, स्मृत व्यक्ति के जीवन की है। स्मृत व्यक्ति के जीवन और उसकी रचनाओं में अभिव्यक्त पात्रों के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन संस्मरणकार करता है। संस्मरणकार अपने अनुभव से जितना स्मृत व्यक्ति को समझता है, उसकी रचनाओं के पात्रों में उसका वही रूप दिखाई देता है, इसे वह बड़ी सहजता से पहचान लेता है। स्मृत व्यक्ति और उसकी रचनाओं में आए पात्रों के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करें तो स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व और अधिक स्पष्टता से दिखाई देता है। इस तरह का संस्मरण राजेंद्र यादव, मनोहर श्याम जोशी, कृष्णा सोबती आदि लेखकों द्वारा लिखा गया है, जिसमें इन्होंने अपने अनुभव के आधार पर स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभियाकत उसके जीवन मूल्यों को ढूंढा ही नहीं, बल्कि तथ्यों के साथ उसको प्रमाणित भी किया। राजेंद्र यादव कृत संस्मरण ‘वह देवता नहीं है’ में मोहन राकेश और यशपाल पर लिखा गया संस्मरण इसी तरह का है।

(ख) सामाजिक पक्ष

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में स्मृत व्यक्ति की रचनाओं के माध्यम से संस्मरणकार द्वारा सामाजिक परिदृश्य का मूल्यांकन किया जाता है। स्मृत व्यक्ति अपनी रचना में समय-समाज के विभिन्न पहलुओं को उकेरता है। संस्मरणकार उन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, स्मृत व्यक्ति का समाज के प्रति क्या नजरिया है, उसको चित्रित करता है। एक रचनाकार का समाज के प्रति जो नजरिया होता है वही उसकी रचनाओं में अभिव्यक्त होता है। इस दौर के संस्मरणों में यह प्रयोग देखने को मिलता है कि स्मृत व्यक्ति के व्यक्ति रूप को और अधिक गहराई से समझने के लिए उसकी कृतियों का सहारा लिया जाता है। संस्मरणकार संस्मरण लिखते समय उन बिंदुओं की ओर हमारा ध्यान ले जाता है जो व्यक्ति और समाज के लिए प्रासंगिक हो। कृष्णा सोबती अपने संस्मरण में अशोक वाजपेयी की कविता के माध्यम से आज की विसंगतियों और जटिल परिस्थियों की ओर इशारा करती हैं-

"देवता हमें पुकारेंगे
जब पाप या प्रेम करने की
बची न होगी शक्ति
जब एक लहुलूहान आत्मा और
जर्जर शरीर भर होंगे पास
जब शब्द उड़ रहे होंगे
चिंदियों की तरह हवा में
तब किसी पुराने छज्जे से
सपने की किसी ऊँची चट्टान और
सदियों से बंद किसी खिड़की से
देवता हमें पुकारेंगे..."[51]

भारत एक लोकतान्त्रिक देश है लेकिन इस लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भी गरीब आदमी की बहुत बेहतर स्थिति नहीं है। आम-आदमी के जीवन को यथार्थ की धरातल पर ले जाकर देखें तो कुछ और ही नजर आता है, वहाँ न लोकतंत्र दिखाई देता है और न ही लोकतान्त्रिक व्यवस्था। अशोक वाजपेयी की रचनाओं के माध्यम से कृष्णा सोबती लोकतांत्रिक व्यवस्था में साधारण व्यक्ति की स्थिति की तरफ ध्यान ले जाती हैं । यह कविता समाज में व्याप्त असमानता और एक साधारण व्यक्ति के मानवीय मूल्यों को समेटे हुए हैं। इस कविता में अशोक वाजपेयी मानवतावाद के आग्रही दिखाई देते हैं-

"अगर बच सका

तो वही बचेगा
हम सब में थोड़ा सा आदमी
जो रौब के सामने नहीं गिड़गिड़ाता
अपने बच्चे के नम्बर
बढ़वाने नहीं जाता मास्टर के घर
जो रास्ते पर पड़े घायलों को
सब काम छोड़कर सबसे पहले अस्पताल
पहुँचाने का जतन करता है जो अपने सामने हुई
वारदात की गवाही देने से नहीं हिचकता।
वही थोड़ा-से आदमी
जो धोखा खाता है पर
प्रेम करने से नहीं चूकता
जो अपनी बेटी के अच्छे फ्रॉक के लिए
दूसरे बच्चों को थिगड़े पहनने पर मजबूर नहीं करता
जो दूध में पानी मिलाने से हिचकता है
जो अपनी चुपड़ी खाते हुए
दूसरों की सूखी के बारे में सोचता है
वही थोड़ा सा आदमी जिसे खबर है कि
वृक्ष अपनी पत्तियों से गाता है अरहर-"[52]

राजेन्द्र यादव अपने संस्मरण में यशपाल को याद करते हुए उनके साहित्यिक महत्त्व की चर्चा करते हैं। उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त व्यक्ति-समय-समाज के स्वर के महत्त्व को बताते हुए, आज के समय में उसकी प्रासंगिकता को रेखांकित करते हैं। वह यशपाल की कहानियों का जिक्र करते हुए उस पर लगे यौनिक कुण्ठा से ग्रसित कहानियों के आरोप को निराधार बताते हुए, उन कहानियों के सामाजिक महत्त्व की चर्चा करते हैं। जिस समाज में आये दिन यौन कुंठा को लेकर अपराध बढ़ रहा है, उसके प्रति यशपाल का मुखर दृष्टिकोण, उनकी सामाजिक चेतना को प्रमाणित करता है। यशपाल ने समाज में स्त्री की स्थिति और यौन कुंठा की समस्या को जिस समय समाज में उठाया है वह उनकी दूरदृष्टि का परिचायक है। राजेन्द्र यादव का मानना है कि यशपाल समय के साथ चलने वाले लेखक थे। वे उन विषयों पर लिख रहे थे जिस पर हमारा समाज खुलकर बात भी करना उचित नहीं समझता था। यशपाल के समसामयिक दृष्टिकोण को देखते हुए राजेन्द्र यादव उन्हें 'डेटेड लेखक' की संज्ञा देते हैं। राजेन्द्र यादव उन लेखकों की तरफ भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं जिनकी रचनाओं में कथ्य का स्वर, उस दौर की पारंपरिक रचनाओं से भिन्न था। जिनकी लेखनी

समय-समाज की जरूरत पर केंद्रित थी। जिन्होंने व्यक्ति एवं समाज को देखने का अलग निरेटिव गढ़ा। इनमें प्रेमचंद, जैनेंद्र, अज्ञेय, आदि हैं जो आदर्शोन्मुख यथार्थ, गाँधीवाद आदि का चोला उतार, व्यक्ति और समाज के वास्तविक यथार्थ के आग्रही बने। ये नारी समस्या, यौन कुंठा, व्यक्तिवाद, समाज आदि विषयों पर लिख रहे थे, लेकिन इन लेखकों के करीब दिख रहे यशपाल कुछ जगहों पर इनसे भिन्न भी हैं। यशपाल उस दौर में थे, जब देश औपनिवेशिक शासन का गुलाम था। इन्होंने गुलामी की यातनाओं को नजदीक से देखा ही नहीं, बल्कि भोगा भी था। उन्हें गुलामी की जगह जेल की यातनाएं ज्यादा सहज लगती थी। उस दौर की सामाजिक समस्याएं की गहराई में ले जाति हैं। उनका यह व्यक्तिगत अनुभव उनकी रचनाओं को ज्यादा प्रमाणिक बनाता है। यही कारण है कि उनकी लेखनी में सामाजिक समस्याएं, राजनीतिक घपलेबाजी, आर्थिक तंगी, स्त्री समस्यायें और स्त्री-पुरूष संबंध की कुंठाएँ आदि का यथार्थ रूप दिखाई देता है। राजेन्द्र यादव उनकी लेखनी के आधार पर उन्हें तीन लेखकों के नजदीक रखकर देखते हैं- पहले स्त्री-पुरुष की समस्याओं को आधार बनाकर लिखने वाले जैनेंद्र, दूसरे व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी दृष्टिकोण रखने वाले अज्ञेय तथा तीसरे सामाजिक समस्याओं की बारीकियों को देखने वाले प्रेमचन्द। इन तीनों लेखकों की रचनाओं का विषयवस्तु, यशपाल की रचनाओं में दिखाई देती है। यशपाल और उनकी रचनाओं के माध्यम से समाज की तमाम समस्याओं को राजेन्द्र यादव रेखांकित करते हैं। उनकी रचनाओं का विषय व्यक्ति, समाज, सत्ता, स्त्री-पुरुष के सबन्ध आदि हैं। यशपाल मार्क्सवादी थे। उनकी इस वैचारिकी का प्रभाव उनकी कहानियों पर दिखाई देता है। वे शोषणविहीन, समतामूलक, वर्गमुक्त समाज के आग्रही हैं। यशपाल की वैचरिकी को रेखांकित करते हुए राजेन्द्र यादव लिखते हैं- "यशपाल में वह समाज की इकाईयों की मानसिकता यानी नैतिकता को निर्धारित और अस्वीकार करने वाली मूलभूत उर्जा...यशपाल के लिए सेक्स सामाजिक विकृतियों से अलग या इकलौती समस्या नहीं है, वह उनके लिए सम्पूर्ण विद्रोह का हिस्सा ही नहीं, धर्म और राजनीति की तरह व्यवस्था के आधारभूत स्तम्भों के खिलाफ लड़ाई है, लड़ाई चाहे अंग्रेजी उपनिवेशवाद के विरोध में हो या भारतीय संस्कृति के नाम पर सामन्ती मूल्यों और अंधविश्वासों के- यशपाल राजनैतिक और मानसिक और सांस्कारिक गुलामी के प्रतिरोध में खड़े क्रांतिकारी लेखक हैं-अधिक स्वतंत्र और विषमता-मुक्त संसार के पक्षधर होकर...जब वे पुराण-युग के अंतर्विरोधों और वैदिक नृशंसताओं पर प्रहार करते हैं, तो उनका आधार बुद्ध-दर्शन होता है। ('दिव्या' और 'अमिता' इसी युग के उपन्यास हैं।) राजनीति का खोखलापन उजागर करने का उनका हथियार है मार्क्सवाद और मध्यवर्गीय नैतिकता के आडम्बरी वैवाहिक जीवन को उधेड़ते के

लिए फ्रायड से अधिक बर्ट्रेंड रसैल उनके निकट हैं। वे हर प्रकार की गुलामी के खिलाफ सन्नद्ध योद्धा की तरह हैं।"[53] इसके साथ स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में तात्कालिक परिस्थिति का बोध होता है। उस तात्कालिक परिस्थिति के रेखांकन के लिए संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति की रचनाओं को संस्मरण का आधार बनाता है। राजेन्द्र यादव जब यशपाल पर बात करते हैं तो वे सिर्फ स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को ही नहीं उभारते हैं बल्कि अपने संस्मरण में यशपाल की उन रचनाओं को शामिल करते हैं जो तात्कालिक समय-समाज को अपने में समेटे हुए है। वे यशपाल के माध्यम से उस समय हो रहे स्वतंत्रता आंदोलन, व्यक्ति और समाज की स्थिति, जनता का सरकार के प्रति विरोध, भारतीय समाज की जनता में क्रांतिकारी चेतना का प्रभाव, स्त्री की स्थिति आदि को दिखाने की कोशिश करते हैं। 'दादा कॉमरेड', 'देश द्रोही', 'मेरी तेरी उसकी बात' आदि के नायक ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लेते नजर आते हैं। यशपाल को यथार्थवादी और जमीनी लेखक राजेन्द्र यादव कहते हैं। उनका मानना है कि स्मृत व्यक्ति की कहानियां अपने समय-समाज से ज्यादा जुड़ी हुई और समयबद्ध है। वे लिखते हैं - "जड़ अवरुद्ध समाज को बदले बिना, झकझोरे बिना व्यक्ति की मुक्ति सम्भव नहीं है। अपनी स्थितियों संबंधों, सूचनाओं और सैट-अप (परिवेश) में यशपाल इनमें सबसे अधिक डेटेड कहानीकार हैं। जैनेन्द्र और अज्ञेय अपने परिवेश और काल दोनों को लगभग अतिक्रमित करते हैं, यशपाल को पढ़ते हुए आज भी उस समय और समाज को हमेशा ध्यान में रखना पड़ता है।"[54]

स्मृत व्यक्ति की रचनाओं के माध्यम से उसके व्यक्तित्व और समाज का विश्लेषण, संस्मरण साहित्य में नया प्रयोग है। स्मृत व्यक्ति की रचनाएं और संस्मरणकार का अनुभव, इन दोनों को आधार बनाकर, जब किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है तो उसके व्यक्तित्व का काफी स्पष्ट और प्रमाणिक रूप हमारे सामने दिखाई देता है। इसके साथ ही स्मृत व्यक्ति की रचनाओं में अभिव्यक्त समाज के माध्यम से, एक तरफ तो उसका वैचारिक रूप उभरकर सामने आता है, जिसके माध्यम से समाज के प्रति उसके नजरिए को समझा जा सकता है, वहीं दूसरी तरफ उसकी रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक समस्याएं, संस्मरण साहित्य को व्यक्ति तक सीमित न रखकर ज्यादा वैविध्यपूर्ण और समृद्ध बनाती है।

संदर्भ सूची :

1. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 11।
2. वही, पृष्ठ 13।
3. बैकुंठपुर में बचपन, कान्तिकुमार जैन, पृष्ठ 199।
4. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 193।
5. वही, पृष्ठ 24।
6. आछे दिन पाछे गए, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ 22।
7. हम हशमत भाग-तीन, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 125।
8. वही, पृष्ठ 118-119।
9. वही, पृष्ठ 119।
10. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 28।
11. हम हशमत भाग-तीन, कृष्णा सोबती पृष्ठ 35।
12. यादों के काफिले, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ 12।
13. वही, पृष्ठ 26।
14. आछे दिन पाछे गये, पृष्ठ 93
15. बैकुंठपुर में बचपन, कान्तिकुमार जैन, पृष्ठ 190।
16. वही, पृष्ठ 193।
17. गालिब छूटी शराब, रवीन्द्र कालिया, पृष्ठ 155।
18. वही, पृष्ठ 156।
19. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 77।
20. वही, पृष्ठ 78।
21. वही, पृष्ठ 78।
22. बैकुंठपुर में बचपन,कान्तिकुमार जैन, पृष्ठ 13।
23. वही, पृष्ठ 220।
24. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 11।
25. हम हशमत भाग-तीन, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 119।
26., किस्सा कोताह, राजेश जोशी, पृष्ठ 16।
27. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 5।
28. वही, पृष्ठ 54।
29. लखनऊ मेरा लखनऊ, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 44।
30. कितने शहरों में कितनी बार ममता कालिया, पृष्ठ 21।
31. लखनऊ मेरा लखनऊ, मनोहर श्याम जोशी, फ्लैप कवर।
32. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 95।
33. वही, पृष्ठ 95।
34. वही, पृष्ठ 60।

35.ग़ालिब छूटी शराब,रवीन्द्र कालिया, पृष्ठ 149।

36. वही, पृष्ठ 151।

37. किस्सा कोताह, राजेश जोशी, पृष्ठ 32।

38. रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 62।

39. वही, पृष्ठ 66।

40. वही, पृष्ठ 11।

41. तुम्हारा परसाई, कांतिकुमार जैन, पृष्ठ 46।

42. गालिब छूटी शराब, रवीन्द्र कालिया, पृष्ठ 62।

43. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया, पृष्ठ 7।

44. हम हशमत-3, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 60।

45: वही, पृष्ठ 62।

46. वही, पृष्ठ 66।

47. रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण, मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ 9।

48. वही, पृष्ठ 107।

49. वही, पृष्ठ 106।

50. वही, पृष्ठ 107।

51. हम हशमत भाग-तीन, कृष्णा सोबती, पृष्ठ 76।

52. वही, पृष्ठ 73।

53. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 37-38।

54. वही, पृष्ठ 31।

छठा अध्याय

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का शिल्पगत वैशिष्ट्य

(i) समकालीन हिंदी संस्मरण की अंतर्वस्तु : शैलीगत वैशिष्ट्य

(ii) भाषागत वैशिष्ट्य

(iii) संस्मरण साहित्य में परिवेश की भूमिका

(iv) संस्मरण साहित्य की चुनौतियाँ

समकालीन हिंदी संस्मरण का शिल्पगत वैविध्य:-

साहित्यिक विधाओं का एक निश्चित रूप होता है। वे अपने उसी रूप में अभिव्यक्त होती हैं। आधुनिकता से पूर्व साहित्य का रूप महाकाव्य, खंड काव्य, चम्पू काव्य, मुक्तक आदि हुआ करता था। आधुनिकता के साथ जैसे साहित्य की विषयवस्तु में परिवर्तन आया, वैसे ही साहित्य के स्वरूप में भी। पहले जहाँ साहित्य पद्य या गद्य, नाटक या कविता के रूप में लिखा जाता था वह अब विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होने लगा। कथ्य प्रधान साहित्य के लिए कहानी, उपन्यास जैसी विधाओं का विकास हुआ। विचार प्रधान लेखन के लिए निबंध, आलोचना, समीक्षा जैसी साहित्यिक विधाओं का रूप सामने आया। जैसे-जैसे समाज बदलता गया और साहित्य में भी यथार्थ के प्रति आग्रह बढ़ता गया, वैसे-वैसे अन्य विधाओं का भी उदय हुआ जैसे आत्मकथा, डायरी, रिपोर्ताज़, संस्मरण, यात्रा वृत्तान्त आदि। हिंदी साहित्य में कथेतर विधाएँ आधुनिक-युग की देन हैं। संस्मरण साहित्य का आरम्भ तो भारतेंदु काल में ही हुआ था लेकिन उसका विकास द्विवेदी युग में हुआ। स्वातंत्रयोत्तर भारत में इसका और विस्तार हुआ। जैसा कि अन्य साहित्यिक विधाओं में होता है, वे उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरती हैं, उससे संस्मरण साहित्य को भी गुजरना पड़ा।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का प्रारम्भ आठवें दशक से माना जाता है। हिंदी के प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर विश्वनाथ त्रिपाठी ने एक संस्मरण लिखा-'हक जो अदा न हुआ।' यह संस्मरण साहित्य के इतिहास में एकदम भिन्न था और इस संस्मरण की खूब भूरी – भूरी प्रशंसा हुई। इससे प्रभावित होकर बहुत से लेखकों ने संस्मरण विधा की तरफ रुख किया।

साहित्य रचना के लिए कल्पना सबसे प्रमुख तत्त्व है। कल्पना विहीन साहित्य की रचना चुनौतीपूर्ण कार्य है। कथेतर गद्य विधाएं, जिनका आधार यथार्थ परक है, वे कल्पना को अस्वीकार करती हैं। रचना में जितना महत्त्व यथार्थ का होता था उतना ही कल्पना का भी। कहा जाता था की बिना कल्पना के रचना में रोचकता को नहीं लाया जा सकता। कल्पना रचना को रोचक बनाती है। कठेतर गद्य विधाएं एस धारणा को अस्वीकार करती हुई उसे रोचक और पठनीय बनाती है। इस संदर्भ में माधव हाड़ा कहते हैं- "कथेतर साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह कल्पना को अस्वीकार करता है।"[1] इसने शास्त्रीय दायरों को तोड़ा है। माना जाता है- "कल्पना को अस्वीकार करने के बाद कथेतर

साहित्य की शैली और भाषा को रोचक बनाए रखने की प्रक्रिया बहुत जटिल और कठिन है। कथेतर साहित्य का लेखक यह जानता है कि रचनात्मक अभिव्यक्ति का एक बहुत बड़ा उपकरण 'कल्पना' उसके पास नहीं है। कल्पना का न होना या कल्पना का प्रयोग न करना लेखक को सीमित कर देता है।"[2] संस्मरण एक ऐसी विधा है जो कल्पना से परे जाकर अपना रचनात्मक ढांचा तैयार करती है। ऐसा नहीं है कि इन रचानाओं में रोचकता नहीं है बल्कि अपनी रोचकता को बरक़रार रखते हुए यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

संस्मरण लेखन चुनौतीपूर्ण कार्य है। क्योंकि इसमें यथार्थ का आग्रह होने के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर सत्यता सिद्ध भी करना पड़ सकता है। इसलिए इसमें 'गप्प' के लिए बहुत कम स्थान बचता है। दूसरी बात जिस पर संस्मरण लिखा जाता है वह कोई अन्य अपरिचित नहीं, बल्कि आपका अपना मित्र, दोस्त,यार, या सम्मानित कोई श्रद्धेय ही होगा। इसलिए "कथेतर लेखन तलवार की धार पर चलने के सामान है।"[3]

संस्मरण लेखन में परिवेश का बहुत महत्त्व है। संस्मरणकार स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को प्रभावशाली ढंग से तब तक नहीं उभार पायेगा, जब तक वह उस परिवेश को संवेदनशीलता के साथ वर्णन नहीं कर पायेगा। काशीनाथ सिंह और कांतिकुमार जैन के संस्मरण अगर प्रभावशाली हैं तो उसका सबसे बड़ा कारण परिवेश का सफल वर्णन है। स्मृत व्यक्ति और उससे जुड़े वातावरण में संतुलन बहुत आवश्यक है "व्यक्ति-चित्र लिखते समय परिवेश और दूसरे पात्र भी चूँकि वास्तविक ही होते हैं इसलिए इसका संयोजन तार्किक ढंग से करना पड़ता है। चूँकि व्यक्ति चित्र लिखने के लिए कल्पना का सहारा नहीं लिया जा सकता इसलिए ऐसे बिम्ब बनाना आवश्यक हो जाता है जो व्यक्ति के उन पक्षों को सामने लाए जिसपर लेखक जोर देना चाहता है"[4]

किसी भाषा और साहित्य की समृद्धि का पता हमें उसमें प्राप्त साहित्य से चलता है। यह भी देखा जाता है कि उस भाषा के साहित्य में ज्ञान-विज्ञान तथा अन्य अनुशासनों की धारण क्षमता कितनी है। इस तरह का साहित्य किस मात्रा में लिखा गया है। साहित्य की दृष्टि से उसमें रूप वैविध्य कितना है? इस संदर्भ में साहित्यकार अजीत कुमार का मानना है- "संसार की किसी भी समृद्ध भाषा का प्रमुख लक्षण यह समझा जाना चाहिए कि शिक्षा के विस्तार-क्रम में, रुचि के सभी क्षेत्रों से सम्बद्ध, तृप्तिदायक और सूझ-बूझ युक्त लेखन उस भाषा में न केवल विद्यमान हो, बल्कि वह निरंतर नई से नई जानकारी से समृद्ध होता हुआ

पिछली जानकारी में बृद्धि करता जाये ।"[5] अर्थात वह भाषा सर्वाधिक समृद्ध मानी जाएगी जो ज्ञान-विज्ञान के लिए सर्वथा उपयुक्त हो। उसमें साहित्य विविधता भी प्रचुर हो।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन की अंतर्वस्तु : शिल्पगत वैशिष्ट्य

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का परिप्रेक्ष्य बहुत व्यापक है। इसमें हर स्तर पर विविधता दिखाई देती है। अगर हम संस्मरण के अंतर्वस्तु की बात करें तो इसके कई रूपों में स्पष्टता दिखाई देती है। इसमें शैलीगत प्रयोग को लेकर बात करे तो इसका कोई निर्धारण स्वरूप नहीं है या यह कह सकते हैं कि संस्मरण साहित्य किसी एक शैली का आग्रही नहीं दिखाई देता, बल्कि यह विभिन्न शैलियों को अपने में समेटे हुए, अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए है। जैसे जीवनीपरक संस्मरण, आत्मकथात्मक संस्मरण इत्यादि।

जीवनीपरक संस्मरण

जीवनीपरक संस्मरण किसी व्यक्ति के जीवन के बहुधा पक्षों पर प्रकाश डालते हैं। इन्हें पढ़ते हुए ऐसा एहसास होता है कि यह लेखक की जीवनी है लेकिन जीवनी होती नहीं, बस जीवनी का आभास देती है। इस प्रकार के संस्मरण लेखन के लिए कांतिकुमार जैन, काशीनाथ सिंह का नाम लिया जाता है। उनके बहुधा संस्मरण इस कोटि में आते हैं।

'तुम्हारा परसाई'(2005) कान्तिकुमार जैन का महत्त्वपूर्ण संस्मरण है। इसमें हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार-व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई के जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। 'तुम्हारा परसाई' एक ऐसी रचना है जो परसाई की जीवनी न होते हुए भी जीवनी के जैसी है। इसमें परसाई के जीवन के आद्योपान्त, जन्म से लेकर मृत्यु तक, उनके जीवन में घटित विभिन्न महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन है। हरिशंकर परसाई से उम्र में कान्तिकुमार जैन छोटे थे। लगभग 10 वर्ष छोटे। लेकिन, हरिशंकर परसाई उनसे मित्रवत व्यवहार करते थे। दोनों का आत्मीय सम्बन्ध काफी गहरा था। ये एक-दूसरे की सहायता के लिए हमेशा प्रस्तुत रहते थे। यही कारण है कि कान्तिकुमार जैन ने हरिशंकर परसाई के जीवन से जुड़ी हर छोटी-छोटी बातों, समस्याओं को यहाँ दर्ज किया है। वे अपने संस्मरणों में कुछ छुपाते नहीं।

कान्तिकुमार जैन अपने संस्मरण 'तुम्हारा परसाई' में हरिशंकर परसाई के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश तो डालते ही हैं, वे उनके साहित्यिक-संघर्ष, जीवन-संघर्ष पर विशेष रूप से केंद्रित होते हैं। परसाई की साहित्यिक जगत में उपेक्षा तथा वैचारिक उठापटक का वर्णन बहुत संवेदनशीलता के साथ करते हैं। कान्तिकुमार जैन ने हरिशंकर परसाई और गजानन माधव मुक्तिबोध पर जो संस्मरण लिखे हैं, उससे उनके सर्जनात्मक संघर्ष को

समझने में सुविधा होती है। इन लेखकों का जीवन-संघर्ष बहुत कठिन था। दोनों ने विपन्नता में साहित्य सृजन किया। जीवन-संघर्ष में आने वाली आर्थिक चुनौतियों और मुश्किलों से पार पाने, या कहें कि दैनंदिन जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन्होंने जो साहित्य-सृजन का रास्ता चुना, वह जीवन के अंतिम दिन तक चलता रहा। इनपर लिखे संस्मरण तथा इनके पत्रों को पढ़कर एक बात कही जा सकती है कि 'श्रेष्ठ साहित्यसृजन का रास्ता आर्थिक विपन्नता से होकर जाता, वह भी बिना वैचारिक विचलन के।' ये आर्थिक विपन्नता इन दोनों ने स्वयं चुनी थी। इन दोनों साहित्यकारों ने लोभ और लालच का संवरण किया। इन्होंने अपने जीवन में वैचारिक समझौता कभी नहीं किया। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी नहीं।

कान्तिकुमार जैन कृत 'महागुरू मुक्तिबोध: जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर' के केंद्र में मुक्तिबोध हैं लेकिन मुक्तिबोध के अलावा इस संकलन में कुल बारह और संस्मरण हैं जो व्यक्ति साहित्य से जुड़े हुए थे और कांतिकुमार जैन के मित्र भी थे। इनमें कई ऐसे हैं जो मुक्तिबोध के शिष्य थे। शिष्य इस रूप में कि उन्होंने मुक्तिबोध की संगत में साहित्य का अध्ययन और लेखन दोनों शुरू किया।

'घर का जोगी जोगड़ा' (2006) काशीनाथ सिंह का पहला संस्मरण संकलन है। इसमें काशीनाथ सिंह ने अपने बड़े भाई और हिंदी के प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह पर विभिन्न समय में लिखे अपने संस्मरणों का संकलन किया है। 'घर का जोगी जोगड़ा' नामवर सिंह की जीवनी तो नहीं है लेकिन जीवनी के जैसा ही है! उसके बहुत क़रीब। क्योंकि इसमें नामवर सिंह के जीवन का लगभग सांगोपांग वर्णन है। काशीनाथ सिंह ने अपने संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के साथ–ही–साथ परिवेश और समूचे वातावरण को एक सशक्त पात्र के रूप में सृजित किया है। ऐसा वह शायद इसलिए कर पाए क्योंकि वह एक कथाकार से संस्मरणकार बने। अपने संस्मरण में जब वह अपने गाँव 'जीयनपुर' का वर्णन प्रस्तुत करते हैं, तो एक कहानी के पात्र की तरह उसका परिचय और चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करते हैं।

आत्मकथात्मक संस्मरण

इस श्रेणी में वे संस्मरण आते हैं जिनमें लेखक ने अपने जीवन-स्मृतियों को बेतरतीबी से सर्जा है। इस तरह की रचना के केंद्र में लेखक स्वयं होता है लेकिन साथ-ही-साथ उससे जुड़े लोग और परिवेश भी बहुत खूबसूरती से उभर कर सामने आते हैं। कांतिकुमार जैन का 'बैकुंठपुर में बचपन' हो, या रवीन्द्र कालिया का 'ग़ालिब छूटी शराब' या ममता कालिया का 'कितने शहरों में कितनी बार', ये सभी आत्मकेंद्रित और आत्मकथात्मक श्रेणी के संस्मरण हैं। इन संस्मरणों में रचनाकार ने अपने जीवन और संघर्ष के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिवेश को बखूबी प्रस्तुत किया है।

'बैकुंठपुर में बचपन' कान्तिकुमार जैन के बचपन की स्मृतियां प्रमुखता से चित्रित हुई हैं। इसमें न सिर्फ बाल्यकाल की स्मृतियाँ प्रमुखता से वर्णित हैं बल्कि बचपन के माध्यम से तत्कालीन छत्तीसगढ़ की कोरिया रियासत, जोकि आदिवासी बहुल क्षेत्र है, उसकी सामाजिक- राजनैतिक संरचना को जानने में मदद मिलती है। समाज, संस्कृति, तत्कालीन राजव्यवस्था आदि का प्रामाणिक चित्रण है। तत्कालीन छत्तीसगढ़ के आदिवासी समाज को समझने की दृष्टि से, कान्तिकुमार जैन को जानने-समझने की दृष्टि से, यह संस्मरण संकलन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

संस्मरण एक ऐसी विधा है जिसमें अन्य विधाओं का संपुट होता है। अन्य विधाओं का संपुट संस्मरण-शैली के रूप में विकसित होता है। विश्वनाथ त्रिपाठी के संस्मरणों में भी कई शैलियों का प्रयोग दृष्टिगोचर है। 'गुरु जी की खेती-बारी' का आरम्भ ही आत्मकथात्मक संस्मरण शैली में हुआ है। विश्वनाथ त्रिपाठी 'शिष्यों से पहले गुरु वंदना' नामक संस्मरण में अपने बालपन के उस समय को याद किया है जब वह अक्षर ज्ञान के लिए गाँव के स्कूल में कुछ दिन गए। वह कहने को स्कूल था लेकिन स्कूल जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। गाँव के ही बगल वाले गाँव में, एक मास्टर गाँव के शिवाला में कुछ बच्चों को पढ़ाया करते थे। उनका नाम राम रच्छा पंडित था और स्कूल का नाम गयाप्रसाद शिवाला पाठशाला। इस पाठशाला में कोई औपचारिक शिक्षा नहीं ले पाए क्योंकि उनको कुछ ही दिनों बाद बिस्कोहर छोड़ना पड़ा और शोहरतगढ़ जाना पड़ा। अपने इस छोटे से संस्मरण में विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने गुरु राम रच्छा पंडित और दो-तीन बाल सखाओं को जिस रूप में स्मरण किया है, वह उनके बहुत संवेदनशील होने का परिचायक है। अध्यापक द्वारा पढ़ाया गया तुलसीदास का शरद ऋतु वर्णन और उसका स्मरण भी मार्मिक है !

इस संकलन का दूसरा संस्मरण 'पिटते-पिटते बचे 'गुरूजी' है। यह कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बहुत रोचक संस्मरण है। इसमें 'गुरूजी' कोई और नहीं, बल्कि विश्वनाथ त्रिपाठी स्वयं हैं। शिष्य उनका अपना छोटा भाई है। मास्टर का विद्यार्थियों में रौब होता है, भाई को पढ़ाने के बहाने ही सही विश्वनाथ त्रिपाठी भी इस अवसर का भरपूर फायदा उठाने की कोशिश करते हैं। वे भी मास्टर बनना चाहते हैं। अपने से किसी छोटे को पढ़ाने के अवसर मिलता है वे तुरंत अपनी भूमिका में आ जाते हैं। अपने शिक्षक की नक़ल करने लगते हैं। बच्चों को मारने का कोई अवसर वे नहीं छोड़ते हैं। देर होने या सवाल ग़लत होने पर उन्होंने जैसे ही अपने भाई पर एक -दो छड़ी चलाई, वैसे ही भाई ने प्रतिकार कर उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार करने लगा, इस घटना से विश्वनाथ त्रिपाठी डर गए। ऊपर से माँ की डांट ने उन्हें और हताश कर दिया भी। दूसरी बार उनको पढ़ाते समय तब डर लगा, जब वे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के बेटे को पढ़ा रहे थे। इन दो घटनाओं को उन्होंने बेहतरीन ढंग से उल्लेख किया है। विश्वनाथ त्रिपाठी ने जिस ईमानदारी और रोचकता के साथ इन घटनाओं का वर्णन किया है, वह प्रशंसनीय हैं। यही उनकी विशेषता है। छोटी-छोटी बातों को जिस अंदाज़ में प्रस्तुत करते हैं, वह विशेष है।

रवीन्द्र कालिया कृत 'ग़ालिब छूटी शराब' बहुत चर्चित आत्मकथात्मक संस्मरण है। 'ग़ालिब छूटी शराब' के बहुधा संस्मरण विभिन्न समय में लिखे गए हैं लेकिन लेखक ने उन संस्मरणों को ज्यों का त्यों उठाकर इसमें नहीं रख दिया है। लेखक ने आवश्यक विषय की चर्चा करते हुए, उसे संक्षेप में प्रस्तुत किया है। रवीन्द्र कालिया के संस्मरण की विशेषता है अपने समय की चुनोतियों की शिनाख्त। 'ग़ालिब छूटी शराब' में रवीन्द्र कालिया के जीवन की बहुत सारी बाते हैं लेकिन इसके अलावा तत्कालीन साहित्यकारों, कलाकारों के जीवन संघर्ष से जुड़े किस्सों-कहानियों की भरमार है। नयी कहानी आन्दोलन के बाद नयी कहानी के रचनाकारों का संघर्ष हो या प्रेमचंद के समय से लिख रहे उपेन्द्रनाथ अश्क का जीवन संघर्ष हो। मोहन राकेश के जीवन और साहित्यिक लेखन पर बहुत प्रमाणिक चीजें यहाँ दर्ज हैं। इसके अलावा गीत और संगीत के क्षेत्र में संघर्षरत सुदर्शन फ़ाकिर, जगजीत सिंह आदि के जीवन संघर्ष को तथ्यात्मक ढंग से उकेरा है। रवीन्द्र कालिया के 'ग़ालिब छूटी शराब' में बहुधा ऐसे प्रसंग हैं कि उन्होंने अपनी कहानी से उठा लिया है। बहुधा ऐसी कहानियां हैं जो उनके जीवन के अनुभवों पर आधारित हैं। यही कारण है कि अनेक ऐसे प्रसंग हैं जब उनको

अपनी कहानी के प्रसंग, यह नायक – नायिका की स्थिति और लेखक की स्थिति समान होने के कारण उसे उद्धृत करना पड़ा है।

कुछ लोगों के अनुभव इतने व्यापक होते हैं कि वे जब संस्मरण लिखने बैठते हैं तो उनके लिए चुनाव करना मुश्किल हो जाता है कि किस पर लिखें और किसको छोड़ें। ममता कालिया की दुविधा कुछ इसी प्रकार की है। उन्होंने अपने संस्मरण 'कितने शहरों में कितनी बार' में कई शहरों और लोगों के बारे में लिखा है, फिर बहुत सी चीजें छूट गयी हैं। अपने इस द्वंद्व के बारे में वे लिखती हैं- "जितने शहरों पर लिखा उतने से ज्यादा अभी मेरे अन्दर कसमसा रहे है, अपनी हरी-पीली-लाल बत्तियों के साथ जल-बुझ-जल रहे हैं। कभी लखनऊ का गौतमपल्ली और हजरतगंज यादों में कौंध जाता है, कभी काठगोदाम का डाकबंगला। यकायक ध्यान आ जाता है भिलाई का साफ़-सुथरा परिसर कि उसके ऊपर सुपर इम्पोज हो जाती हैं भोपाल की ऊँची-नीची सड़कें।"[6] ममता कालिया के संस्मरण में उनके जीवन से जुड़े तमाम प्रसंग उभरकर आते हैं।

आत्मकथात्मक संस्मरण में 'आत्म' के साथ-साथ 'पर' का मिला-जुला रूप होता होता है लेकिन केंद्र में 'पर' की अभिव्यक्ति होती है। संस्मरणकार के ध्यान अपना 'आत्म' नहीं बल्कि 'पर' होता है, इसलिए यह आत्मकथा न होकर, आत्मकथात्मक संस्मरण के रूप में होती है। आत्मकथ्य के रूप में लिखे गए संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ संस्मरणकार के जीवन के विभिन्न पक्ष उभरकर आते हैं।

कहानीपरक संस्मरण

संस्मरण एक ऐसी विधा है जिसमें गल्प की बहुत कम गुंजाईश होती है। जिस व्यक्ति पर संस्मरण लिखा जाता है उससे भेंट आवश्यक है। इस विधा को यथार्थवादी विधा की कोटि में रखा गया है। इसमें कुछ अलग से जोड़ पाना संस्मरणकार के लिए चुनौतिपूर्ण होता है। संस्मरणकार के पास अभिव्यक्ति कौशल है जिसके माध्यम से वह अपने पाठकों को बाँध और प्रभावित कर सकता है। यह अभिव्यक्ति कौशल विश्वनाथ त्रिपाठी में बखूबी है। अपने संस्मरणों में उन्होंने वास्तविक घटनाओं को कुछ इस अंदाज में प्रस्तुत किया है कि वे आख्यान का आस्वाद देती हैं। लगता ही नहीं कि हम कोई यथार्थपरक चीज़ पढ़ रहे। अपने संस्मरणों में विश्वनाथ त्रिपाठी ने उन लोगों को कुछ ऐसे रूप में प्रस्तुत किया है कि जैसे वह किसी आख्यान के नायक हों- स्नेह उर्फ़ चन्द और चंद्रशेखर चंदोला ऐसे ही चरित्र हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी का बचपन गाँवों में गुजरा और बहुत संघर्षमय रहा। इसलिए उनके

संस्मरणों में विविधता बहुत है। शहर और गाँव दोनों का अनुभव होने से रोचकता बनी रहती है। ग्रामीण परिवेश होने की वजह से उनके संस्मरणों में एक प्रकार की अतिरिक्त संवेदनशीलता परिलक्षित होती है। उनके संस्मरणों में नाटकीय तत्त्व भी भरे पड़े हैं।

राजेश जोशी समकालीन हिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। कविता के अलावा उनका गद्य विशेषकर उनकी डायरी - 'एक कवि की नोटबुक', हिंदी पाठकों के बीच बहुत लोकप्रिय रही है। राजेश जोशी का गद्य एकदम अलहदा है। उनका संस्मरण भी पाठकों के बीच बहुत पसंद किया गया। 'किस्सा कोताह' अपने तरह की एकदम अलग कृति है। जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है 'किस्सा कोताह' (एक गप्पी का रोजनामचा) यह किताब रोचक किस्सों-कहानियों से भरी हुई है। ये किस्से-कहानियों गल्प के अंदाज़ में यथार्थ की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं। इसका गद्य जीवंत एवं रोचक है। इन किस्सों के बारे में संस्मरणकार का मानना है- "किस्सों का नगर, ऐसा नगर है जहाँ हमारे पूर्वज हमेशा ज़िंदा रहते हैं। वे जिंदा लोगों के साथ, जिंदा लोगों की तरह बोलते - बतियाते, हंसते - गाते हैं और बाजवक्त नाराज़ भी होते हैं।"[7]

एक संस्मरणकार के रूप में राजेश जोशी को ऐसा लगता है कि कथा-कहानियों का विकास संस्मरण से ही हुआ है। वे किस्से-कहानियों के सूक्ष्म अंतर को भी जानते हैं। किस्सा और कहानी सुनने-सुनाने का अपना तौर-तरीका होता है। राजेश जोशी ने किस्सा-कोताह लिखने से पूर्व किस्सों का, उसके स्वरुप और सैद्धांतिकी का बारीक अध्ययन किया है, इससे किस्सों के साहित्यिक अध्ययन की एक सैद्धांतिकी विकसित हुई जान पड़ती है। किस्सा सुनने-सुनाने के भी कुछ क़ायदे हैं। उन्हें बचा पायें तो बहुत अच्छा। जैसे, किस्सों में वर्णित विषयवस्तु या घटनाक्रम के यथार्थता की पड़ताल न करें। उसे वस्तुपरक यथार्थ मानने का आग्रह न करें। वे लिखते हैं- "किस्सों का नगर किस्सों ने रचा है। उसमें आना है तो तथ्यों को ढूँढने की जिद छोड़कर आओ।"[8]

राजेश जोशी ने अपने संस्मरण को एक गपोड़ी की 'गप्प' कहा है। इसके अध्ययन के समय तथ्यात्मक पड़ताल से दूर ही रहने का सुझाव दिया है; लेकिन अगर इस गप्प में से कुछ महत्त्वपूर्ण किस्सों-कहानियों-गप्पों को चुन निकाला जाए, तो वह साहित्य, इतिहास और समाजशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण जान पड़ते हैं। 'किस्सा कोताह' कोरी गप्प भी नहीं है और ना ही पूर्णतः तथ्यविहीन।

लोक जीवन में सुनाये जाने वाले किस्सें और कहानियों से लोक स्मृतियाँ जुड़ी होती हैं। इसमें लोक रचता-बसता है। इन किस्सों के माध्यम से समाज की वे बातें अपना स्वरुप बदलकर आती हैं जो होती तो सच हैं लेकिन किसी के पास कहने का साहस नहीं होता। सच कहने पर ख़तरे बढ़ जाते हैं। कहने वाले के साथ नतीज़ा कुछ भी हो सकता है ! इसलिए समाज कड़वा से कड़वा सच, लोक किस्सों - कहानियों में अपना रूप बदलकर मिल जाता है। ये लोक स्मृति से जुड़े होते हैं तो इन किस्सों में हजारों वर्ष का समाज और इतिहास रचा-बसा होता है। 'किस्सा कोताह' भी इसका अपवाद नहीं है। 'किस्सा कोताह' में न सिर्फ़ लेखक के बचपन और संघर्षपूर्ण जवानी के किस्से हैं बल्कि कई शहरों की लोक स्मृतियाँ समाहित हैं। इन शहरों का समाज, संस्कृति, इतिहास जीवित है।

लोक-स्मृति इतिहास को अपने तरह से सुरक्षित रखती है। वह तथ्यात्मक रूप से शत-प्रतिशत भले न सत्य हो, लेकिन उसमें जो समाज से जुड़े किस्से हैं, इतिहास से जुड़ी कहानियां और संस्कृति से जुड़ी गप्प है, उन्हें सिरे से नकारा नहीं जा सकता। इस बात की पुष्टि के लिए हम नरसिंहगढ़ के बारे में समाज में प्रचलित कहानी को देख सकते हैं- "चारों ओर विन्ध्याचल की पहाड़ियों का परकोटा था। बीच में एक कटोरे जैसा क़स्बा था - नरसिंहगढ़। पहले नरसिंहगढ़ का नाम टोपलिया गाँव था। लगभग सत्रहवीं सदी के मध्य में पहले महाराज दीवान परशुराम सिंह घूमते हुए नरसिंहगढ़ आये थे। उन्हें जगह भा गयी। चारों तरफ पहाड़ थे और बीच में घना जंगल था। उन्होंने यहाँ अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया। इससे पहले उनकी राजधानी पाटन में थी। पाटन राजगढ़ के पास था। भाई - भाई के बीच बंटवारे के बाद परशुराम जी को लगा कि राजधानी को कहीं और ले जाना चाहिए। नरसिंहगढ़ उन्हें पसंद आया। उन्होंने अपने इष्टदेव नरसिंह भगवान् का मंदिर बनवाया और नरसिंहगढ़ के किले की नींव रखी। इसके बाद ही टोपलिया गाँव का नाम बदलकर नरसिंहगढ़ कर दिया गया।"[9] नरसिंहगढ़ के सम्बन्ध में प्रचलित इस लोक कहानी के बारे में हमें नहीं पता कि तथ्यात्मक रूप से सही है या ग़लत, लेकिन बहुत से ऐसे ऐतिहासिक स्थान हैं या लगभग सभी ऐतिहासिक स्थलों के बसने के बारे में ऐसी ही कहानियां प्रचलित हैं। लोक स्मृतियाँ हमेशा ग़लत भी नहीं होतीं। यह कहानी टोपलिया गाँव के नरसिंहगढ़ और रियासत की राजधानी बनने की प्रक्रिया को दिखाती है। इससे यह विदित होता है कि टोपलिया गाँव के नरसिंहगढ़ बनने की कहानी लोक में रची-बसी है और यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती है। नरसिंहगढ़ के सम्बन्ध में प्रचलित यह कहानी नरसिंहगढ़ वालों के लिए जातीय स्मृति से जुड़ गयी है। यह उसकी पहचान बन गयी है। यह

नरसिंहगढ़ का अभिन्न हिस्सा बन गयी है। इस कहानी के बिना नरसिंहगढ़ का इतिहास और साहित्य रस विहीन जान पड़ेगा। किस्सा कोताह में ऐसे ऐतिहासिक तत्त्वों की भरमार है।

किस्सा कोताह की विधा का निर्धारण बहुत कठिन कार्य है। यही कारण है कि उसका शिल्प भी बहुत जटिल है। लोग आत्मकथा समझने की भूल कर बैठते हैं जबकि आत्मकथा के तत्त्व तो हैं लेकिन वह आत्मकथा नहीं है। ना ही जीवनी। इसमें आत्मकथा भी है, जीवनी, संस्मरण और डायरी के तत्त्व भी मिलते हैं। इस सम्बन्ध में राजेश जोशी लिखते हैं- "हर आत्मकथा का कुछ हिस्सा या बहुत बड़ा हिस्सा मनगढ़ंत या कल्पित होता है। और हर कथा या उपन्यास का कुछ हिस्सा या बहुत बड़ा हिस्सा आत्मकथात्मक होता है। बहुत कुछ बताने के अभिनय में बहुत कुछ छिपा जाने की चतुराई अंतर्निहित है। दोनों ही माल मिलावटी हैं। सोने में भी मिलावट न करो तो अच्छा गहना नहीं बनता।"[10] आजकल मिश्रित विधाओं का बड़ा जोर चला है।

काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में भी किस्सागोई दिखाई देती है। काशीनाथ सिंह मूलतः कथाकार हैं। उनका कथाकार व्यक्तित्व संस्मरण में भी उभरता है। यही कारण है कि उनके संस्मरणों को कथा रिपोर्ताज या कथा-संस्मरण भी कहा गया। इस बात को और स्पष्ट करने के लिए हम उनके संस्मरण से उस प्रसंग को यहाँ देखेंगे। 'याद हो कि न याद हो' में 'होलकर हाउस में हजारीप्रसाद द्विवेदी' पर लिखे संस्मरण में किस्सागोई दिखाई देती हैं। इसमें उन्होंने हजारीप्रसाद द्विवेदी के साथ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वहाँ के अन्य आचार्यों द्वारा किये गये षड्यंत्र को दिखाया है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हजारीप्रसाद द्विवेदी की पुनः नियुक्ति और उसपर हुए विवाद तथा इस सबसे बचने के लिए कुलपति द्वारा उन्हें रेक्टर के पद पर नियुक्त करना आदि को विस्तार से बताया गया है। काशीनाथ सिंह ने दिखाया है कि हजारीप्रसाद द्विवेदी के बनारस पुनः आगमन को लेकर, विश्वविद्यालय दो वैचारिक धड़ों में बंट गया था। एक वह धड़ा है जिन्होंने उनके साहित्य को पढ़ा है और उनके समर्थक हैं। उनको उम्मीद है कि साहित्य का शिखर पुरुष जब किसी प्रशासनिक पद पर बैठेगा, तो विश्वविद्यालय के हित में निर्णय लेगा। दूसरा वे लोग हैं जो उनके विरोधी है। ये वे लोग हैं जो पढ़ने-लिखने के लिए, बल्कि मारपीट-दंगा-फसाद के लिए बदनाम है। एक तीसरी भी धारा है जो हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस निर्णय से हतप्रभ है। वे इस दुविधा में हैं कि क्या पता हजारी प्रसाद द्विवेदी इस पद–प्रतिष्ठा को ठुकरा दें क्योंकि यह उनके साहित्यिक और मानवीय व्यक्तित्त्व से मेल नहीं खाती। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में छात्र-संघ चुनाव के दौरान, जब हारे हुए समूह (अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्) के छात्रों ने जीते हुए दूसरे समूह के छात्रों को मारना-पीटना शुरू किया, तब हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जो निर्णय लिया

था, उस निर्णय के संबंध में काशीनाथ सिंह उनसे मिलने जाते हैं। उस मुलाकात के दौरान हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सुनाए गए धुनिया के किस्से का जिक्र काशीनाथ सिंह करते हैं- "एक धुनिया था। रुई धुनता था और मौज-मस्ती से रहता था। खाने-पीने, परिवार चलाने भर को मिल जाता था। न किसी बात का ग़म और न कोई चिंता। उन्हीं दिनों एक देश के शत्रु राजा ने उसके देश पर हमला किया। फौज में भर्ती शुरू हो गयी। धुनिया सोचा – यही मौका है। अनुभव भी है धुनकी चलाने का। जब मैं यह धुनकी चला सकता हूँ तो वह धुनकी भी चला सकता हूँ। रुई धुन सकता हूँ तो दुश्मन भी धुन सकता हूँ। वह यह सबकुछ सोचकर सेना में भर्ती हो गया और संयोग देखो कि लड़ाई के मोर्चे पर जो पहली गोली चली, वह उसी को लगी।"[11] इसी संस्मरण में वह एक और किस्से का जिक्र करते हुए लिखते हैं- "नदी की धारा में बाबा जी ने एक काली – सी चीज़ बहती हुई देखी। सोचा, कम्बल है। किसी तरह हासिल हो जाए तो काम बने। वे चेलों के रोकते-रोकते धारा में कूद पड़े। कम्बल के पास पहुँचने पर पता चला कि भालू है जो धारा में बहा चला जा रहा है। अब बाबा जी अपने को छुड़ाएं और वह छोड़े नहीं। चेले चिल्लाने लगे – बाबा जी ! छोड़िये कम्बल ! चले आइये ! बाबा जी ने कहा – 'बच्चा, मैं तो छोड़ना चाहता हूँ, कमरिया ही मुझे नहीं छोड़ना चाहती !'"[12] किस्सागोई काशीनाथ सिंह के संस्मरण की विशेषता है। वह किस्सा-कहानी के माध्यम से बहुत सी ऐसी बातों और परिस्थितियों का चित्रण करते हैं जिसे सीधे तौर पर नहीं कहा जा सकता। या सीधे-सीधे बता पाना संभव नहीं।

शैलीगत वैविध्य के अन्य बिंदु

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में पत्रात्मक शैली, संवादात्मक शैली, समीक्षात्मक शैली आदि का प्रयोग हुआ है। संस्मरणकार इन शैलियों का प्रयोग तो करता है लेकिन संस्मरण साहित्य के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए करते हुए। लेखक इन शैलियों को अभिव्यक्ति का माध्यम हुए उसे संस्मरण के ढांचे में ढाल देता है।

संस्मरण में आत्मपरकता और वस्तुपरकता महत्त्वपूर्ण चीज़ होती है। संस्मरणकार असत बयानी नहीं कर सकता, ऐसा करने पर उसकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है। इसमें घटना और पात्र वास्तविक होते हैं। काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में पत्रों का उल्लेख खूब मिलता है। इससे प्रमाणिकता बढ़ती है। काशीनाथ सिंह ने अपने क़रीबी कई मित्रों के पत्रों को उद्धृत किया है। नामवर सिंह के बाद रामाधार सिंह पर लिखा उनका संस्मरण कुछ ऐसा ही है। दोनों के बीच हुए पत्राचार को काशीनाथ सिंह ने कई उद्धरणों के माध्यम से आपसी बातचीत के नमूने को पेश किया है। आपसी पत्राचार के उद्धरणों को पढ़कर यह आभास होता है कि सहजता, आत्मीयता किसी संबंध को बनाये रखने में कितनी महती भूमिका निभाती है। इसमें उनके संबंधों की प्रगाढ़ता का भी आभास मिलता है। अनौपचारिकता और आपसी सहजता दिखाई देती है।

विश्वनाथ त्रिपाठी के संस्मरण की भाषा विषयवस्तु के अनुकूल ही है। संस्मरण की विषयवस्तु जैसी है, परिवेश जैसा है, व्यक्ति जैसा है, उसकी पृष्ठभूमि जैसी है, विश्वनाथ त्रिपाठी के संस्मरण की भाषा भी वैसा ही रूप धारण करते हुए चलती है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में प्रतीकों का बहुत प्रयोग हुआ है। लगभग सभी संस्मरणकारों के यहाँ कुछ न कुछ ऐसे किस्से और कहानियां हैं जो प्रतीकात्मक प्रयोग के तौर पर आई हैं। इसके प्रयोग से संस्मरण में जान आ गयी है।

राजेन्द्र यादव कृत 'औरों के बहाने' में 'एंटन पाव्लोविच चेखव : एक इंटरव्यू' जैसा शीर्षक से ही स्पष्ट है कि लेखक ने चेखक का इंटरव्यू लिया है, लेकिन संस्मरण को पढ़कर कहीं से ऐसा नहीं लगता है कि यह इंटरव्यू है। इसे यह कहा जा सकता है कि इंटरव्यू के रूप में संस्मरण है। चेखव का राजेन्द्र यादव से बात करते हुए, अपनी पत्नी के बारे में बात करना, अपने युगीन गोर्की, मिखायल, अलैक्जैन्द्र जैसे तमाम लेखकों के पत्रों का जिक्र करना, अपने जीवन के अनेक प्रसंगों को सहज रूप में खोलकर रख देना आदि को जिस शैली में रेखांकित किया गया है उससे पाठक इसके विधा निर्धारण में कुछ पल के लिए भ्रमित होता है। इस इंटरव्यू में चेखव अपने जीवन से जुड़े तमाम संस्मरणों को याद करते हैं जिसमें टाल्सटॉय, गोर्की आदि लेखक हैं। इसमें गोर्की की पुस्तक 'चेखव, टाल्सटॉय और एन्द्रीव के संस्मरण' का

जिक्र किया है। राजेन्द्र यादव ने इसे चेकव के संस्मरणों को आधार बनाकर अपने संस्मरण का हिस्सा बनाया है।

कृष्णा सोबती का लेखकीय व्यक्तित्व हमेशा से प्रभावकारी रहा है। उनकी लेखकीय प्रतिभा, शैलीगत प्रयोग की ओर हमेशा उन्मुक्त रहा है। एक अलग प्रयोग उनके संस्मरण 'हम हशमत भाग-तीन' में भी दिखाई देता है। लेखिका सत्येन पर संस्मरण लिखते समय ऐसा बिम्ब खींचती हैं कि पाठक अपने आप को लेखकों के वार्तालाप में उपस्थित पाता है। ऐसा कहीं से नहीं लगता है कि रचना का पाठ किया जा रहा है बल्कि पाठक उस वाद-विवाद-संवाद में खुद को मौजूद पाता है। कृष्णा सोबती अपने लेखकीय प्रतिभा के माध्यम से रचना का मूर्त रूप हमारे सामने उपस्थित करती हैं। यह एक लेखक और संस्मरण विधा की खासियत है। इससे संस्मरण में रोचकता बनी रहती है। कृष्णा सोबती के संस्मरणों में तीखे तेवर और व्यंग्यात्मक शैली का ऐसा चित्रण हुआ है कि वह बिल्कुल स्वाभाविक लगता है। उनके संस्मरण में प्रसंगानुसार तेवर बदलते रहते हैं। विभूतिनारायण राय द्वारा महिलाओं पर 'छिनाल' शब्द की टिप्पणी किये जाने पर वह अपने आक्रोश को इस शैली में व्यक्त करती हैं- "चांसलर साहिब इन कलमवाली छिनालाओं के नाम तो बहुत तेजी से उभर रहे हैं। लोकतंत्र की नागरिक होने के नाते बहुत तेजी से उभर रही हैं। शिक्षित होना सिर्फ जिन्दगी का लुत्फ़ उठाना ही नहीं होता। लुत्फ़ उठाना भी होता है। क्या बताने की कोशिश करेंगे कि इन गुमराह लेखिकाओं और उन द्वारा रचित कृतियों की उपस्थिति साहित्य के साँझे क्षेत्र से बाहर पड़ती है रेड-लाईट एरिया की तरह।"[13] इन्होंने अपने संस्मरण में रवींद्र कालिया को 'छह फुटीया हस्ती' शीर्षक से याद किया है। रवीन्द्र कालिया पर लिखे गए संस्मरण को पढ़ कर ऐसा लगता है कि दोनों के सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे। इन पर लिखे गए संस्मरण में एक तनाव दिखाई देता है यह तनाव दोनों के आपसी सम्बन्धों और वैचारिक मतभेदों का है। पूरा संस्मरण व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया है। कृष्णा सोबती का व्यक्तिगत सम्बन्ध रवीन्द्र कालिया से जैसा भी रहा हों वे उसे बेवाकी और स्पष्टता के साथ जग जाहिर करती हैं।

देवेंद्र सत्यार्थी के संस्मरण 'यादों के काफिले' के संपादक प्रकाश मनु लिखते हैं कि इन्हें शैली में बंधकर लिखना रुचिकर नहीं है। वैसे संस्मरण लचीली विधा है। इसमें अन्य शैलीगत विशेषता का आना स्वाभाविक है। आज के दौर में तमाम संस्मरण ऐसे हैं जो कभी आत्मकथा के निकट दिखाई देते हैं तो कभी जीवनीपरक या रेखाचित्रात्मकता की ओर झुके हुए हैं। इस संदर्भ में देवेंद्र सत्यार्थी स्पष्ट कहते हैं- "किसी एक शैली में बंध जाना मुझे कभी रुचिकर नहीं हुआ। मैं एक सब्जी को दूसरी में मिलाकर खाने का शौकीन हूँ और जहां तक दही का सम्बंध है, इसे मैं हर सब्जी में मिलाकर खाने का समर्थक हूँ। अतः यदि मैंने निबन्ध को रेखाचित्र में

मिला दिया तो इसमें भी मुझे अपराधी न ठहराया जाए।"[14] इनके संस्मरण 'एक युग : एक प्रतीक' और 'कला के हस्ताक्षर' में इन्होंने विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े हुए व्यक्तित्व को रेखांकित किया है। जिसमें "लिहाजा निबन्ध, यात्रा-वृत्त और कहीं- कहीं रेखाचित्र से घुले-मिले होने के बावजूद ये बुनियादी रूप से संस्मरण ही हैं, इसमें दो राय नहीं हो सकती।"[15] इन्होंने अपने यात्रा से जुड़े संस्मरणों में तमाम रोचक प्रसंगों को उद्धृत किया है। हालांकि, इसमें भटकाव दिखाई देता है। लेखक बाँध नहीं पाता है फिर भी वह ऐसी तमाम चीजों को दिखाने की कोशिश करता है जो संस्मरण के नयेपन को परिलक्षित करता है। लेखक अपनी यात्रा की अनुभूतियों को बताते हुए यात्रा के प्रति असीम प्रेम को बच्चे के प्रति मां के हृदय की वात्सल्यता से जोड़कर देखना नहीं भूलता है। इसी के साथ वे पहाड़ी प्रदेश में प्रकृति की रमणीयता को रेखांकित करते हैं।

राजेन्द्र यादव समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में एक महत्त्वपूर्ण नाम है। उनका सम्पूर्ण लेखन ही चली आ रही पुरानी लेखन परम्परा के प्रति विद्रोह है। साहित्य की स्थापित मान्यताओं को खंडित करना, नयी चुनौतियों से मुठभेड़, उनका प्रिय शगल रहा है। यही रवैया उन्होंने अपने संस्मरण लेखन में भी अपनाया है। वे बनी-बनायी देवमूर्तियों का ध्वंस समय–समय पर करते रहे हैं। उनके दो संस्मरण– 'वे देवता नहीं हैं' और 'औरों के बहाने', इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। राजेन्द्र यादव ने अपने संस्मरणों के माध्यम से हिंदी में संस्मरण लेखन को नयी सैद्धांतिकी दी। यही उनके संस्मरण साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। उनका मानना है कि हिंदी में संस्मरण लेखन का रिवाज़ मृत्युपरांत है। मृत्युपरांत संस्मरण लेखन की विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है। जिसके बारे में लिखा जाता है, वह रहा नहीं, ऐसे में उसके बारे में भला-बुरा कुछ भी लिखा जा सकता है। वह तो है नहीं, कि वह स्पष्टीकरण दे या प्रमाणिकता सिद्ध करे। ऐसे लेखन में किसी को देवता, तो किसी को खलनायक बनाया जा सकता है। इसकी संभावनाएं अधिक है। अक्सर ऐसा ही होता है। तो उनका मानना है- "अगर कानूनी रूप से अग्रिम ज़मानत ली जा सकती है तो अग्रिम श्रद्धांजलि क्यों नहीं लिखी जा सकती? आज ज़िन्दा बने रहना भी तो अपराध ही है। मरने के बाद लोग दिवंगत के बारे में पता नहीं क्या-क्या लिखते और बोलते हैं, वह बेचारा न उस सबका प्रतिवाद कर सकता है, न उसमें कुछ घटा-बढ़ा सकता है।"[16] इससे श्रद्धांजलिपरक संस्मरण का ढाँचा टूटता ही है उसके साथ एक विधा को सशक्त बनाने का एक महत्त्वपूर्ण कारक सिद्ध होता है।

संस्मरण साहित्य में शैलीगत प्रयोग हर स्तर पर दिखाई देता है। यह तमाम विधाओं की शैलियों को अपने में समेटे हुए कब इनसे अलग हो जाता है, पता नहीं चलता। इसमें कथात्मकता, जीवनी, यात्रा, आत्मकथा आदि सभी विधाओं की शैलियाँ दिखाई देती हैं लेकिन संस्मरण साहित्य इनमें से किसी को अपनी मूल पहचान नहीं बनाता है। वह सब को साथ लेकर चलने के बावजूद भी, इन सबसे अलग है।

संस्मरण साहित्य में परिवेश की भूमिका

आज के संस्मरणों में स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ लेखक प्रकृति के तरफ भी ध्यान देना नहीं भूलता। कृष्णा सोबती सत्येन के घर बियाती हुई शाम का जिक्र करते हुए अँधेरी रात में चांदनी की रौशनी में पहाड़ी दृश्य की मनोरम छवि का चित्रण करती हैं। उस समय के प्राकृतिक सौंदर्य के दृश्य का वर्णन वे कुछ इस प्रकार करती हैं- "किसी आदिम दृश्य की तरह भूपाल ताल अंधेरी की रोशनी में झिलमिला रहा था। दूर किनारों से लगी मुनिया पहाड़ियां अधखुली आंखों आकाश का चँदोवा निहार रही थीं। ताल पर अठखेलियाँ करतीं लहरों की पनीली टोलियाँ हवा के झोंखों से कभी आगे, कभी पीछे।"[17] सत्येन के घर के पीछे बासों की झुरमुट हवा चलने पर संगीत सी ध्वनि निकल रही है। सुबह के समय में उस बसवाड़ी का जिक्र करते हुए लेखिका लिखती हैं- "पिछवाड़े की दीवार से लगा बाँस का घनीला झुरमुट हवा में लहराने लगा था। बेफिक्र निश्चिंत अपनी ही लय में। बीच-बीच में मनमौजी पाखी हमारे ऊपर से उडारी ले अपने-अपने घोंसलों की ओर यह जा और वह जा।"[18] कृष्णा सोबती की स्मृतियों में जयदेव के साथ हिमालय की एक स्मृति कौधती हैं। हिमालय का दृश्य आदिम समय से आकर्षण का केंद्र रहा है। आज भी मनुष्य द्वारा तमाम तरह की कृत्रिमताओं को थोप देने के बाद वह अपनी प्राकृतिक छटा बिखेरता रहता है। हिमालय का बर्फीला दृश्य लेखिका को आकर्षित करता है। वे हिमालय की एक ठंडी का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहती हैं- “जंगले पर खोलकर छाता फैला रखा है और ऊपर तिरपाल। अँगीठी लहक रही है। भुट्टे भूने जा रहे हैं। सामने बाबा साहिब अम्बेडकर की प्रतिमा पथरीली पुख्तगी से जमी है। होटल के बाहर की कार पार्किंग में बड़ा जमावड़ा। लाल बत्तीवाली गाड़ियाँ भी कम नहीं। हिमाचली नौकरशाही। बाबा साहिब की मौजूदगी अपने नागरिक को आगाह करती है और कदम खुद-ब-खुद निर्णय लेते हैं। सिसल जो भी हो-अगर आत्मविश्वास और जेब गर्म हो तो क्या परेशानी है, आत्मविश्वास अब जेब की गर्मी से प्रकट होने लगता है।”[19]

ममता कालिया अपने संस्मरण में अनेक दृश्यों को रेखांकित करती हैं। उनकी स्मृतियों में प्रकृति में मनोरम दृश्य बार-बार कौधतें हैं। जबलपुर के भेड़ाघाट और धुआंधार जल प्रपात का मनोरम दृश्य, उन्हें आकृष्ट करता है। ये प्राकृतिक दृश्य उनसे विस्मृत नहीं होते, बल्कि बार-बार उनकी स्मृतियों में उमड़ते-घुमड़ते रहते हैं। धुआंधार के बारे में वे लिखती हैं- “धुआंधार के ऊपर एक चटक, सतरंगा इन्द्रधनुष मंडरा रहा था। अपनी शोभा में इठलाता हुआ, कुछ कृत्रिम लगा। मुझे लगा हमें घंटों हो गए यहाँ खड़े-खड़े, यह इन्द्रधनुष न हटा न मिटा न रौंदा गया जबकि हमारे दिल्ली-इलाहाबाद के इन्द्रधनुषतो बब्स एक झलक

दिखलाकर ओझल हो जाते हैं। कथाकार संजीव ने बताया जब तक धुआंधार की बूंदें धुप और हवा में उड़-उड़कर वाष्प बनती रहेंगी यह सतरंगा धनुष यहाँ टंगाही रहेगा क्योंकि इन्द्रधनुष बनने की प्रक्रिया निरन्तर चल रही है।"[20]

ममता कालिया का लम्बा समय कलकत्ता में बिता है। उनको वहां की तमाम चीजें आकर्षित करती हैं। कलकत्ता का स्वरुप दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है। लेखिका को कलकत्ता की हुगली नदी का आकर्षण, गंगा जल से सड़क का धुलना आदि रोमांचक लगता है। मैकफर्सन पार्क में गुलमोहर, अमलतास और जैकरंदा के पेड़ भी हैं और हरे-भरे कामिनी के गुम्बद। वहाँ अमरायिओं के बाग़ नहीं, बल्कि एक आम का पौधा है, लेकिन यह हरा-भरा वातावरण गौरैये, बुलबुल, कोयल को आकर्षित नहीं करता। यहां कोयलों की कूक नहीं सुनाई देती। लेखिका कहती हैं कि इतना सब कुछ होते हुए भी थियेटर रोड पर कोयल नहीं कूकती, गौरैया चूं-चूं नहीं करती, तोते टें-टें नहीं करते, कबूतर गुटरगूं नहीं करती। सुबह 4 बजे से बस कौवे कांव-कांव करते हैं –

"सबेरे-सबेरे नहीं आती बुलबुल
न श्यामा सुरीली, न फुटकी, न दह्गल सुनाती है बोली,
न फूलसुंघनी, पतेना सहेली लगाती है फेरे
जैसे ही जागा कहीं पर अभागा, अड़ड़ाता है कागा
कॉय-कांय-कांय
कॉय-कांय-कांय
क्या करें, कहाँ जाएँ
मुँह से यही हाय निकले है मेरे
घत्तेरे नास जाय
सच मुंह अँधेरे सबेरे-सबेरे।"[21]

लेखिका ने अज्ञेय की इस कविता को उद्‌धृत करते हुए, शहर के प्राकृतिक परिवेश और वातावरण के सृजन को चित्रित किया है। शहर बदल रहा है। वहां शान्ति-सुकून नहीं है। जीवन की आपाधापी, बाहरी जीवन को ही नहीं, बल्कि अंतर्मन को भी प्रभावित करती है। लेखिका कलकत्ता के बदलते हुए स्वरूप और शहरों के जीवन की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करती है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में ग्रामीण परिवेश दिखाई देता है। लेखक जिस व्यक्ति-समाज की बात करता हैं वहीं के परिवेश को अपने संस्मरण में समेट लेता है। काशीनाथ सिंह 'घर के जोगी जोगड़ा' में नामवर सिंह की बात करते हुए अपने गाँव जीयनपुर का परिवेश समेटे हुए हैं। जब यह संस्मरण लिखा गया तब काशीनाथ सिंह बनारस में रहते थे। उनका निवास तो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय था, जो शिक्षितों और आभिजात्यों का गढ़ था; लेकिन वह अपनी जन्मभूमि और बनारसी समाज से गहराई से जुड़े हुए थे, यह भी एक कारण है कि उनकी भाषा पूर्वांचली समाज और संस्कृति की जटिल बनावट को बहुत सहज ढंग से प्रस्तुत कर पाने में सक्षम है। वे अपने गाँव का परिचय देते हुए उसकी बनावट और संरचना के बारे में लिखते हैं- "गाँव के पूरब भीटा था – उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ जिस पर एक कतार में ताड़ के पेड़ थे – इसीलिए उसे कुछ लोग ताड़गाँव भी बोलते थे। ताड़ों पर गिद्धों और चीलों का बसेरा था ! उसी पर बैठकर वे सिवान में फेंके हुए या मरे हुए डांगरों का जायजा लेते थे। रातों में अक्सर, उनके उड़ने और पत्तों के खड़खड़ाने की आवाजें आती थीं। और जाड़ों में भोर के समय ताड़ों के बड़े-बड़े पके फल भदभद गिरते तो हम उठकर नींद में दौड़ते और उठा लाते। उनके लिए लूट मची रहती थी।"[22] यहाँ लेखक ने अपने गाँव और परिवार की जो रूपरेखा खींची है, वह एक रूपक है, पूर्वांचल को समझने के लिए।

काशीनाथ सिंह जिस अंदाज़ में वह बनारस का परिचय कराते हैं, वह किसी गैर बनारसी को तो अटपटा लग सकता है लेकिन जो कभी न कभी बनारस रहा है या बनारस का रहने वाला है, उसके लिए इनकी भाषा सहज है। बनारस का परिचय देते हुए वे लिखते हैं, "कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट, और बदन पर जनेऊ – यह 'यूनिफार्म' है अस्सी का !"[23] विश्वनाथ त्रिपाठी कृत 'नंगातलाई का गाँव' कथ्य और शिल्प की दृष्टि से संस्मरण साहित्य की अनुपम निधि है। 'नंगातलाई का गाँव' में लेखक अपने गाँव-जवार के जीवन और परिवेश का सूक्ष्मता के साथ वर्णन करता है। इन विवेचनों से स्पष्ट होता है कि संस्मरणों में परिवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संस्मरण को परिवेश बोझिल होने से बचाता ही नहीं, बल्कि उसे पठनीय और रोचक भी बनाता है।

भाषागत वैशिष्ट्य

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में भाषाई विविधता एक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है। काशीनाथ सिंह, कांतिकुमार जैन, कृष्णा सोबती, विश्वनाथ त्रिपाठी, रवीन्द्र कालिया, राजेन्द्र यादव आदि की भाषा संस्मरण साहित्य को नयी पहचान बनाने में एक महत्त्वपूर्ण कारक सिद्ध हुई है। काशीनाथ सिंह ने अपने कथा साहित्य और संस्मरण साहित्य की भाषा में बहुत अंतर नहीं आने दिया है। उनके पात्र जिस पृष्ठभूमि और परिवेश से आते हैं उनके व्यक्तित्त्व विश्लेषण में उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग उन्होंने किया है।

काशीनाथ सिंह अपने साहित्य में भाषा-प्रयोग को लेकर बहुत सजग थे। उन्होंने बहुत पहले, यह जान लिया था कि साहित्य की भाषा 'ख़ुश्क' होनी चाहिए। न अधिक सूखी और न ही अधिक गीली। काशीनाथ सिंह को कथेतर गद्य लेखन की सुझाव और सीख नामवर सिंह से मिली थी। नामवर सिंह ने 1965 में काशीनाथ सिंह को एक चिट्ठी लिखी। उस चिट्ठी में मुक्तिबोध के निधन के बाद उनके छोटे भाई शरत मुक्तिबोध के निबंध का ज़िक्र था। नामवर सिंह ने काशीनाथ सिंह को संकेतों में ही यह समझाना चाहते थे कि किसी अपने से जुड़े व्यक्ति पर कुछ लिखना हो या लिखने की कभी आवश्यकता पड़े तो किस तरह लिखा जाना चाहिए ! नामवर सिंह ने उन्हें शरत मुक्तिबोध के निबंध को पढ़ने की सलाह दी। इस निबंध की सबसे बड़ी विशेषता उस गद्य की 'ख़ुश्क' भाषा थी। काशीनाथ सिंह के ही शब्दों में, "मैंने वह संस्मरण पढ़ा था लेकिन ऐसा कुछ ख़ास नहीं लगा था। इस चिट्ठी में मेरे मतलब की सिर्फ़ एक चीज़ थी- कि गद्य कैसा हो? ख़ुश्क ! यानी गीला न हो, भीगा न हो – कपड़े की तरह उसे निचोड़कर, पानी निथार कर सुखा लो और जब हल्का, कड़क हो जाए, उसमें चमक आ जाए तब इस्तेमाल करो ! राग-विराग मुक्त गद्य ! यह मेरी समझ थी।"[24] काशीनाथ सिंह ने अपने संस्मरण लेखन में इसी बात का ध्यान रखा है। यही कारण है कि उनके संस्मरण रोचक और सुरुचिपूर्ण होते हैं; न कि ऊबाऊ। गद्य के बारे में उनकी धारणा थी कि भारतेंदु और द्विवेदी युगीन हँसमुख गद्य, जिसमें आत्मीयता, जिंदादिली और मस्ती का पुट हो। हिंदी में चंद्रधर शर्मा गुलेरी और अंग्रेजी में ओ हेनरी, मोपांसा उनके आदर्श थे। अपने पूरे संस्मरण में उन्होंने इन्हीं बातों का ध्यान रखा है। 'देख तमाशा लकड़ी का' एक ऐसा ही संस्मरण है। इसमें काशीनाथ सिंह ने बनारस को एकदम ज़िन्दा उतार दिया है। काशीनाथ सिंह ने विश्वविद्यालय से लेकर घाट तक का बनारस और उसकी संस्कृति को जिस रूप में वर्णित

किया है, वह सिर्फ वहीं कर सकते थे, क्योंकि उनके अलावा किसी दूसरे के पास न वह भाषा है, न ही उतनी पैनी नज़र और बनारस पर पकड़। वे बनारस का परिचय देने से पहले पाठकों को सावधान कर देना मुनासिब समझते हैं। काशीनाथ सिंह प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देते हैं- "यह संस्मरण वयस्कों के लिए है, बच्चों और बूढ़ों के लिए नहीं; और उनके लिए भी नहीं, जो यह नहीं जानते कि अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है। जो भाषा में गन्दगी, गाली, अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषाविद 'परम' (चूतिया का पर्याय) कहते हैं, वे भी कृपया इसे पढ़कर अपना दिल न दुखाएं...।"[25]

जिन लोगों ने काशीनाथ सिंह का संस्मरण साहित्य पढ़ा है, वे उन्हें कथाकार से अधिक सशक्त संस्मरणकार के रूप में जानते और मानते हैं। हालाँकि वह संस्मरण लेखन की तरफ़ तब अग्रसर हुए जब वे कथा लिखकर ऊब चुके थे। वे कथा साहित्य में कुछ नया नहीं दे पा रहे थे। ऐसे में संस्मरण लिखने का संयोग बना। यह संयोग भी अपने बड़े भाई, गुरु, दोस्त, आलोचक नामवर सिंह की 'षष्टिपूर्ति' पर लिखने का बना! कहानी से कथेतर साहित्य की तरफ अग्रसर होने का सफ़र सरल नहीं था। काशीनाथ सिंह ने इस संदर्भ में लिखते हैं – "कहानी से जो चाहता था, वह नहीं हो रहा था मुझसे। और संस्मरण के लिए हिंदी में कोई मॉडल नहीं था मेरे सामने ! जो था वह रुखा, सूखा, बेजान, अनाकर्षक, मांस-मज्जा हीन, ऊष्मा रहित। हड्डियों के निर्जीव ढाँचे की तरह। साथ ही संस्मरण की जगह साहित्य के समाज में उस दलित जैसी थी जिसके लिए 'पंगत' में कोई पत्तल नहीं।"[26] साहित्य में संस्मरण की बहुत खास पहचान नहीं थी। यहाँ एक बात बहुत स्पष्ट है कि हिंदी में तब तक संस्मरण साहित्य हाशिये पर ही था। उसे साहित्य की मुख्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाना अभी शेष था। संस्मरण साहित्य के प्रति यह उपेक्षा काशीनाथ सिंह जैसे नये संस्मरणकार के लिए नयी–नयी कठिनाइयां पैदा कर रही थीं। संस्मरण जैसी अलोकप्रिय विधा में लिखना चुनौतीपूर्ण कार्य था, और ज़ोखिम भी। हालाँकि संभावनाए असीम थीं। कहना न होगा कि काशीनाथ सिंह जैसे प्रयोगवादी कथाकार ने संस्मरण के शास्त्र को बदलने की ठानी। उन्होंने लकीर से हटकर चलने की ठानी। वह संस्मरण को भी कुछ नया दे जाने के लिए कसमसाने लगे। वे लिखते हैं – "मेरा कथाकार संस्मरण के शास्त्र को बदल देना चाहता था लेकिन यह उस पर नहीं, उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों के जीवन पर निर्भर था जो जीने

की निर्धारित शास्त्रीयता को अस्वीकार कर रहे थे !"[27] काशीनाथ सिंह ने जिस संस्मरण-शास्त्र को बदलने का निश्चय किया था, उसमें वह अंततः कामयाब रहे। उनकी सफलता का अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि 'गबीली ग़रीबी वह' के प्रकाशन के बाद जो प्रतिक्रियायें मिलीं, वह किसी उपलब्धि से कम न थी। राजेन्द्र यादव ने भाषा और शैली की प्रशंसा करते हुए यहाँ तक कह दिया कि अगर ऐसी कलम हो तो हिटलर को भी भगवान् बुद्ध का अवतार बनाकर पेश किया जा सकता है।

काशीनाथ सिंह के संस्मरण लेखन पर बनारस और पूर्वांचल का पूरा प्रभाव है। यही कारण है कि उनके लेखन में बनारसी जीवन का अल्हड़पन और भोजपुरी भाषा का चुटीलापन आपस में घुला-मिला रहता है। उनके लेखन के केंद्र में भी इसी से जुड़े लोग या परिवेश है, जो उसे और जीवंत बनाते हैं। काशीनाथ सिंह के संस्मरण का गद्य हँसमुख बन पड़ा या बन पाया है, तो कही न कही उसकी पृष्ठभूमि में बनारसी जीवन में रचा बसा 'हँसमुखपना' है। इस संदर्भ में काशीनाथ सिंह लिखते हैं- "बनारस की मिट्टी और आबोहवा में ही कुछ ऐसा है – फक्कड़ी, अक्खड़ी, हँसी-ठिठोली, व्यंग्य-विनोद, मौज-मस्ती। लेकिन इस किस्म का गद्य किसी टकसाल में नहीं, सड़कों पर, फुटपाथों पर, पंसारी और पनवाड़ी की दुकानों पर, रिक्शों-ठेलों पर मिलता है। इफ़रात भरा पड़ा है ! ज़रूरत है उसे जीने की, साधने की। आलोचना की तो सीमायें हैं लेकिन रचनात्मक साहित्य की कोई सीमा नहीं।"[28] काशीनाथ सिंह ने अपने संस्मरण में प्राण प्रतिष्ठा काशी की लोक-संस्कृति के माध्यम से की है। अब यहाँ उनके संस्मरणों के माध्यम से उनकी विशेषताओं को रेखांकित किया जायेगा।

हिंदी संस्मरण लेखन में काशीनाथ सिंह ने अपनी विशिष्ट शैली के कारण सबसे भिन्न पहचान बनाई है। काशीनाथ सिंह के संस्मरण विषयवस्तु की दृष्टि से जितना समृद्ध हैं, उतने ही नये-नये प्रयोग के लिए भी ! काशीनाथ सिंह के संस्मरणों की आत्मा विषयवस्तु के अनुकूल उनकी भाषा है। काशीनाथ सिंह भाषा के मामले में कबीर के निकट जान पड़ते हैं- 'बन गयी तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर'- वह अपनी बात कह जाते हैं ! काशीनाथ सिंह ने अपने लेखन में भाषा का प्रयोग जिस आत्मविश्वास के साथ किया है, उसके अपने ख़तरे हैं। काशीनाथ सिंह को उन खतरों का सामना भी करना पड़ा। क्योंकि हिंदी साहित्य जगत में आज भी एक प्रकार का शुचितावादी आग्रह है।

काशीनाथ सिंह ने 'आछे दिन पाछे गये' पुस्तक में 'काहानी की वर्णमाला और मैं' शीर्षक संस्मरण में अपनी लेखनी में भाषा के प्रयोगों को लेकर तमाम मत प्रस्तुत किये हैं। काशीनाथ सिंह अपनी भाषा विषयक अभिव्यक्ति को लेकर जाने जाते हैं। उनकी भाषा की रवानगी और पूर्वांचल की गवई महक पाठकों को आकर्षित करती है। इस संस्मरण में उनकी रचनाओं में भाषा विषयक प्रयोंगों के संदर्भ में कितनी कोशिश की है उसी को अभिव्यक्त किया है। वे लिखते हैं- "वह यह कि भाषा हमारी तरह सावयव प्रक्रिया है, जिसके भीतर फैले हुए संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय वैगरह स्नायु-जाल की तरह हैं। यदि वे वाक्य में आये तो इनका निजी अर्थ है जैसा बिना जरूरत के किसी आदमी को कहीं खड़े रहने का हुक्म देना...इस बोध ने जहाँ मुझे भाषा की शक्ति और क्षमता का अनुभव कराया, वहीं मेरा नुकसान भी किया। एक तरह लगा कि मुझे भूल जाना चाहिए कि मैंने विधिवत शैक्षणिक जीवन जिया है, विश्वविद्यालय में पढ़ाई की है, वह भाषा जिसे अब तक देखा, जाना, सुना है, हमारे काम की नहीं है, और दूसरी तरफ यह कि मुझे व्यर्थ और अनावश्यक नहीं लिखना चाहिए, कम से कम शब्दों से अधिक बात करनी चाहिए, सही जगह पर सही शब्द रखने की आदत डालनी चाहिए। (इसी अर्थ में हेमिंग्वे की भाषा मुझे काम की लगी)।"[29] एक लेखक को सफल लेखक बनाने में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा ही विषय की रोचकता को बढ़ाती है। इसलिए, काशीनाथ सिंह अपने रचनाकर्म में भाषा को लेकर काफी सजग दिखाई देते हैं। काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में ग्रामीण चित्रण के दौरान क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने उन्हीं शब्दों को उठाया है जो उस क्षेत्र में प्रयोग होते हैं। काशीनाथ सिंह का ग्रामीण शब्दों का शब्दकोश काफी समृद्ध है। वे लिखते हैं- 'हमारा खेत गाँव के ग्वैड़े ही था तो 'ग्वैड़े' शब्द से इस वाक्य की खूबसूरती बढ़जाती है। 'ग्वैड़े' शब्द का मतलब वही लोग समझ सकते हैं जो पूर्वी उत्तर प्रदेश हो। खासकर जौनपुर, बनारस, आज़मगढ़ आदि क्षेत्रों से। यह शब्द अन्य भाषा भाषियों के लिए परेशानी का सबब बन सकता है लेकिन भोजपुरी भाषियों के लिए भाषाई समृद्धता का प्रतीक है। इसी तरह वे एक और बानगी प्रस्तुत करते हैं जिनमें अनेक गंवई शब्दों का प्रयोग ही नहीं बल्कि गाँव के रहन-सहन, क्रिया-कलाप की झलक भी मिलती है। इसमें अनेक ऐसे शब्द हैं जो भोजपुरी भाषियों द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं जो भाषा की समृद्धता की ओर परिलक्षित करती है- "हमारे यहाँ पूरब गाँव की छनहर थी। गाय बैल महीनों तक वहीं बंधते थे। मड़ई लगती थी। हम कंकड़ी

अगोरते थे। याद है कुछ? बरसात में घूम-घूमकर करेमुआ का साग खोंटते थे। कौड़ियाँ मिसाव होता था।"[30]

विश्वनाथ त्रिपाठी अपने संस्मरणों में गुरु-गंभीर बातों के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य का पुट अवश्य रख देते हैं, जिससे उनके संस्मरण और अधिक रोचक बन जाते हैं। अपने संस्मरण 'गंगा स्नान करने चलोगे' में नागार्जुन पर 'हरिजन गाथा का कवि' शीर्षक से लिखे संस्मरण में केदारनाथ अग्रवाल के जन्मोत्सव की चर्चा करते हैं। जिसमें वह बताते हैं त्रिलोचन शास्त्री जब केदारनाथ अग्रवाल पर बोलने के लिए खड़े हुए, तो वह केदारनाथ अग्रवाल पर न बोलकर शब्दकोशों और इधर-उधर पर बोलते गए। त्रिलोचन जब चालीस-पैंतालिस मिनट्स बोल लिए तब केदारनाथ अग्रवाल से नहीं रहा गया। उन्होंने बीच में ही त्रिलोचन को टोक दिया, उसके बाद त्रिलोचन बैठ गए। उस कार्यक्रम की अध्यक्षता बाबा नागार्जुन कर रहे थे। नागार्जुन इस मामले को हल्का करने के लिए कहा–"केदार उम्र में त्रिलोचन से बड़े हैं। हमारे बीच ऐसा होता आया है। केदार जहाँ आदरणीय होते हैं वहां हम फादरणीय हो जाते हैं। जहाँ हम आदरणीय होते हैं वहां वह फादरणीय हो जाते हैं। आज तो केदार आदरणीय हैं और फादरणीय भी हो गए। हँसी ठहाके से विषम मौन टूटा।"[31]

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में भाषा व्यक्ति और संबंधों के आधार पर ही नहीं बल्कि परिवेश के आधार पर भी बदलती हुई दिखाई देती है। संस्मरणकार यदि किसी आदरणीय व्यक्ति पर लिख रहा है तो उसकी भाषा में जो संस्कार और सभ्यता दिखाई देती है वह दोस्त और मित्र पर लिख रहें संस्मरणों में नहीं। कान्तिकुमार जैन द्वारा अपने गुरु हरिशंकर परसाई, काशीनाथ सिंह द्वारा भाई नामवर सिंह और गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी पर लिखे हुए संस्मरण की भाषा और इन्हों संस्मरणकारों द्वारा अपने दोस्तों मित्रों पर लिखे गए संस्मरणों की भाषा का अंतर बखूबी दिखाई देता है। संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति के संबंधों के साथ भाषा में जो बदलाव देखने को मिलता है उसमें परिवेश की भूमिका भी बहुत मायने रखती हैं। काशीनाथ सिंह अपने दोस्त रामाधार पर जब संस्मरण लिखते हैं तो संबंध के साथ-साथ बनारस का परिवेश भी उनकी भाषा में सहज घुला मिला दिखाई देता है।

संस्मरण लेखन की चुनौतियाँ

संस्मरण लेखन की अपनी चुनौतियाँ हैं। इसमें कुछ भी आप काल्पनिक या मनगढ़ंत नहीं लिख सकते। आत्मपरकता के साथ-साथ वस्तुपरकता इसका कठिन पैमाना है। जिन पर संस्मरण लिखा जाता है वह संस्मरणकार का बहुत क़रीबी होता है। उसके व्यक्तित्व के दोनों पक्षों से वाकिफ़ होता है। ऐसे में तथ्यात्मक घपला वह नहीं कर सकता। इस चुनौती के बारे में काशीनाथ सिंह ने लिखा है- "मित्रों, कितना मुश्किल और ख़तरनाक और चुनौती-भरा काम है अपने बहुत-बहुत करीब के व्यक्तियों और स्थितियों के बारे में लिखना, उनके 'भीतर' भी होना और 'बाहर' भी रहना, अच्छाइयों और कमजोरियों से बुनी और बनी 'आदमियत' को ढूँढ़ निकालना जो उस व्यक्ति को बुरे से बुरे वक्त में भी 'लेखक' की जिम्मेदारी से लैस किये रखती है।...मेरा अनुभव रहा है कि निःसंगता ऐसी रचनाओं की विश्वसनीयता का स्रोत भी है और शक्ति भी। ज़रा-सी चूक आपको अविश्वसनीय, बेईमान, झूठा, ईर्ष्यालु, दम्भी और घटिया बना सकती है। सावधानी हटी कि दुर्घटना घटी !"[32]

काशीनाथ सिंह का मानना है कि रचनाकर्म के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना चाहिए। वह इस बात को स्वीकारते हैं कि उनकी प्रारम्भिक कहानियों में सामाजिकता तो है लेकिन दृष्टि बहुत साफ़ नहीं है। एक लेखक की दृष्टि बहुत साफ़ होनी चाहिए। व्यक्ति और समाज के लिए यही साफ दृष्टि उनके संस्मरणों में दिखाई देती है। उन्होंने लिखा है- "एक लेखक में चीजों को देखने की एक साफ़ दृष्टि होनी चाहिए। जगह-जगह पर चीजें बिखरी हुई हैं, इधर-उधर फैली हुई हैं – बेतरतीब और बेढंगी : सवाल ये है कि हम उन्हें किस नज़र से देखते हैं? 'सामाजिकता' मेरी पहले की कहानियों में थी लेकिन दृष्टि साफ़ नहीं थी।"[33]

शुरुआती दौर में काशीनाथ सिंह के संस्मरणों का विधा निर्धारण एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। इसका कारण था पात्र और परिवेश वास्तविक होने के साथ-साथ संस्मरण में जीवन-उल्लास से परिपूर्ण कथात्मक शैली का होना। यही कारण है कि जब ये संस्मरण प्रकाशित हो रहे थे, तो उनकी विधा किसी को समझ में नहीं आ रही थी। संस्मरणकार ने अपने संस्मरण की भूमिका में इस ओर संकेत किया है। हिंदी साहित्य में संस्मरण एक उपेक्षित विधा रही है। आलोचकों ने उसे वह महत्त्व नहीं दिया, जो देना चाहिए था। यही कारण रहा है कि समकालीन युग में विभिन्न शैलियों में लिखे संस्मरण का बंटवारा या विभाजन ठीक ढंग से आलोचक नहीं कर पा रहे। समकालीन संस्मरणकारों ने न सिर्फ संस्मरण लिखे, बल्कि इनकी सैद्धांतिकी के सूत्र भी देते गए, जिससे आलोचकों की राह

आसान हो सके। काशीनाथ सिंह ने भी इन चुनौतियों का सामना किया था ! उनके समक्ष चुनौती यह थी- "ये 'संस्मरण' नहीं हैं, 'रिपोर्ताज़' या रेखाचित्र भी नहीं हैं क्योंकि इनमें जीवन का उल्लास है; मगर ये कहानियां भी नहीं हैं क्योंकि इनके पात्र परिचित, विशिष्ट और विख्यात हैं। तो इन्हें इन सबका घोल कहें क्या? मुझे खुद नहीं मालूम कि ऐसी रचना को क्या कहना चाहिए जिसमें पात्र और घटनाएँ ही नहीं, उनके समय और संवाद भी इतने सच हों कि उनके आगे कहानियां बेजान और झूठी पड़ जाएँ।"[34] इसका सबसे बड़ा कारण है काशीनाथ सिंह का अपने परिवेश और वातावरण से जुड़े रहना। वे जिस समाज में थे उससे भलीभांति परिचित थे। वे यथार्थ को अपने संस्मरणों में प्रस्तुत कर पाए हैं तो समाज और मातृभाषा पर पकड़ के कारण ही। काशीनाथ सिंह समाज में होने वाली प्रत्येक गतिविधि पर निगाह गड़ाए थे, हर परिवर्तन को नजदीक से देख रहे और उसके पीछे के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारणों को समझने का प्रयास कर रहे।

कान्तिकुमार जैन एक महत्त्वपूर्ण संस्मरणकार हैं। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन को उन्होंने बहुत ऊंचाई प्रदान की है। कान्तिकुमार जैन ने 1970 के आसपास संस्मरण लेखन आरम्भ किया था। वह जानते थे कि इस विधा में लेखन की अपनी चुनौतियाँ हैं। संस्मरण लेखन कार्य आसान कतई नहीं है लेकिन कांतिकुमार जैन ने इस नयी विधा को बख़ूबी साधा। वे संस्मरण लेखन की चुनौतियों से परिचित थे। संस्मरण लेखन हौसले का काम है। संस्मरण लेखन के लिए जो हौसला चाहिए, वह उनके पास ही नहीं, बल्कि समकालीन संस्मरणकारों के पास था। समकालीन संस्मरणकारों ने जिस साहस का परिचय दिया है, उसके उत्सकार कान्तिकुमार जैन को माना जाए तो ग़लत न होगा। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन में ऐसे संस्मरणकारों की लम्बी फेहरिस्त है, जो साहस, उत्साह के साथ सच को बयान कर रहे हैं। इस प्रकार के संस्मरण लेखन की समकालीन युग में एक पूरी प्रवृत्ति ही दिखाई देती है। इस बात को रेखांकित करते हुए कांतिकुमार जैन ने लिखा है- "हिंदी संस्मरण लेखन में इधर जो प्रवृत्ति उभर कर सामने आयी है, वह हौसलवादी प्रवृत्ति है। यह सच है कि संस्मरण विधा हिंदी गद्य की नयी विधाओं में से एक है। बीसवीं शताब्दी के यूरोप में अनेकानेक सामाजिक, सांस्कृतिक और औद्योगिक कारणों से जीवन स्थितियों और सांस्कृतिक मूल्यों में इतना परिवर्तन हुआ कि मनुष्य के सामान्य जीवन की गति और उसके आदर्श पूरी तरह बदल गये। साहित्य की परम्परागत विधाएँ इस नयी परिस्थिति और परिवर्तनशीलता का चित्रण और आकलन करने में अपर्याप्त और असफल सिद्ध हुईं। अतः महाकाव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक,

प्रगीत आदि स्थापित एवं सुपरिचित विधाओं के अतिरिक्त साहित्यकारों को ऐसी विधाओं की तलाश करनी पड़ी जो खण्ड-खण्ड हुए जीवनादर्शों को प्रतिबिंबित कर सकें।"[35] 20वीं शताब्दी में विकसित कथेतर गद्य विधाएँ इन्हीं जीवनादर्शों को बिम्बित करती हैं। जीवन के छोटे-छोटे यथार्थ को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करती हैं।

प्रत्येक नई विधा की अपनी-अपनी चुनौतियाँ होती हैं, संस्मरण भी उनमें से एक है। इसकी भी अपनी चुनौतियाँ हैं लेकिन उन चुनौतियों से ज्यादा इसमें संभावनाओं की सकरात्मकता है जिसे समेटे हुए यह आगे बढ़ रहा है।

संदर्भ सूची :-

1. कथेतर, सं. माधव हाड़ा, पृ. 7 ।
2. वही, पृ. 27 ।
3. वही ।
4. वही, पृ. 42 ।
5. वही, पृ.16-17 ।
6. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया पृ. 5 ।
7. किस्सा कोताह, राजेश जोशी, पृ. 7 ।
8. वही, पृ. 7 ।
9. वही, पृ.16 ।
10. वही, पृ. 32 ।
11. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृ. 27 ।
12. वही, पृ. 28 ।
13. हम हशमत (भाग-तीन), कृष्णा सोबती पृ.102 ।
14. यादों के काफ़िले, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ.11 ।
15. वही, पृ.11 ।
16. वे देवता नहीं हैं, राजेन्द्र यादव, पृ. 7 ।
17. हम हशमत (भाग-तीन), कृष्णा सोबती पृ. 8 ।
18. वही, पृ. 9 ।
19. वही, पृ. 35 ।
20. कितने शहरों में कितनी बार, ममता कालिया पृ. 7 ।
21. वही, पृ.188-189 ।
22. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृ.16 ।
23. वही, पृ.172 ।
24. वही, पृ.10 ।
25. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृ.172 ।
26. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृ. 9 ।
27. वही, पृ. 9-10 ।
28. वही, पृ. 10 ।
29. आछे दिन पाछे गए, काशीनाथ सिंह, पृ. 82 ।
30. घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृ.16 ।
31. गंगा स्नान करने चलोगे, विश्वनाथ त्रिपाठी पृ.19 ।

32. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृ. 9।

33. आछे दिन पाछे गए, काशीनाथ सिंह, पृ. 83।

34. याद हो कि न याद हो, काशीनाथ सिंह, पृ. 9-10।

35. जो कहूँगा सच कहूँगा, कांतिकुमार जैन, पृ.7।

उपसंहार

साहित्य में जब एक विधा व्यक्ति-समय-समाज की मांग को पूरा नहीं कर पाती है तो वह उसे पूरा करने के लिए दूसरी विधा को विकल्प बनाती है, जो कम पड़ रहे अभिव्यक्ति के क्षेत्र को पूरा कर सके। यह दूसरी विधा अपने पूर्ववर्ती विधाओं से कुछ लेती-छोड़ती हुई एक नये स्वरूप-संरचना के साथ आगे बढ़ती हुई, अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाती है। वह साहित्य के शास्त्रीय ढ़ांचे को तोड़ते हुए पूर्ववर्ती विधा से बहुत कुछ ग्रहण करती है। कथेतर गद्य विधाओं में से तमाम गद्य विधाएं एक-दूसरे से निकलती हुई भी अलग-अलग पथ पर होती हैं। ये विधाएं एक-दूसरे से टूटकर निकलती हैं लेकिन अपने साथ कुछ लक्षणों को लेती आती हैं यही कारण है कि आंतरिक तत्वों में भिन्नता होने के बाद भी ये विधाएं बाह्य रूप में एक-दूसरे के नजदीक दिखाई देती हैं। कथेतर गद्य विधाओं पर विधागत घालमेल का आरोप अक्सर लगाया जाता रहा है। संस्मरण भी इन विधाओं में से ऐसी ही एक विधा है। संस्मरण का स्वरूप ऐसा है कि उसमें अन्य विधाओं की आवाजाही का होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि इसे एक लचकदार विधा के रूप में जाना जाता है। इसमें कहानी, आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, डायरी आदि के रूप भी दिखाई देते हैं, लेकिन इन रूपों को समेटे होने के बाद भी संस्मरण में तत्वगत भिन्नताएं दिखाई देती हैं। इसलिए संस्मरण इन विधाओं के नजदीक होते हुए भी स्वतंत्र पहचान रखता है।

'संस्मरण' शब्द से ही किसी व्यक्ति के 'स्मरण' का बोध होता है। 'स्मरण' का अभिप्राय 'स्मृति' से है। ये स्मृतियाँ हमारे अतीत की होती हैं। संस्मरण अतीत से वर्तमान का सफ़र है जिसमें स्मृतियाँ सेतु का कार्य करती हैं। स्मृतियाँ व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ देती हैं, जिसे वह कभी भूल नहीं पाता है। संस्मरण उन्हीं कौंधती स्मृतियों का रेखांकन है। वस्तुत: संस्मरण इन्हीं स्मृतियों का शब्दांकित रूपाकार है।

संस्मरण 'पर' से 'आत्म' को जोड़ने की कड़ी है। यह 'पर' से 'आत्म' का सफ़र अतीत से वर्तमान को जोड़ता है। संस्मरण में यह देखा गया है कि लेखक स्मृत व्यक्ति के साथ-साथ अपने जीवन का भी रेखांकन करता है। संस्मरण में यह देखा जाता है कि लेखक की दृष्टि व्यक्तित्व के रेखांकन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संस्मरणकार की जैसी दृष्टि होगी स्मृत व्यक्ति का व्यक्तित्व वैसा ही उभरकर आएगा। इसलिए यह देखा गया है कि संस्मरणकार द्वारा स्मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्याङ्कन अंतिम मूल्यांकन नहीं है। वह एक व्यक्ति की सीमित दृष्टि हो सकती है; उससे पार भी किसी व्यक्ति का मूल्यांकन संभव है।

समकालीन हिंदी संस्मरणों में यह देखने को मिलता है कि संस्मरणकार और स्मृत व्यक्ति का आत्मीय सम्बन्ध काफी घनिष्ट होता है। वह उन्हीं पर संस्मरण लिखता है जिसे वह काफी गहराई से जानता है। उनकी अंतरंगता ही स्मृत व्यक्ति के जीवन के विस्तृत फलक को

देखने की सहूलियत देती है। लेखक और स्मृत व्यक्ति के अनुभव जितने गहरे होगें व्यक्ति चित्र उतना ही स्पष्ट उभरकर आएगा। आत्मीय सम्बन्धों के रेखांकन में संस्मरणकार को तमाम चुनौतियों का सामना करना पड़ता है उन चुनौतियों से बचने के लिए लेखक का अपनी लेखनी में तटस्थ होना बहुत जरूरी है। तभी वह स्मृत व्यक्ति और संस्मरण विधा; दोनों के साथ न्याय कर सकेगा।

कथेतर गद्य विधाओं को देखा जाय तो समय-समाज की मांग ने इन विधाओं के स्वरूप को ही नहीं बदला है बल्कि विषयवस्तु में भी बदलाव किया है। आज पाठक कल्पना के आकाश को नहीं बल्कि यथार्थ के धरातल को ज्यादा स्वीकार कर रहा है। कथा साहित्य में व्यक्ति या समाज की समस्याओं को किसी काल्पनिक पात्र द्वारा दिखाया जाता था जबकि कथेतर साहित्य उसी काल्पनिकता को त्यागता है। इसमें लेखक किसी काल्पनिक पात्र की जगह अपने आसपास के किसी प्रत्यक्ष पात्र या व्यक्ति या घटना को चुनता है। उस पात्र पर बिना कल्पना के कलेवर चढ़ाए, उसे उसी रूप में ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत करता है। संस्मरण साहित्य इन कथेतर गद्य विधाओं में से एक है जो अपने और आत्मीय संबंधों के जीवन को आधार बनाकर कथ्य का निर्माण करता है। इसके स्वरूप और अंतर्वस्तु के बदलाव इसे कथा साहित्य से ही नहीं, बल्कि कथेतर गद्य विधाओं से भी अलग करते हैं।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का फलक बहुत विस्तृत है। स्मृत व्यक्ति पर बात करते हुए संस्मरणकार सिर्फ उसके वैयक्तिक पक्ष का रेखांकन नहीं करता है बल्कि उस व्यक्ति रूप के माध्यम से हमारे समय-समाज के अनेक रूपों को भी दर्शाता है। 'संस्मरण' में व्यष्टि के माध्यम से समष्टि का चित्र प्रस्तुत करना, समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का ध्येय बन गया है। जहाँ व्यष्टि की बात होगी वहां समष्टि को अलग करके नहीं देखा जा सकता। यह कहना गलत न होगा कि व्यष्टि और समष्टि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए एक का निहितार्थ, दूसरे में स्पष्ट हो ही जाता है। समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन जीवन के कोरे यथार्थ की मांग करता है, जिसमें जीवन-जगत की तमाम समस्याएँ सिमटी होती हैं। इसके केंद्र में भले व्यक्ति होता है लेकिन वह समाज, राजनीति, साहित्य, संस्कृति आदि को अपने में समेटे हुए है।

संस्मरण साहित्य के इतिहास की बात करें तो यह बहुत पुराना नहीं है। इसकी व्यवस्थित शुरुआत तो बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हुई लेकिन इसका बीज भारतेंदु युग से दिखाई देता है। भारतेंदु युग से लेकर पद्मसिंह शर्मा के पद्म पराग (1929ई०) से पूर्व, जो संस्मरण लिखें गये, उन संस्मरणों ने इसकी पृष्ठभूमि को बनाने में अहम भूमिका निभाई। देखा जाय तो कोई भी बदलाव अचानक नहीं होता है उस बदलाव के पीछे एक पृष्ठभूमि काम कर रही होती है। किसी विधा के स्वरूप निर्धारण में उस पृष्ठभूमि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जाहिर सी बात है कि संस्मरण साहित्य का जो व्यवस्थित स्वरुप 'पद्म

पराग’ से उभरकर आया है, इसके रूप निर्धारण में भारतेंदु युग और द्विवेदी युग में लिखे गये संस्मरणों की अहम् भूमिका है। संस्मरण साहित्य के इतिहास में झाँका जाय तो यह देखने को मिलता है कि संस्मरण के परम्परा की शुरूआत में पत्रकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। शुरूआती दौर के जितने भी संस्मरण लिखे गए हैं उनमें से ज्यादातर संस्मरण पत्रकारों द्वारा लिखे गए हैं। उन्होंने कभी ‘आप बीती जग बीती’ लिखकर भावों को अभिव्यक्ति दी, तो कभी प्रेमचन्द पर श्रद्धांजलिपरक संस्मरण लिखकर मनोभावों को व्यक्त किया। इस परम्परा में भारतेंदु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनरायण मिश्र, रामदास गौड़ आदि साहित्यकारों का नाम निसंदेह जुड़ता है। इस दौर के संस्मरण पुस्तकाकार रूप में नहीं बल्कि सरस्वती, हंस, चाँद, विशाल भारत आदि पत्रिकाओं में कभी विशेषांक के रूप में, तो कभी स्वतंत्र लेख के रूप में छपते थे। इसके बाद संस्मरण की विकास परम्परा को और अधिक सुदृश और व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ाने का कार्य पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास बाजपेयी आदि ने किया।

संस्मरण साहित्य अपनी लोकप्रियता की शिखर पर आजादी के बाद पहुंचा। एक तरफ भारत की आजादी के बाद, आम-जन सुनहरे सपने देख रहा था तो दूसरी तरफ विभाजन की त्रासदी ने मानव को ही नहीं तोड़ा, बल्कि साहित्य के पारम्परिक ढ़ांचे को भी तोड़ा। साहित्य का पारम्परिक ढ़ांचा मानव जीवन के बदलाओं और समस्याओं को रेखांकित करने में अपर्याप्त था। अत: उसी दौरान तमाम कथेतर विधाओं ने व्यक्ति-समाज की परिस्थितियों को अलग-अलग विधाओं के माध्यमों से अभिव्यक्ति दी। इन विधाओं ने अपनी अभिव्यक्ति को लेकर तमाम प्रयोग किए, कभी कथ्य के आधार पर तो, कभी भाषा और शैलीगत बदलाव के रूप में। नये स्वरुप, कथ्य, भाषा, शैली आदि बदलावों के आधार पर संस्मरण विषयगत और वस्तुगत वैविध्य समेटे हुए है। संस्मरण साहित्य के पारम्परिक ढांचे के बदलावों और प्रयोगों में कांति कुमार जैन, काशीनाथ सिंह, कृष्णा सोबती, राजेन्द्र यादव, मनोहर श्याम जोशी, रवींद्र कालिया, ममता कालिया आदि लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। इन्होंने संस्मरण को एक नयी परिभाषा, नयी दृष्टि, नया कथ्य, नयी भाषा और नया स्वरूप दिया। इनकी रचनाओं में जो व्यष्टि-समष्टि का रूप उभरकर आया, वह अपने पूर्ववर्ती पारम्परिक ढांचे को तोड़ता हुआ, बिल्कुल नया है।

संस्मरण साहित्य ने अब प्रशस्तिपत्र, श्रद्धांजलि, श्रद्धेय, आराध्य के चोले को उतार फेंका। लेखक वैयक्तिक और सामाजिक मूल्यों को नये अर्थों में प्रस्तुत करने की ओर अग्रसर हुआ। संस्मरण सम्बन्धों से अभिभूत होकर नहीं, बल्कि व्यक्ति के अंतरंग मन में झांककर तटस्थ भाव से लिखे जाने लगे। संस्मरण का कथ्य व्यक्ति के जीवन के कोरे यथार्थ की धरातल पर उभरने लगा है। संस्मरण प्रभावशाली, प्रतिभाशाली, महामानव, यशोगान, देवता की छवियों की प्रस्तुति आदि से बाहर निकलता है। संस्मरणकार के लिए उसके

संस्मरण में अब नेहरू, गाँधी, प्रसाद, निराला आदि का प्रभावशाली व्यक्तित्व ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं बल्कि गली-कूचों में काम करने वाला, धोबी, सुबह-सुबह साइकिल से पेपर बांटने वाला भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। संस्मरण में प्रभावशाली व्यक्तित्व नहीं बल्कि व्यक्तिगत अंतरंगता मायने रखने लगी। संस्मरणकार एक दिन की मुलाकात के आधार पर गाँधी-नेहरू के व्यक्तित्व को समझने से इंकार करने लगा, उसे चायवाले या अखबार वाले की रोज की अंतरंगता ज्यादा प्रमाणिक लगने लगी। संस्मरण की इस परंपरा का सूत्रपात महादेवी वर्मा के संस्मरणों में दिखाई देता है। महादेवी वर्मा के संस्मरण 'पथ के साथी' में निराला, प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, सुभद्राकुमारी चौहान ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं बल्कि 'स्मृति की रेखाएं' में चित्रित गुगियाँ, बिबिया, भक्तिन, जंग बहादुर, चीनी फेरीवाला भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। महादेवी वर्मा के संस्मरणों से जिस परम्परा का सूत्रपात परिलक्षित हुआ उसका व्यापक विस्तार समकालीन हिंदी संस्मरणों में दिखाई देता है। संस्मरण साहित्य में मानवीय संवेदनाओं का विकास हुआ। उसने हताश, निराश व्यक्ति की संवेदनाओं को पकड़ने की कोशिश की। उसे अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। काशीनाथ सिंह, कांतिकुमार जैन, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती, मनोहर श्याम जोशी, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया आदि रचनाकारों ने कुछ छिपाने की कोशिश नहीं की। जो प्रत्यक्ष जीवन में था, उसे उसी रूप में साहित्यिक स्वर दिया।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन 'मेरे आराध्य', 'लोक देव नेहरू' में नहीं, बल्कि 'वे देवता नहीं हैं' और 'घर का जोगी जोगड़ा' जैसे शीर्षक में विश्वास करने लगा। 'जो कहूँगा सच कहूँगा' के पथ पर अग्रसर हुआ। रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, निराला, मुक्तिबोध, अज्ञेय, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती आदि महामानव के रूप में नहीं, सामान्य व्यक्ति की तरह संघर्ष करते दिखाई दिए। संस्मरणकारों ने इनके जीवन के शुक्ल पक्ष के साथ-साथ कृष्ण पक्ष को भी रेखांकित किया। संस्मरण साहित्य का वैयक्तिक पक्ष के गुण-अवगुण के गुणात्मक विकास के साथ लिखा जाने लगा। लेखक न तो अपने को छिपा रहा है न स्मृत व्यक्ति को। वह अपना और स्मृत व्यक्ति के जीवन का हर कोना खंगाल रहा है। संस्मरण 'मीठा-मीठा गप्प, कड़वा-कड़वा थू' के पारम्परिक ढ़ांचे को बदलता हुआ नजर आने लगा। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का वही रूप दिखाई देता है जैसा वह वास्तविक जीवन में हैं, चाहे वह पारिवारिक व्यक्ति पर लिखा गया संस्मरण हो अथवा सहकर्मी-मित्रों या आत्मकथ्य के रूप में लिखा गया संस्मरण हो। इन सबका ध्येय व्यक्ति के व्यक्तित्व का सही, निष्पक्ष और तटस्थ मूल्यांकन है।

समकालीन हिंदी संस्मरण लेखन का क्षितिज बहुत विस्तृत है। इसमें जीवन का वह हर रंग-रूप उभरकर सामने आया है जो आमतौर पर साहित्य में नहीं आ पाता है। समकालीन हिन्दी संस्मरण लेखन में पारंपरिकता का निर्वाह तो है, साथ ही इनमें कई

परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं। इसकी मुख्य वज़ह एक तो यह है कि आज के ज्यादातर संस्मरणकार साहित्य विधा के भिन्न अनुशासन से आये हैं, जिसका पुट इनके संस्मरणों में सहजता से दृष्टिगोचर होता है। जैसे- राजेन्द्र यादव की छवि हिंदी साहित्य में कथाकार, आलोचक और संपादक की है। काशीनाथ सिंह की छवि भी हिंदी दुनिया में मुख्यतः कथाकार की ही है। कृष्णा सोबती, रवींद्र कालिया, मनोहर श्याम जोशी की पहचान भी कथाकार की ही है। निर्मला जैन हिंदी की प्रतिष्ठित आलोचक हैं। यही कारण हैं कि इनके पुराने संस्कार संस्मरण के कथ्य, शैली तथा भाषा-शिल्प में दिखाई देती है। इनका कथ्य जितना वैविध्यपूर्ण है शैली और भाषा में उतनी ही रोचकता दिखाई देती हैं। लेखकों का साहित्य के विविध धरातल से आना, संस्मरण के कथ्य को ही नहीं, बल्कि शैली को भी प्रभावित करता है। संस्मरण की शैली कभी कहानी, समीक्षा, आलोचना के तत्व को अपने में समेटे हुए नजर आती है तो कभी आत्मकथा, जीवनी, पत्र आदि के रूप को। संस्मरण साहित्य में भाषा और परिवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है। परिवेश के अनुसार भाषा का बदलना, उसे रोचक और पठनीय बनाता हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो साहित्य में जब भी किसी नयी विधा का विकास होता है तब वह पूर्व प्रचलित विधाओं से किसी-न-किसी रूप में भिन्न होती है। पहले से प्रचलित विधाएँ जब नाकाफ़ी होती हैं तब नयी विधा का विकास होता है। प्रत्येक विधा अपने विकास के साथ विविधताओं को समेटते हुए आगे बढ़ती है। उसकी विविधता उसे समृद्ध करती हुई विकासपथ पर अग्रसर करती है। हिंदी साहित्य में सिर्फ संस्मरण विधा ही नहीं बल्कि कथा साहित्य और कथेतर सभी विधाएं अपनी विकास यात्रा में नये कथ्य, स्वरूप, शैली, भाषा आदि के नित-नये प्रयोगों के साथ आगे बढ़ती रहती है। वह अपने प्रारंभिक और पारम्परिक रूपों के साथ कुछ पुराने मूल्यों को छोड़ती हुई, नये मूल्यों, प्रयोगों, मान्यताओं आदि को समेटती हुई आगे बढ़ती हैं। हिंदी संस्मरण भी इसी को अपनाता हुआ आज भी विकासशील है। वर्तमान युग के संस्मरणकारों ने संस्मरण लेखन में पारंपरिक रूप को तो स्वीकार किया है लेकिन उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन भी करते चले हैं। वे संस्मरण लेखन की परंपरा को न तो पूरी तरह स्वीकारते हैं और न ही उसका नकार ही करते हैं। संस्मरण साहित्य प्रारम्भिक संस्मरणों से कुछ लेते हुए और कुछ छोड़ते हुए तथा कुछ जोड़ते हुए आगे बढ़ता है। हिंदी संस्मरण अपने प्रारम्भिक रूप में जैसा था उसका उत्तरकालीन स्वरुप बदलता है। वह कई नये प्रयोग करता है। इसका यही प्रयोग संस्मरण को वैविध्यपूर्ण बनाता है जो विधा की दृष्टि से सकारात्मक है। यही कारण है कि हिंदी संस्मरण की विकासशीलता आज भी बरकरार है।

आज स्मृत व्यक्ति के वैयक्तिक दायरे से बाहर निकलकर संस्मरणकार ने अपनी दृष्टि को विस्तार दिया है। वह अपने चतुर्दिक फैले सामाजिक मूल्यों की पड़ताल करता है। यही

कारण है की संस्मरण आज अपनी लोकप्रियता के शिखर पर है। आज पाठक को एक ही विधा के वैविध्यपूर्ण धरातल पर वह सब मिल जा रहा है जिसकी उसे दरकार थी। वह रोचक कथात्मकता का रसास्वाद भी कर रहा है तो तथ्यों की यथार्थता, तार्किकता आदि उसके ज्ञान को विस्तार भी दे रहे हैं। संस्मरण के माध्यम से जो वैविध्यपूर्ण जीवन की झलक एक ही विधा में देखने को मिल रही है वह अन्यत्र संभव नहीं हैं। यहाँ रोचक शैली लिए हुए कथ्य और भाषा भी है तो जीवन का कोरा यथार्थ और वैविध्य भी।

परिशिष्ट

<u>काशीनाथ सिंह से साक्षात्कार</u>

प्रश्न- आपकी ख्याति एक कथाकार के रूप में है लेकिन आपके संस्मरण पढ़कर नहीं लगता है कि कथासाहित्य से संस्मरण कहीं से भी उन्नीस है? संस्मरण की तरफ आपका झुकाव कैसे हुआ?

उत्तर- इसमें दो बातें शामिल हैं। पहला, झुकाव मेरा था नहीं। लगभग मैं 60 से लेकर 80 तक लगातार कहानियां लिखता रहा। कहानी लेखन से ऊब गया था। मुझे लगा कि मैं एक ही जगह खड़ा होकर लेफ्ट-राइट कर रहा हूँ। आगे नहीं बढ़ रहा हूँ, नया और अच्छा करने की एक बेचैनी थी। उसी क्रम में मेरे पास ज्ञानरंजन का आग्रह आया। नामवर पर एक विशेषांक निकाल रहे हैं लेकिन बिना तुम्हारे संस्मरण के वह विशेषांक नहीं निकल पायेगा। उन्होंने शर्त रखी कि वह अंक तभी निकलेगा जब तुम संस्मरण लिखोगे। मेरे समझ में नहीं आया, क्या करूँ? परेशान रहा। परेशान इसलिए की भाई पर संस्मरण लिखना खतरनाक है। खासकर उस भाई पर जो मेरे बेहद करीब है। हम दोनों का सम्बन्ध एक तरह से अनन्वय जैसा सम्बन्ध था। मेरे दिमाग में आया की नामवर सिंह पर तभी संस्मरण लिखा जा सकता है कि मैं नामवर सिंह को अपने से दूर कर दूँ। दिमाग से निकाल दूँ और मैं भूल जाऊँ की वह मेरे भाई हैं। और एक ऐसे लेखक के रूप में उनको देखूँ जिनका जीवन संघर्ष से भरा रहा है। यह सोचते हुए मैंने अपनी डायरियां निकाली। और उनमें मुझे लगा की बनारस छोड़ने के बाद 59 से लेकर 65 तक लगातार वह बनारस में रहे है। उन दिनों मैं भी संघर्ष कर रहा था और उसी बनारस में था। शोध कर रहा था। एक तरह से पूरा घर बेकारी से गुजर रहा था। उन दिनों बनारस में नामवर क्या कर रहे थे। पांच साल बनारस रहे। बनारस से सागर गये। सागर से वापस आये। बनारस में पड़े हुए थे। नगर में उपेक्षित थे। कोई पूछता नहीं था। नौकरी मिलने की लगभग संभावनाए ख़त्म हो गयी थी। इतना था की मध्यप्रदेश के किसी कॉलेज के ऑफर आते थे या किसी सेठ के ऑफर आते थे पत्रिका संपादन को लेकर या संस्था को लेकर। उन्होंने तय कर लिया था कि अब मुझे नौकरी करनी नहीं है। हजारी प्रसाद द्विवेदी मेरे और उनके गुरु थे। हालांकि उनके गुरु थे, मैं भी उनका शिष्य हो गया था। पंडित जी (हजारी प्रसाद द्विवेदी) ने कहा देखो, बनारस में नामवर को नौकरी मिलने से रही। माँ-बाप हैं इन्हें देखना तुम्हारा काम है। मैंने माँ-बाप को ही नहीं बल्कि पूरे परिवार को साथ ले लिया। हमने कहा कोई बात नहीं, सौ रूपये स्कॉलरशिप मिलती है, उसी में गुजारा कर लेंगे। गाँव से गेहूं, चावल, दाल जो कुछ आ सकता है, आएगा। डायरियों में वे दिन मिले जिधर मैंने कभी लिखा था और ध्यान नहीं दिया था। उन्हीं डायरियों के सहारे मैंने संस्मरण लिखा और ऐसा लिखा की बेईमानी न हो। ऐसा न मालूम हो कि मैं भाई का पक्ष ले रहा हूँ। लिखने के लिए दृष्टि बहुत जरूरी है। खैर मैंने उनपर पहला संस्मरण लिखा। और जैसा संस्मरण का

स्वागत हुआ और नये नामवर लोगों के सामने खुलने लगे। ये वे नामवर है, जिन्हें लोग नहीं जानते हैं, जो इसी रचना संसार का आदमी है। क्योंकि मुझे याद है कि उन्हीं दिनों अशोक बाजपेयी ने कहा था कि काशी जैसा मेरा भी एक भाई होता। काशी में यह क्षमता है कि वह किसी हत्यारे को गौतम बुद्ध बना सकते हैं। यह व्यंग में कहा था। (हँसते हुए) इससे मेरी हिम्मत बढ़ी कि संस्मरण पर कुछ काम करूँ। उसके बाद मेरा ध्यान उन व्यक्तियों पर गया। जिन पर मैं संस्मरण लिख सकता हूँ। ऑब्जेक्टिविटी। बिना रू-रियायत के। बिना पक्षधरता दिखाए हुए। ऐसे लोगों को मैंने चुना। त्रिलोचन! जिन्हें मैं लम्बे अरसे से जानता था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जो हमारे रेक्टर भी थे और गुरू भी। बनारस में काफी दिनों तक थें। नामवर सिंह पर लिख चुका था। 'याद हो कि न याद हो' में कौन-कौन लोग हैं, मैं भूल गया हूँ। (याद करते हुए) नागानंद पर लिखा जो मध्यप्रदेश चले गये थे, डिग्री कॉलेज में वहां पढ़ाते थे, अंग्रेजी से एम.ए किये थे, उस नागानन्द पर मैंने लिखा। धूमिल पर लिखा। अपने जो मित्र थे उस समय के, जिन्होंने 60 के दौर में कहानियां शुरू की थी दूधनाथ सिंह, कालिया, ज्ञानरंजन, विजय मोहन- ये लोग थे, जिनके बारे में मैं जानता था। ऐसे एक दो और लोग हैं, यानी उन लोगों के बारे में जिन्हें मैं जानता था। जैसे जानने को तो मैं नागार्जुन को भी जानता था। नागार्जुन मेरे घर आते थे, ठहरते थे, खाते-पीते थे, रसोई में इनके (बगल में बैठी पत्नी की तरफ इशारा करते हुए) यहाँ पहुँच जाते थे। (वह मुस्कुराती हैं) किस चीज़ की चटनी बनाओगी, बताओ, क्या-क्या बन रहा है। (पत्नी कुसुम बोलती है- कहते थे मछली बनाओ) घर के बच्चों को कविताएँ सुनाना। लेकिन मुझे लगता है कि मैं नागार्जुन को उतना नहीं जान पाया जितना जानना चाहिए। क्योंकि हर आदमी की खूबियों के साथ-साथ कुछ कमियाँ भी हुआ करती हैं। मैंने उनकी खूबियाँ देखी थी। कमियों के बारे में सुन रखा था लेकिन कमियाँ जान न सका। हमको लगा की किसी भी आदमी को लो तो उसकी पूरी पर्सनाल्टी आ जाए और पूरी क्रिएटिविटी भी आ जाए। ये मैंने किया की करने के दौरान मुझे सुझा की जब मैं व्यक्तियों पर संस्मरण लिख सकता हूँ तो स्थान पर क्यों नहीं? स्थान में मुझे लगा कि किस स्थान को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं अस्सी (बनारस का अस्सी घाट)१९५३ से रह रहा था। लगभग १९५३ से १९८० तक रहा। लोलार्क कुंड पर, अस्सी मोहल्ले में। घर-घर को जानता था। उसके विविध को जानता था। आदतों को जानता था। प्रवृत्ति को जानता था। कमियों को जानता था। अच्छाईयों को जानता था। उसी क्रम में मेरी नजर उस दुकान पर गयी जहाँ प्रोफेसर ही जाते हैं। छात्र नेता ही बैठते थे। जहाँ पेंटिंग के लड़के रीवां कोठी से आते थे। वहीँ गाने-बजाने वाले लड़के, संगीत के विद्यार्थी भी रहते थे। दूध बेचने वाले जाते थे। ऑटो-रिक्शा चलाने वाले वहां बैठते थे। मुझे लगा कि यह दुकान पूरा भारत है। मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जो हमारा पहला एपिसोड छपा था- 'देख तमाशा लकड़ी का'। वह संस्मरण के नाम से छपा था। कथा-रिपोर्ताज हमारे और राजेन्द्र यादव जी

के बहुत से दौरान सूझा सीधे सिर्फ संस्मरण नहीं हो सकते हैं। या संस्मरण व्यक्ति पर होते हैं स्थान पर नहीं हो सकते। तो इसे ये कहा जा सकता है। फिर देर तक मेरी दिलचस्पी संस्मरणों में बनी रह गयी।

अब मैं संस्मरण को ध्यान में रखकर, चर्चा जिस चीज़ की है वह कथेतर साहित्य की। इसी कथेतर में संस्मरण भी शामिल होता है। अगर कथेतर साहित्य में संस्मरण निर्मित हुआ है, अलग से एक विधा के रूप में उभरा है या आया है तो उसमें कहीं न कहीं मेरे संस्मरणों की भूमिका है। उसी की प्रेरणा से तमाम संस्मरण आये। कांति कुमार जैन ने साफ़ कहा है कि उन्होंने मेरी वजह से संस्मरण लिखना शुरू किया। मेरे यहाँ से संस्मरण की परम्परा बदलती है उसमें किस्सागोई, कल्पना और लेखक की केवल सूचना के लिए नहीं, उस जिस आदमी को चुना वह सामान्य मनुष्य की तरह संघर्ष करता दिखाई पड़ा। यानी त्रिलोचन पर लिखते हुए सारी बातों के बावजूद यह दिखाना नहीं भूला की वह आटा पिसाने निकले थे और उनकी पत्नी झाड़ू लेकर दरवाजे पर खड़ी थीं। (हँसते हैं) तो, मैंने सामान्य मनुष्य का संघर्ष उस लेखक में शामिल किया। अपने संस्मरणों को कहानियों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। उपन्यास छोड़ दिए जाए तो मेरे संस्मरण कहानियों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। मेरे संस्मरणों से पाठकों का एक वर्ग तैयार है। यानि की जो हंस है चल पड़ा।

प्रश्न- यानी क्या आप राजेन्द्र यादव के इस कथन या टिप्पणी से सहमत हैं? "काशी के समकालीन कथाकारों में जो साहसिकता दिखाई दी थी, वह अपने सबसे अधिक ऊर्जावान रूप में काशी के संस्मरणों में दिखाई देती है। मुझे तो यहाँ तक शक होता है कि भविष्य में काशी केवल अपने संस्मरणों लिए ही याद किए जाएँगे। उनकी बेबाकी, निडरता, मजाक और स्थानीय लोक-शक्ति बिल्कुल एक नये काशी से हमारा परिचय कराती है। मुझे लगता है कि काशी को और संस्मरण लिखने चाहिए। संस्मरणों में ही वे अपने श्रेष्ठ रूप में हमारे सामने आते हैं।"?

उत्तर- पूरी तरह से तो नहीं लेकिन कुछ हद तक सहमत हूँ। हलांकि राजेन्द्र यादव की एक ख्वाहिश रह ही गयी कि मैं उन पर भी एक संस्मरण लिखूं। वे चाहते थे लेकिन मैंने नहीं लिखा।

प्रश्न- कथात्मक विधाओं के मुकाबले संस्मरण को साहित्य में उपेक्षित रखा गया या आलोचकों ने उपेक्षा की। इसे आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तर- वस्तुत: संस्मरण का जो पारम्परिक रूप था वह ऐसा था ही नहीं कि आलोचकों का ध्यान जाए। निराला के बारे में, पन्त के बारे में, इनके बारे में, उनके बारे में..दुनिया भर के बारे में लिखते रहते थे ये लोग। और वह सूचनाधर्मी हुआ करती थी। आलोचक सूचनाओं के लिए नहीं होता है। आपकी सम्पूर्ण रचनात्मकता में अगर क्षमता दिखाई पड़ती है या नई

बात दिखाई पड़ती है, आलोचक उसे देखता है। जबकि उस समय संस्मरण में केवल सूचनाएं दिखाई पड़ रही थीं। बाद के दिनों में, अब इधर कथेतर साहित्य की चर्चा जब से शुरू हुयी है जैसे एक आलोचक हैं- पल्लव। वह कथेतर साहित्य के बारे में केवल लिखता है। कथेतर महत्त्वपूर्ण है आलोचकों का ध्यान अगर नहीं गया, वह दौर था की आलोचना कविता केन्द्रित थी या सिध्दांत केन्द्रित थी। कुछ नामवर सिंह की वजह से कहानी पर चर्चा हुयी, उपन्यास पर चर्चा हुयी। संस्मरणों या यात्रा साहित्य या अन्य कथेतर विधाओं पर चर्चा नहीं हुई। अब तो बहुत से लेखक हैं जो यात्रा विवरण भी लिख रहे हैं, जैसे असगर वजाहत। अब तो कई तरह की चीज़े आ रहीं है साहित्य के नाम पर। भारत की यात्रायें कर रहे हैं। भारत के किसी क्षेत्र विशेष की यात्रायें कर रहें हैं। विदेश गए हैं, वहां के बारे में कुछ लिख रहें हैं। तो इनपर ध्यान तब नहीं गया था लेकिन अब जा रहा है।

प्रश्न- संस्मरण लेखन एक चुनौती भी है क्योंकि सबसे करीबी लोगों पर लिखना होता है उनके गुण-दोष दोनों को हम जान रहे होते हैं। लिखने के बाद कई बार अच्छा नहीं ही लगता है। तो इन चनौतियों का आपने किस रूप में सामना किया?

उत्तर- मैंने हजारी प्रसाद द्विवेदी पर लिखा। विश्वनाथ त्रिपाठी भी हमसे सीनियर थे। पंडित जी(हजारीप्रसाद द्विवेदी) के ही विद्यार्थी थे। उन्होंने (विश्वनाथ त्रिपाठी) 'व्योमकेश दरवेश' लिखा है जिसमें हमारे विरुद्ध लिखा है। जब छपा था तब मनोहर श्याम जोशी एक अलग से पंडित जी पर लिखने वाले थे हमारे ही खिलाफ। लेकिन मैं उसे सार्वजनिक न बनाकर, पंडित जी की अच्छी बातें ढेर सारी थीं। मुझे लगा की उनकी अपनी कमजोरियां भी हैं, जिन्हें लोग नहीं जानते हैं। या जिसकी चर्चा नहीं करते। हर बड़े आदमी में होती है। इस चीज को ढका न जाय। इसको ही सामने लाना चाहिए। जिस द्वन्द्व से गुजरता है आदमी, यानी जो नहीं करना चाहता है वह करने के लिए लाचार रहता है।

प्रश्न- क्या संस्मरण लिखते समय पाठक भी आपके जेहन में होते हैं?

उत्तर- पाठक तो मेरे जेहन में संस्मरण लिखते समय ही नहीं, कहानी लिखता हूँ तब ही होते हैं, उपन्यास लिखता हूँ तब भी होते हैं। पाठक निरपेक्ष लेखन, मैं नहीं करता। मैं लिखूं और केवल साहित्यकार पढ़ें। साहित्यकारों को मैं पाठक नहीं मानता। साहित्यकारों के सिवा जो हैं, या जो दूसरे विषयों के हैं, या सामान्य आदमी है, पाठक वे हैं। तो हम लिखें और हमारा कोई मित्र पढ़ ले, वह पाठक नहीं हुआ। हमलोग एक ही रास्ते के राही हैं। कोई बात नहीं। जो दूसरा खड़ा है और दूर से देख रहा है, महत्त्वपूर्ण वह है। साहित्य के लिए भी। तो पाठक बराबर मेरे ध्यान में, जेहन में हमेशा रहते हैं, इनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। यानी ऐसा लिखा जाय की लोग पढ़ सकें। इसलिए कभी भी मैं किताबी भाषा इस्तेमाल नहीं करता।

लेखन करते समय अगर किताबी भाषा मेरे जेहन में आ जाती है तो मैं उसका विकल्प ढूंढ़ता हूँ कि लोक में क्या है।

प्रश्न- संस्मरण लेखन में आपके आदर्श कौन हैं?

उत्तर- मेरे आदर्श मैक्सिमम गोर्की हैं। गोर्की ने तालस्ताय और चेखव आदि पर लिखा है। हालाकिं वह संस्मरण के लिए नहीं जाने जाते हैं। लेकिन 'मैक्सिमम गोर्की के संस्मरण' करके उनकी एक किताब आई थी या क्या नाम है मुझे नहीं याद लेकिन मैक्सिमम गोर्की रहा है।

प्रश्न- संस्मरण साहित्य का भविष्य आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तर- संस्मरण साहित्य के भविष्य का निर्माण निर्भर करता है लेखक पर। लेखक लिखते समय सिर्फ गुणगान न करे। सिर्फ अच्छाईयाँ न देखे। एक लेखक जो मनुष्य हुआ करता है उसकी अच्छाईयों-बुराईयों दोनों पर नजर रखे। किस लेखक को चुन रहा है, किस विषय बना रहा है तो लेखक की क्रिएटिविटी को भी ध्यान में रखे। लेखन से क्या उभरता है इसका व्यक्तित्व। कविता हो या कहानी हो या उपन्यास हो या जो कुछ लिखा है उससे उसका व्यक्तित्व क्या बन रहा है, उसमें और जीवन में कितना विरोधाभास है, कितना फर्क है, कितनी समानता है, यह सारी बातें एक संस्मरण के लिए मैटर करती है तो भविष्य अनंत है। यानी जिसके बारे में वह लिख रहा है उसे एक चरित्र मान ले। वह एक चरित्र के बारे में लिख रहा है किसी पूज्य के बारे में नहीं लिख रहा है। या दया करके नहीं लिख रहा है वह चरित्र उसे मजबूर कर रहा है लिखने के लिए। लेकिन लिखने से पहले जैसे चीजों का अध्ययन किया जाता है स्टडी की जाती। जैसे आज के समय उपन्यास स्टडी करके लिखे जाते हैं। उसका विधिवत अध्ययन करने के बाद, जानने के बाद ही संस्मरण लिखा जाना चाहिए। जैसे आधे-अधूरे आदमी, जिसको मैं ठीक से नहीं जानता उसके बारे में संस्मरण नहीं लिख सकता।

प्रश्न- आपकी दृष्टि में संस्मरण साहित्य का क्या महत्त्व है?
उत्तर- संस्मरण साहित्य का महत्त्व नहीं होता तो तुम शोध नहीं करती। (हँसते हैं) इसका मतलब है की महत्त्व है और यह रहेगा भी। यानी इसे कभी मान्यता नहीं दी गयी आज मान्यता दी जा रही है, यह अपने आप में उपलब्धि है।

प्रश्न- एक प्रतिष्ठित कथाकार, कथा साहित्य से निकलता है और संस्मरण की तरफ जाता है तथा बहुत सर्जनात्मक संस्मरण लिखता है, संस्मरण की दुनिया में अपनी अलग पहचान स्थापित करता है और फिर कथा साहित्य की तरफ लौटता है? कथा साहित्य से विमुख होने

और पुन: कथा साहित्य में लौटने तथा इस बीच संस्मरण साहित्य का एक पड़ाव जो है इसमें जाने और निकलने में संस्मरण कितना प्रभावित करता है।

उत्तर- देखो! इसे मैं इस रूप में कहूँ, संस्मरण लिखने के बाद, जब मैं अंतिम संस्मरण लिखा था 'घर का जोगी जोगड़ा' की बात नहीं करूँगा मैं। लिखकर जो मैंने बंद किया वह आत्मतर्पण है 'रहना नहीं देश बिराना' है। यादव (राजेन्द्र यादव) आत्मतर्पण स्तम्भ मुझसे ही शुरू करना चाहते थे। की तुम लिखो उसके बाद और लोगों से लिखवायेगें। मैंने कहा कि अभी मैं आत्मतर्पण नहीं करूंगा, सारा लिख लिया, तब मैंने आत्मतर्पण लिखा 'रहना नहीं देश बिराना है' लिखने के दौरान मैं एक गैप लेता हूँ यह मेरी आदत है। ताकि मैं उसके प्रभाव से मुक्त हो सकूँ। क्योंकि वह हांट करता रहता है। एक आदत सी होती है। संस्मरणों से मुक्त होने के लिए समय लगता है इसलिए मेरी रचनाओं के बीच एक गैप दिखाई देता है। फिर लिखता हूँ ऐसा चलता है। तो संस्मरण जब लिख लिया तो मुझे लगा की अब कोई ऐसा नहीं है जिसपर मैं संस्मरण लिखूं या जिसे मैं चुनू। जिसे लोग भी जानते हों। इसके बाद मैं उपन्यास की ओर मुड़ा। 'कासी का अस्सी' से बिल्कुल भिन्न 'महुआ चरित' आया। महुआ चरित से भिन्न भरसक मेरे जेहन में रहा है पाठक को शॉक(आश्चर्य) दो। क्या उम्मीद किए था और क्या मिल रहा है। पाठकों का शॉक खेल की तरह हो। मैं रिपीट नहीं करता हूँ। जो लिख चुका उसी लाइन पर फिर मैं काम नहीं करता। इसलिए 'रेहन पर रग्घू' के बाद एक गैप लिया और उपसंहार लिखा मैंने। बाकी तो ईश्वर हो गये लेकिन एक ईश्वर होकर सामान्य मानव की तरह जो रहा उसको चुना मैंने-कृष्ण को।

प्रश्न- संस्मरण साहित्य की चुनौतियाँ क्या है?

उत्तर- अगर आप किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को लेते हैं तो सबसे पहली बात उस पूजा भाव को हटाना है। दूसरी, रोचकता से साथ विश्वसनीयता भी पैदा करें पढ़ने वाले के भीतर कि यह विश्वसनीय है।

प्रश्न- संस्मरण लिखते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

उत्तर- इतना जरूर मैं कहना चाहूँगा, पहला पढ़ने वाला यह जरूर अनुभव कर सके कि वह अपने बारे में पढ़ रहा है। दूसरा कि लेखक लिखते समय जिसके बारे में लिख रहा है उससे उसकी क्या अंतरंगता है, आत्मीयता है, भूल जाए। तटस्थ और निरपेक्ष अपने को रख सके। तीसरी बात, हमेशा कुछ न कुछ नया कहने की कोशिश करे, वह न कहे जो हमेशा कहा गया है। या वह न बताये जो लोग जानते हैं। वह उसके बारे में वह बताये जो लोग नहीं जानते हैं। दिलचस्पी वहां से पैदा होती है लोगों में। अरे! ऐसा भी है, हमें पता ही नहीं था।

प्रश्न- आपकी लेखन की भाषा पूर्वांचल की क्षेत्रीयता लिए हुए है। पूर्वांचल से अलग क्षेत्र के लोगों को भाषा समझने में दिक्कातों का सामना करना होता होगा? इसपर आपकी राय क्या है?

उत्तर- मैं जिस भाषा का इस्तेमाल करता हूँ, वह फूटपाथ की भाषा होती है। फार्चून के दूकान की भाषा होती हैं। पान के दूकान की भाषा होती है। जिन्दगी वहां धड़कती है। किताबी भाषा या शब्दकोशों की भाषा में लिखेंगे, तो समझिये, लाशें है, जो आपने बिछायी हैं। वह भाषा मृदा या मृत होगी। बराबर यह ध्यान में रखिये की आप जिन्दा भाषा का प्रयोग करें चलती फिरती भाषा का प्रयोग करें। भाषा के मामले में हमारे आदर्श भारतेंदु और चंद्रधर शर्मा गुलेरी हैं। 'उसने कहा था' की भाषा अमृतसर की है। हमें कोई भारतीय नहीं मिला जिसे काशी की अस्सी की भाषा से आपत्ति रही हो। दरअसल यहाँ बात पाठकों से है। साहित्यकारों ने हमेशा विरोध किया।

ग्रन्थानुक्रमणिका

(क) आधार ग्रन्थ:-

आधार सामाग्री

(Primary sources)

1. काशीनाथ सिंह

(i) घर का जोगी जोगड़ा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2006

(ii) आछे दिन पाछे गए, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2013

(iii) याद हो कि न याद हो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2016

2. कांतिकुमार जैन

(i) तुम्हारा परसाई, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2005

(ii) बैकुंठपुर में बचपन, सामयिक बुक्स- 2011

(iii) जो कहूँगा सच कहूँगा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2006

3. कृष्णा सोबती

(i) हम हशमत (खंड तीन), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली -2012

4. देवेन्द्र सत्यार्थी

(i) यादों के काफिले, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन- 2007

5. ममता कालिया

(i) कितने शहरों में कितनी बार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2010

6. मनोहर श्याम जोशी

(i) रघुवीर सहाय : रचनाओं के बहाने एक स्मरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली -2004

(ii) लखनऊ मेरा लखनऊ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2002

7. रवीन्द्र कालिया

(i) ग़ालिब छूटी शराब, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2000

(ii) औरों के बहाने, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-2014

8. राजेश जोशी

(i) किस्सा कोताह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2012

9. राजेन्द्र यादव

(i) वे देवता नहीं है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2000

10. विश्वनाथ त्रिपाठी

(i) गुरु जी की खेती-बारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2015

सहायक स्रोत/सन्दर्भ

(Secondary Sources / References)

(ख) :-

1. अमरनाथ- आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2012
2. अमरकांत- कुछ यादें कुछ बातें, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2014
3. अमरकांत- दोस्ती: अमर कृतित्व, इलाहाबाद-2008
4. अजित कुमार- कविवर बच्चन के साथ, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली - 2009
5. अजित कुमार- अँधेरे में जुगनू, किताब घर प्रकाशन, 2010
6. अली मुहम्मद- हिंदी रिपोर्ताज : परम्परा और मूल्यांकन (प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं हैं)
7. अनु०- नूर नबी अब्बासी- अलबिरूनी भारत : अस-बिरूनी, नेशनल बुक ट्रस्ट- 2013
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-2011
9. कांतिकुमार जैन- लौटकर आना नहीं होगा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2002
10. कांतिकुमार जैन- जो कहूँगा सच कहूँगा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2006
11. कांतिकुमार जैन- अब तो बात फैल गयी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी- 2007
12. कान्तिकुमार जैन- महागुरु मुक्तिबोध : जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर, सामयिक प्रकाशन– 2014
13. कांतिकुमार जैन- संस्मरण को जिसने वरा है- सं. सुरेश आचार्य लक्ष्मी पाण्डेय, अनुज्ञा बुक्स-2014
14. कृष्णा सोबती- हम हशमत भाग-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2016
15. कृष्णा सोबती- हम हशमत भाग-2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 1999, 2016
16. कृष्णा सोबती- हम हशमत भाग-4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2019

17. के.दामोदरन- भारतीय चिंतन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हॉउस (प्रा.) लि., नई दिल्ली
18. कैलाशचन्द्र भाटिया- हिंदी साहित्य की नवीन विधा, यूनाईटेड बुक हॉउस, दिल्ली- 1979
19. चंद्रकांता- हासिये की इबारतें, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2009
20. डॉ वीरपाल वर्मा- हिंदी- रिपोर्ताज, कुसुम प्रकाशन, मुजफ्फरनगर-1987
21. डॉ रामचंद्र तिवारी - हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी- 2014
22. तारानंद बियोगी- तुमि चिर सारथि, अंतिका प्रकाशन, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश- 2016
23. नामवर सिंह- साहित्य की पहचान, आशीष त्रिपाठी (सं.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2012
24. नामवर सिंह- हिंदी का गद्य पर्व, आशीष त्रिपाठी (सं.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2012
25. निर्मला जैन- दिल्ली शहर–दर-शहर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2010
26. पद्म सिंह शर्मा, पद्म पराग (इ-पुस्तकालय, आनलाइन, प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं है)
27. बच्चन सिंह- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 2007
28. बच्चन सिंह- आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली – 2007
29. बनरसीदास चतुर्वेदी, हमारे आराध्य (इ-पुस्तकालय, प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं है)
30. बनारसीदास चतुर्वेदी- संस्मरण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (इ-पुस्तकालय, प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं है)
31. महादेवी वर्मा- स्मृति के रेखाएं, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 2018
32. महादेवी वर्मा- पथ के साथी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2018

33. रामस्वरूप चतुर्वेदी- हिंदी गद्य : विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 1996
34. रामस्वरूप चतुर्वेदी- हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 2009
35. रामदरश मिश्र- एक दुनियां अपनी, आलेख प्रकाशन- 2007
36. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 2009
37. विश्वनाथ त्रिपाठी - हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरिएंट लांग मैन, दिल्ली- 2007
38. विद्या निवास मिश्र- चिड़िया रैन बसेरा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली- 2002
39. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- एक नाव के यात्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2001
40. विष्णु प्रभाकर- यादों की छाँव में, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली- 2002
41. सं. निर्मला जैन- साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय- 2009
42. सं. माधव हाडा- कथेतर, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली- 2007
43. संपा. डॉ माजदा असद- गद्य की नयी विधाएँ, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली- 1990
44. संपा. नंदकिशोर नवल, तरुण कुमार- दिनकर रचनावली-12, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 2011
45. संपा. नंदकिशोर नवल, तरुण कुमार- दिनकर रचनावली-13, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 2011
46. श्यामसुंदरदास - साहित्यालोचन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली- 2013
47. हजारीप्रसाद द्विवेदी- हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-1952, 2013
48. हरिमोहन - हिंदी साहित्य का आधुनिक काल (नव्यतर गद्य विधाएं), हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला-2008

49. हृदयेश- स्मृतियों के साक्ष्य, अंतिका प्रकाशन, गाज़ियाबाद- 2014